श्रीभागवत—दर्शन

भागवती कथा

(उनचासवां खण्ड)

व्यासशास्त्रोपवनतः सुमनांसि विचिन्वता ।
कृता वै प्रभुदत्तेन माला "भागवती कथा" ॥

लेखक :—
श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारी

प्रकाशक
सङ्कीर्तन-भवन
प्रतिष्ठानपुर (भूसी) प्रयाग

संशोधित मूल्य २-०० रुपए

द्वितीय संस्करण] वैशाख, सम्वत् २०२४ वि० [मूल्य १) ६५

मुद्रक—संकीर्तन प्रेस, वृन्दावन

विषय—सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ

भगवद्-अनुग्रह-की अनुभूति

(भूमिका)

इत्याहृतोक्तः परमस्य पुंसः
प्रतिक्षणानुग्रहभाजनोऽहम् ।
स्नेहोत्थरोमा स्खलिताक्षरस्तम्,
मुञ्चञ्छुचः प्राञ्जलिराबभाषे ॥*

(श्रीभा० ३ स्क० ४ अ० १४ श्लो०)

छप्पय

हवन, शयन, प्रतिचरन चलन, स्वर, ताल गान महँ ।
खान, पान, इसनान ध्यान अरु दान मान महँ ॥
नभ, शशि रवि, ग्रह, स्वरग, नरक, पाताल, भूमि जल ।
छिन छिन अनुभव करें अनुग्रह हरिको सब थल ॥
ते ई भक्त अनन्य हैं, हिय हरि बसि सब अघ हरें ।
तिनिकी सार सम्हार सब, निज करतें यदुवर करें ॥

यह संपूर्ण ससार करुणावरुणालय भगवान् वासुदेवकी क्रीड़ा भूमि है। वे सजल घनश्याम प्रतिक्षण जीवोंके ऊपर

---

* श्रीउद्धवजी विदुरजीसे कह रहे हैं—"विदुरजी ! मैं उन परमपुरुष प्रभुकी अनुग्रहका प्रतिक्षण भाजन बना रहा । जब भगवान् ने अंत समयमें भी मुझसे कहा कि मैं तुझे भागवतज्ञान दूँगा, तो इनके इतने आदरपूर्वक

अनुग्रह कृपाकी वृष्टि करते रहते हैं। विश्वमें कोई भी ऐसा कार्य नही होता अशुभ तथा अशोभन। वे रसरूप रासेश्वर अरसिकता का तो कोई कार्य करते नहीं। क्योंकि भगवती श्रुति कहती है "रसो वै स:" निश्चय करके वह रसिक शेखर रासेश्वर ही रस है। जैसे शीत के कारण शहदका पिण्ड बन जाता है वैसे ही यह रासविहारी घनीभूत रस है। उसका हास विलास तथा जो भी कार्य होगा सब रसीला ही होगा। किन्तु जैसे नेत्रों में पांडुरोग होनेसे सभी वस्तुएँ पीली न होने पर भी पीली पीली दृष्टिगोचर होती हैं, वैसे ही जिनके अन्तःकरण पर अज्ञान का आवरण छा गया है, वे इस सरस सुन्दर जगत्को रसहीन नीरस और दुःखालय बताते हैं, वे कहते हैं "सर्वं दुखमयं जगत्" यह सम्पूर्ण जगत् दुःखमय है। जन्मसे लेकर मृत्यु पर्यन्त दुःख ही दुःख है। वे इस जगत के क्रीड़ाप्रिय रसिक शेखर को भूलकर जड़प्रकृतिको ही सब कुछ समझते हैं जड़ता ही अज्ञान है। वही दुःखकी जनना है। किसी अमोघ औषधि से जड़ता मिट जाय, पीलिया रोग निवृत्ति हो जाय, तो फिर सभी वस्तुएँ यथार्थरूप में दिखायी देने लगें।

वचनों को सुनकर मेरा सम्पूर्ण शरीर रोमाञ्चित हो उठा, मेरी वाणी गद्गद् हो गयी तथा नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी, तब मैंने अञ्जलि बाँधकर उनसे निवेदन किया।"

हम जो दुखी होते हैं, रोते हैं व्याकुल होते हैं वह अविश्वास के कारण। यदि हमें विश्वास हो जाय कि शिव का कोई कार्य अशिव नहीं हो सकता। भगवान् के प्रत्येक विधान में मङ्गल सन्निहित है, उनकी प्रत्येक चेष्ठा में आनन्दका स्रोत प्रवाहित होता रहता है, हम प्रतिक्षण उनकी अनुग्रह का अनुभव कर सकें तो हमारा जीवन रसमय वन जाय, उसमें से सरसता की अजस्रधारा फूट निकले। जो लोग भगवद्अनुग्रह के भाजन बन जाते हैं, वे किसी भी परिस्थिति में विचलित नही होते।

जो समस्त कार्य प्रभु प्रीत्यर्थ ही करते हैं, जिनका अपना कोई निजका कार्य रह ही नही गया है, वे चिन्ता क्यों करें उनकी समस्त चिन्ता का भार तो भगवान् ने ले रखा है, ऐसे अनन्यभक्तों को जब कोई चिन्ता हो जाती है, तो उसे पूरा करने भगवान् को स्वयं सशरीर आना पड़ता है। प्राचीनकाल के तो ऐसे अगणित उदाहरण भक्तमाल आदि ग्रन्थ ऐसे ही उदाहरणों से भरे पड़े हैं। अमुक भक्त प्रहरी कथा में आत्मविभोर हो गये, तब भगवान् ने स्वयं प्रहरी का रूप रखकर उनका पहरा दिया। अमुक नाई ध्यान मग्न थे, भगवान् ने नाई का रूप रख कर राजाकी सेवा की, अमुक भक्तिमती महिला भगवान् के दर्शनों को गयी, भगवान् ने उनका रूप रख कर चक्की चलायी, पति की समस्त सेवायें की, अमुक के घर में साधु सेवा की सामग्री नही थी भगवान्

छद्मवेष से उनके घर आकर समस्त सामग्री दे गये। इस धर्मप्रधान देशमें ऐसे एक नहीं अनेकों उदाहरण हैं। अभी लग भग दो सौ वर्ष पूर्व सहजराम नामक एक भगवद्भक्त महात्मा हो गये हैं, उन्होंने श्री तुलसीकृत रामायणके सदृश एक "रघुवंशदीपक" नामक बृहद् काव्य लिखा है, वह भी दोहा चौपाइयों में है। अभी कुछ ही दिन हुए वह काव्य प्रकाशित हुआ है। उनके जीवन की एक घटना बताते हैं कि वे श्री अयोध्याजी में परचूनी की दुकान करते थे। उसी समय वहाँ महात्मा रामप्रसादजी नाम के एक नामी सन्त रहते थे। उनकी साधुसेवा में बड़ी निष्ठा थी, जो भी साधुसन्त आते सबकी श्रद्धा से सेवा करते, इससे उनकी बड़ी ख्याति हो गयी। उनके अखाड़े में बड़ी उदारता से साधुसेवा होती रहती ऐसे अनन्याश्रयी संत रुपये पैसे का हिसाब तो रखते नहीं। उनको तो साधु सेवा हो जाय इतना ही प्रयोजन रहता है। रुपये आगये तब तो भेज दिये न रुपये आये तो चिन्ता नहीं। लक्ष्मीपति भगवान् के यहाँ किसी वस्तु की कमी तो है नहीं वे सहजरामजीकी दुकान से सामान मँगाते साधुसेवा करते। दुकानवाले का कितना रुपया हो गया है इसका उन्हें पता ही नहीं था। एक वार सहजरामजी के ५००) हो गये। उन दिनों ५००) बहुत होते थे। सहजरामजी ने संदेश भेजा—"महाराज! जब तक मेरा पिछला हिसाब न होगा, आगे को मैं सामग्री न दूँगा। मेरा पिछला हिसाब होना अत्यावश्यक है।"

महात्माजीने इधर ध्यान ही नही दिया रामजीकी जो इच्छा होगी वही होगा। संयोगकी बात उसी समय २०० साधुओं की एक मंडली आगयी। महात्माजी ने अपने स्वभावानुसार सबका स्वागत सत्कार किया ठहरनेको स्थान दिया और एक शिष्यसे कहा—"सहजराम की दुकान से २०० सन्तों के लिये सीधा सामान ले आओ।"

गुरुकी आज्ञा पाकर शिष्य सहजरामजी की दुकान पर गया और उसने कहा—"सहजरामजी! महाराजजी की आज्ञा है २०० सन्तोका सीधा सामान अभी दो। सन्त आ गये है उनके महाप्रसाद का प्रबन्ध करना है।"

सहजरामजा ने कहा—"मैने तो श्रीमहाराजसे पहिले ही निवेदन कर दिया था। मुझमें इतनी सामर्थ्य नही है, कि अधिक उधार दे सकूँ, जब तक मेरा पिछला हिसाब न होगा, मैं कुछभी न दे सकूँगा।"

शिष्य लौट गया और उसने सहजरामजी का संदेश ज्यों का त्यों जाकर गुरु महाराजको सुना दिया। सन्त इसे सुनकर तनिक भी विचलित न हुए। उन्होंने कहा—"जैसी रघुनाथजी की इच्छा। उन्ही के रूप सन्त हैं वे चाहें जैसे प्रबन्ध करेंगे।" यह कह कर वे सरयू स्नान के लिये चले गये। स्नान करके वे ध्यान में मग्न हो गये। वे ध्यान में निश्चिन्त हो गये किन्तु रघुनाथजी को तो चिन्ता हो गयी। जो मेरा अनन्याश्रयी है उसका काम न हो यह कैसे हो सकता है। भगवान्

ने महात्मा रामप्रसाद जी महाराज का वेप बनाया और सहजराम जी से जाकर कहा—"सहजराम ! सामान क्यों नहीं दिया ? "

यह आज अनहोनी बात थी, महाराज जी तो कभी दुकान पर आते नहीं। सहसा महात्मा जी को सम्मुख देख कर सहजराम जी ने उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया और हाथ जोड़ कर बोले—"भगवन् ! मैंने पहिले ही प्रार्थना कर दी थी मेरी सामर्थ्य इतनी नहीं है। पिछला हिसाब हो जाय मैं देने को उद्यत हूँ। "

सन्त रूप में भगवन्त बोले—"तुम्हारा पिछला कितना हिसाब है ?"

सहजराम जी ने सरल स्वभाव से कहा—"पांच सौ-रुपया।" तुरन्त पांच सौ रुपये निकाल कर उन सन्त भगवन्त ने दिये और कहा—"पिछला लेखा जोखा पूरा करलो और ये २००) और भी लेलो। तुरन्त सामग्री भेज दो। "

सहजराम जी ने तुरन्त वही निकाली और कहा—"भगवन् ! इस पर हस्ताक्षर कर दीजिये।"

सन्त बने भगवन्त इस पर आना कानी करने लगे सहजराम जी ने जब आग्रह किया तो उन्होंने हस्ताक्षर कर दिये और कहा—"सामग्री तुरन्त भिजवा दो। "

सहजराम जी ने कहा—"भगवन् ! मेरे यहाँ आदमी नहीं है आप शिष्यों को भेज दें।"

"अच्छी बात है" वह कर वे सन्त-भगवन्त तुरन्त वहां से चल दिये। बड़ी देर तक सहजरामजी प्रतीक्षा करते रहे जब बहुत देर में भी कोई नहीं आया, तो वे दुकान बन्द करके स्वयं ही अखाड़े में गये। उसी समय महाराज पूजा से निवृत्त होकर बाहर आये। सहजरामजी ने जाकर कहा—"भगवन्। आपने सामान लाने किसी को भेजा नही।"

हँसते हुए संतजी ने कहा—"अरे, भाई! भेजे कैसे तुमने तो कह दिया जब तक हमारा पिछला हिसाब न होगा तब तक हम कुछ भी न देंगे।"

सहजरामजी ने दीनता से कहा—"प्रभो! मेरा छोटा सा काम है, इसीलिये ऐसा कह दिया। अब तो आप सब दे ही आये।"

चौक कर सन्त ने पूछा—"कौन दे आया मैंने तो किसी के हाथ भेजा नहीं।"

सहजरामजी ने कहा—"अभी तो आप स्वयं देकर आ रहे है।"

सन्त ने कहा—"अरे, तू पागल हुआ है क्या? मैं तो अभी कही गया भी नही। पूजा करके अभी उठा हूँ।"

दृढ़ता के स्वर में सहजरामजी ने कहा—"नहीं भगवन्! आप अभी मेरी दुकान पर पधारे हैं, ५००) आपने पिछले दिये हैं, २००) और आगे के लिये दिये है अभा आप कह कर आये है, मैं शिष्य को भेजूंगा। देर होने से ही मैं आया हूँ।"

सन्त ने कहा–"अरे, तूने स्वप्न तो नही देखा।" सहजरामजी ने बात पर बल देते हुए कहा—"स्वप्न नहीं महाराज जाग्रत में प्रत्यक्ष में अभी आपने रुपये देकर मेरी बही पर हस्ताक्षर किये है।"

सन्त ने कहा—"अच्छा, लाओ अपनी वही।"

सन्त की आज्ञा पाकर सहजराम अपनी वही उठा लाये। उसमें ५००) और २००) जमा देखकर और अपने ही हस्ताक्षर देखकर सत हृदय पिघल उठा वे विह्वल हो गये उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु वहने लगे और वोले—"सहज राम! भजन हम करते हैं, उसका फल तुम पाते हो तुम वड़े भाग्यशाली हो जो तुम्हें भगवान् के दर्शन हुए।"

अव तो सहजरामजी की भी आखें खुलीं और वे श्री १०८ महात्मा रामप्रसादजी के शरणापन्न हुए उन्होंने अपने ग्रन्थ में स्वयं लिखा है—

अवधपुरी आरम्भ मैं, रामकोट पर कीन्ह।
रामप्रसाद प्रसाद तें, सतगुरु आयसु दीन्ह॥

सारांश यह है, कि हम भगवान् पर जव ही अविश्वास करने लगते है, तभी दुःख पाते हैं। वस्तुओं में दुःख सुख थोड़े ही है। वहुत से भौतिकवादी कहते हैं, कि समाज में वस्तुओं का वितरण साम्यवाद के नियमानुसार हो तो समाज में इतना असन्तोष न वढ़े। मेरा कहना है कि वस्तुओं के वितरण से कुछ भी लाभ न होगा, इससे असन्तोष और वढ़ेगा तथा चरित्र वल तथा समाज का नैतिक स्तर और भी गिर जायगा। जितने साम्यवाद के समर्थक राष्ट्र हैं उनमें साम्राज्य वृद्धि की लिप्सा कितनी तीव्र है, उसके लिये वे उचित अनुचित सभी उपायों को करने को उद्यत रहते है।

सुख होता है मन के सन्तोष से और सन्तोष ईश्वर प्रणिधान से भगवत् विश्वास से आज समाज में द्रव्य का आदर है। द्रव्यवान कैसा भी अन्यायी अधर्मी हो समाज में उसका आदर होगा। पहिले चरित्रवान् का सदाचरण में तत्पर व्यक्ति का आदर होता था, चाहे वह भिक्षुक ही क्यों न हो। इसी से इस देश में धार्मिकता इतनी बढ़ी चढी थी। ज्ञानी ब्राह्मण के सम्मुख भगवद् विश्वासी भक्त के सम्मुख बड़े बड़े सम्राट थर थर कांपते थे। उनसे सदा भयभीत रहते थे, उन्हीं के भय के कारण वे प्रजा के साथ कोई अन्याय नहीं कर सकते थे।

जीवन का चरमलक्ष्य भगवान् की कृपा का अनुभव करना ही है, जो जितना ही बड़ा भगवत् विश्वासी होगा वह उतना ही बड़ा सुखी होगा। जिसने प्रत्येक घटना में भगवान् की अनुकम्पा का अनुभव करना सीख लिया है, उसके सम्मुख शोक, मोह, चिन्ता, भय, अविश्वास तथा दुख आदि फटक ही कैसे सकते हैं।

अभी दो चार वर्ष पूर्व ही एक बड़े भगवत् निष्ठ सन्त थे उनका नाम था पंडित बाला प्रसाद जी मिश्र। उन्हें भगवान् की अनुभूति होती थी और ध्यान में भगवान् उनके प्रश्नों का उत्तर भी देते थे। एक बार उन्होंने बताया कि मैने भगवान् से पूछा—"महाराज ! आपको अर्जुन अधिक प्रिय है या हम लोग।"

भगवान् ने कहा—"अर्जुन ने तो मेरे रूप को समझा ही नही। जब मैंने उसे विश्वरूप दिखाया तब उसने कहा—

"मैंने सखा मानकर आपको श्रीकृष्ण ! यादव तथा मित्र कहा। मैं आपकी महिमा नही जानता था इसीलिये मैंने प्रमाद तथा प्रणय से ऐसा कहा।" जो मेरी महिमा ही नहीं जानता वह मेरे अनुग्रह का अनुभव ही कैसे करेगा। आप तो अनुक्षण मेरी अनुकम्पा का अनुभव करते हो। एक ठण्डा पुरवा पानी मिल जाय उसी में मेरी कृपा समझते हो उसे मेरा प्रसादी पादोदक मानकर प्रेम से पान करते हो, एक रसगुल्ला मिल गया उसी को खाकर सी-सी करते हुए मेरी अनुग्रह की सराहना करते हो, तुम तो क्षण-क्षण पल-पल पर प्रत्येक घटना पर मुझे नहीं भुलाते तुम्हारी बराबरी अर्जुन कैसे कर सकता है।"

अपने जीवन में एक बार नहीं अनेक बार भगवद् कृपा के अनुभव हुए हैं। नित्य ही होते रहते हैं, उसी के सहारे तो समस्त व्यापार चल रहा है, फिर भी हम मोहवश, काम क्रोध के आवेश में उनको भूल जाते हैं, और चिन्ता तथा अविश्वास करने लगते है। क्षण-क्षण लव-लव उनकी अनुकम्पा की अनुभूति नही होती। मुझ में विद्या, बुद्धि, बल, सदाचार, भजन, उपासना किसी का भी बल नहीं। जो भी कुछ है एक मात्र भगवद् कृपा की ही अनुभूति है मैं तो वही हूँ जो एक रोटी के टुकड़ा के लिये इधर से उधर भटकता फिरता था, मुझे अपनी पूर्व परिस्थिति विस्मृत नही है। तुलसीदासजी ने लिखा है—

इक दिन तुलसी ये हुते, माँगे मिलै न चून।
कृपा भई रघुनाथ की, सुचई दोनों जन॥

उन्होंने तो भगवत्कृपा का प्रतिक्षण अनुभव भी किया था मुझे तो वह भी नहीं है, फिर भी उनकी असीम अनुकम्पा है। ये संसारी व्यापार किसी के न तो आज तक समाप्त हुए न होंगे। यदि संसार में कुछ सार है, तो यही कि प्रतिक्षण अच्युत अनुग्रह भाजन बन जायँ। इसी बात को लक्ष्य करके ब्रह्माजी ने कहा है–

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणः
भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।
हृद्वाग् वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते-
जीवेत यो मुक्ति पदे स दायभाक्॥

"हे प्रभो! जो पुरुष प्रतिक्षण आपकी कृपा की प्रतीक्षा करता रहता है, उत्सुकता के साथ कहता रहता है "आपकी असीम अनुग्रह कब होगी कब आप मुझे अपनावेंगे।" ऐसा कहते कहते प्रारब्धवश जो भी दुख सुख आ जाता है उसे आपकी देन समझकर भोगता रहता है तथा मन से वाणी से और शरीर से आपको निरन्तर नमस्कार करता हुआ कालक्षेप करता रहता है, वह आपके मुक्तिपद का उसी प्रकार उत्तराधिकारी होता है जैसे पिता के धन का सत्पुत्र अधिकारी होता है।"

"हे माधव! हमारा ऐसा जीवन कब होगा? कब दुख और सुख में समान भाव से तुम्हारी ही अनुग्रह का अनुक्षण अनुभव करते हुए हमारे दिवस व्यतीत होंगे। कब तुम्हें ही हम अपना माता, पिता, सखा, सुहृद, स्वामी और सर्वस्व समझेंगे। कब तुम्हारी ही स्मृति में प्रत्येक क्षण व्यतीत होगा?

कब हमारी ऐसी स्थिति होगी ? हे अशरण शरण कब हम तुम्हें अपना समझेंगे ? कब जगत् की और इन विषयी पुरुषों की आशा सर्वथा छोड़कर निश्चिन्त होंगे ? दयासागर ! ऐसे जीवन का दान दो ? अपनी कृपा की दृष्टि वृष्टि के अनुभव की योग्यता प्रदान करो। इधर से उधर तुम्हारी प्रतीक्षा में ही घूम रहा हूँ, कभी बद्रीनाथ जाता हूँ,कभी पुनः पुण्यतोया गङ्गा यमुना के पुनीत सङ्गम प्रयाग में आता हूँ, कब मेरा आवागमन मिटाओगे ? कब मेरे मन में स्थिरता स्थापित करोगे। पुनः जा रहा हूँ, तुम्हारे गन्धमादन की गन्ध लेने तुम्हारी अनुकम्पा की आशा से। जो वस्तु है निरन्तर झर-झर रही है उसी के लिये भटकता हूँ, मेरा अज्ञान तो देखो वह तभी मिटेगा जब तुम अपनाओगे ?

छप्पय

कब अच्युत अखिलेश अनुग्रह अनुभव करिकें।
कब विषयनितें विरत बनूं विषयिनि संग तजिकें॥
कब मन मोहन रूप तुम्हारो नित्य निहारूँ।
कब परमेश्वर प्रनत पाल प्रति पलहिं पुकारूँ ?
कब सब भव भय तें विरत, बनि तुमरे ही पद गहूँ ?
कब प्रपंच की ओट तजि, हौं तव अनुकम्पा लहूँ ?

नौकामें-गङ्गामें
वैशाख–कृ० १२। २००६

तुम्हारी अनुकम्पा का इच्छुक
"प्रभुदत्त"

कीर्तनीयो सदा हरि:

सचित्र

भागवत चरित

(सप्ताह)

रचयिता—श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी

श्रीमद्भागवत के १२ स्कन्धों को भागवत सप्ताह के क्रम से ७ भागों में बाँटकर पूरी कथा छप्पय छन्दों में वर्णन की है। श्रीमद्भागवत की भाँति इसके भी साप्ताहिक, पाक्षिक तथा मासिक पारायण होते हैं सैकड़ों भागवतचरित व्यास बाजे तबले पर इसकी कथा कहते हैं। लगभग हजार पृष्ठ की सचित्र कपड़े की सुदृढ़ जिल्द की पुस्तक की न्योछावर ६)५० मात्र है। थोड़े ही समय में इसके २३००० के ५ संस्करण छप चुके हैं। दो खंडों में हिन्दी टीका सहित भी छप रही है। प्रथमखंड प्रकाशित हो चुका है। उसकी न्यौछावर ८) दूसरा खंड प्रेस में है।

॥ श्रीहरिः ॥

श्री ब्रह्मचारी जी द्वारा लिखित नई पुस्तकें

१–सार्थ छप्पय गीता

श्रीमद् भगवत् गीता के ७०० श्लोकों की ७०० छप्पय बनायी है। श्लोक तो दो पंक्ति का होता है और छप्पय ६ पंक्ति की। इसलिये छप्पय में श्लोक का पूरा भाष्य ही आ गया है। यह इसी क्रम से छापी जा रही है, जैसे यह आलवन्दार स्तोत्र। एक पृष्ठ पर तो मूल श्लोक और नीचे हिन्दी अर्थ, सामने के पृष्ठ पर उसकी छप्पय। इस प्रकार इसमे मूल श्लोक, हिन्दी अर्थ और व्रज भाषा की छप्पय छन्द तीनों बातें रहेंगी। बानगी पिछले पृष्ट पर देखिये। सचित्र सजिल्द पुस्तक का मूल्य लगभग ५)।

छप्पय शतक त्रय

श्री राजर्षि भर्तृहरि के नीति शतक, श्रृङ्गार शतक और वैराग्य शतक तीनों शतकों को छप्पय छन्दों में आबद्ध किया है। भर्तृहरि जी का यह सुप्रसिद्ध ग्रन्थ संस्कृत साहित्य में बेजोड़ है। इन तीनों ही शतको में सभी शास्त्रों का सार आ गया है। पुस्तक शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली है।

पुस्तक प्राप्ति स्थान—

१– संकीर्तन भवन, वंशीवट, वृन्दावन (मथुरा)
२– संकीर्तन भवन, झूसी, (प्रयाग)
३– भागवत प्रेस, ८५२, मुट्ठीगंज, प्रयाग
४– संकीर्तन भवन, बसन्त गाँव, मोतीबाग नं० १ क्रैन्ट १० नई देहली
५– भागवती कथा प्रचार कार्यालय, १३ गोपाल घोस लैन सलकिया हावड़ा
६– सेठ सूरजरतनजी मेहता, ५२ रामकृष्ण लैन बाजार, कलकत्ता–३
७– भागवती कथा प्रचारक संघ १६।६६५८ देहली सराय रोहिल्ला नई देहली ५
८– सेठ जगत नारायण, भागवत कथा प्रचारक संघ, मऊ छीवो (जि० बाँदा)
९– परमानंद पांडेय भागवती कथा प्रचार कार्यालय, मीठापुर, पटना
१०– श्री अशोक मुनिजी, संकीर्तन भवन, लालपुर (जि० कानपुर)

नोट–हमारे यहां की प्रकाशित पुस्तकों की सूची भूमिका के १६ वें पृष्ठ पर देखें ।

॥ श्रीहरिः ॥

श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी द्वारा लिखित अन्य पुस्तकें

१ भागवती कथा (१०८खंडों में) ६९ खंड छप चुके है। प्रति खंड का मूल्य १ ६५ पै. ७५ पै. डाक-व्यय पृथक् ७० वां (प्रेस में)
२ श्रीभागवत चरित—लगभग ६०० पृष्ठ की सजिल्द मू. ६.५०
३ बदरीनाथ दर्शन—बदरी-यात्रा पर खोजपूर्ण महाग्रन्थ मू. ५)
४ महात्मा कर्ण—शिक्षाप्रद रोचक जीवन,पृ सं. ३५६, मू.३.२५
५ मतवारी मीरा—भक्ति का सजीव साकार स्वरूप मू. २)५०
६ नाम संकीर्तन-महिमा-भगवन्नाम का युक्तियुक्तपूर्ण मू. ७५ पै
७ श्रीशुक—श्रीशुकदेवजी के जीवन झाँकी (नाटक) मू. ७५ पै.
८ भागवती कथा की बानगी—पृष्ठ सं. १०० मू. ३१ पै.
९ शोक शांति-शोक की शाति करनेवाला रोचक पत्र मू. ३१ पै.
१० मेरे महामना मालवीय-उनके सुखद संस्मरण,पृ. १३० मू ३१
११ भारतीय संस्कृति और शुद्धि—क्या अहिन्दू हिन्दू बन सकते है ? इसका शास्त्रीय विवेचन पृष्ठ ७५ मूल्य ३१ पैसे
१२ प्रयाग माहात्म्य मूल्य २० पैसे
१३ वृन्दावन माहात्म्य मूल्य १२ पैसे
१४ राघवेन्दु चरित–भागवतचरित से ही पृथक् छापा गया है ४०
१५ प्रभुपूजापद्धति—पूजा करने की सरल शास्त्रीय विधि २५ पैसे
१६ श्रीचैतन्य चरितावली—५ खंडो मे प्रथम खंड का मू० १)६०
१७ भागवत चरित की बानगी— मूल्य ३१ पैसे
१८ गोविन्द दामोदर शरणागत स्तोत्र (छप्पय छंदों में) २० पैसे
१९ गोपी गीत—(मूल तथा हिन्दी पद्य सहित) अमूल्य ।
२० श्रीकृष्ण-चरित–भागवतचरित सेही पृथक् छापा गया है२)५०
२१ रासपञ्चाध्यायी—रास के पांच अध्याय पृष्ठ ५४ अमूल्य
२२ गोपालन-शिक्षा—गौ कैसे पाली जाय मूल्य २)७५
२३ मुक्तिनाथ दर्शन—मुक्तिनाथ यात्रा का सरस वर्णन मू० ३)
२४ आलवन्दार स्तोत्र—(छप्पय सहित) मूल्य ४० पैसे

भगवान् का ब्रह्मस्व के सम्बन्ध में उपदेश

(११२७)

स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेच्च यः ।
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥*

(श्रीभा० १० स्क० ६४ अ० ३९ श्लोक)

छप्पय

मर्यो तुरत यम सदन गयो यम पूछ्यो हँसि तब ।
पाप पुन्य महँ प्रथम आप भोगिंगे का अब ?
प्रथम पाप हौ कह्यो, मिल्यो गिरगिट तनु तबई ।
प्रभुपद परसत नस्यो पाप जग बन्धन अबई ॥
यों कहि हरि अनुमति लई, दिव्यलोक कूँ नृग गये ।
तब हरि ने यदुवरनि कूँ, सदुपदेश सुखकर दये ॥

समस्त लौकिक पारलौकिक कर्तव्य वेद में है । वेद भगवान् के स्वरूप हैं । उन वेदों को जो धारण करते हैं वे ब्रह्मरूप ही हो जाते हैं। ऐसे वेदज्ञ ब्राह्मणों का जो अपमान करता है,उन्हें क्लेश पहुँचाता है उसकी अधोगति अनिवार्य है। ब्राह्मण सभी वर्णों में मुख्य होने से अवश्य बताया गया है । वह विराट् भगवान् के मुख से उत्पन्न होने के कारण 'मुख्य' कहा गया है । ऐसे वेद को धारण करने वाले द्विज का अनजान मे भी जो अपमान करता

---

* भगवान् अपने कुमारो को उपदेश देते हुए कह रहे हैं—"जो अपनी दी हुई अथवा किसी अन्य की दी हुई ब्राह्मण की वृत्ति का अपहरण करता है, वह साठ सहस्र वर्ष तक विष्ठा का कीड़ा होता है ।"

है उसकी भी दुर्गति होती है, फिर जानबूझ कर जो करते हैं, उन के सम्बन्ध मे तो कहना ही क्या ?

सूत जी कहते है— 'मुनियो ! भगवान् से आज्ञा लेकर जब महाराज नृग स्वर्ग को चले गये, तब ब्रह्मण्यदेव भगवान् वासुदेव वहाँ कुतूहल वश आये हुए अपने पुत्रो, परिजनों तथा अन्यान्य जनों को उपदेश देते हुए बोले—"देखो कैसे आश्चर्य की बात है. कहते हैं पारा पचता नहीं,किन्तु उसे भी वैद्य युक्ति से शुद्ध करके पचाने योग्य बना लेते हैं। विज्ञ पुरुषों का कहना है सर्प के सर्वाङ्ग में विष नही होता। उसके फण मे ही होता है। फण को छोड़कर उसके शरीर के मांस को तो लोग खा लेते है, किन्तु उसके फण में जो विष की थैली है उसे खाने से कोई जीवित नहीं रह सकता, किन्तु उसे युक्तियो द्वारा निकाल कर उसकी गुटिका बना कर लोग खाकर पचा जाते है। कुचला,संखिया, मीठा तथा अन्यान्य भी अनेक प्रकार के ऐसे विष हैं जिन्हें सूँघते ही प्राणी मर जाते हैं, उन्हे चाहें मनुष्य पचाले, किन्तु ब्राह्मण के धन को खाकर कोई पचा नहीं सकता। साधारण लोगों की बात तो पृथक् रही अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष भी ब्रह्मस्व को पचाने मे असमर्थ रहे हैं। इसी लिये शास्त्रकार बार बार कहते हैं हलाहल विष को ही विष नही कहते। उस विष का तो प्रतीकार भी किया जा सकता है,वास्तविक विष तो ब्रह्मस्व ही है संसार में इसका शमन करने वाला अन्य कोई पदार्थ नही है। कहीं अग्नि लग जाय तो वह यथेष्ट जल से शान्त हो सकती है। विष यदि किसी ने खा भी लिया, तो वह खाने वाला ही मरेगा, किन्तु यह ब्रह्मस्व ऐसा विष है कि इसके खाने से सम्पूर्ण कुल ही समूल नष्ट हो जाता है।

इस पर एक कुमार ने पूछा—"महाराज ! ब्राह्मण का धन है, और हमने उससे पूछ कर उसका उपभोग किया। तो

उससे भी कुछ अपराध लगता है क्या ?"

भगवान् ने कहा—"नही, यदि ब्राह्मण प्रसन्नता पूर्वक अन्तरात्मा से देता है। तो उसे प्रसाद समझ कर अवश्य ग्रहण कर ले। समस्त राजागण ऋषियो के आश्रमों में जाते, ऋषिगण उन्हें अर्घ्य देते, कन्द, मूल, फल, नीवार अथवा और भी जो वे स्वयं खाते है, उन सब वस्तुओं को राजा को, अतिथि को भेंट करते है। उनका उपयोग सब करते ही हैं। भरत जी प्रयागराज में भरद्वाज जी के आश्रम पर आये। मुनि ने भरतजी की समस्त सेना के सहित उनका स्वागत सत्कार किया। भरत जी ने उसे सहर्ष स्वीकार किया। महाराज सहस्रबाहु अर्जुन जमदग्नि जी के आश्रम पर गये, महर्षि ने उनके समस्त सैनिक और साथियों के सहित उनका स्वागत सत्कार किया, भोजन कराया। यह सब उनको इच्छा से हुआ। किन्तु पीछे काम धेनु को देखकर राजा के मन में लोभ उत्पन्न हो गया। उन्होंने मुनि से उस गौ की याचना की। मुनि ने कहा—"राजन् ! यह तो मेरे काम की वस्तु है, इसी से तो मुझे समस्त यज्ञोपयोगी वस्तुएँ प्राप्त होती हैं।" इस पर जब राजा ने बहुत आग्रह किया तो मुनि ने कह दिया—"आप राजा हैं आपको मैं रोक नहीं सकता। आप बलपूर्वक ले जायँगे तो मेरा क्या वश। गौ जाय तो ले जाइये।"

इस प्रकार जमदग्नि मुनि ने राजा से ले जाने को कह तो दिया, किन्तु इसमें उनकी पूरी सम्मति नहीं थी। उन पर दबाव डालकर बल पूर्वक विवश करके कहलाया गया था। इस प्रकार यदि ब्राह्मण का धन उसकी पूरी पूरी सम्मति के बिना भोगा जाय, तो वह तीन पीढ़ियों को अधोगति में डालता है। यदि बल पूर्वक ब्राह्मणों को मार कर हठ से उनके धन का उपभोग किया जाय, तो उसका प्रभाव तीस पीढियों तक जाता है। दस पिछली और बीस आगे की। राजा लोग अपने ऐश्वर्य के मद में इन बातों का

विचार नहीं करते। वे ब्राह्मणों का सर्वस्व छीन लेते हैं उनका नाश हो जाता है और अन्त में नरक को जाते है। देखो, महाराज कृतवीर्य के वंशजो की ब्राह्मणों का धन छीनने से कैसे दुर्गति हुई।"

इस पर शौनक जी ने पूछा—"सूतजी ! ये राजा कृतवीर्य कौन थे और इन्होने ब्राह्मणों का धन क्यों छीना था ?"

इस पर सूतजी बोले—"महाराज ! ये कृतवीर्य आपके वंशज भृगुवंशी ब्राह्मणों के यजमान थे। वे बड़े धर्मात्मा तथा सोमयाजी भूपति थे। उन्होंने बड़ा भारी सोमयज्ञ किया। जिसमें उनने भृगुवंशी ब्राह्मणों को बहुत सा धन धान्य दान दक्षिणा में दिया। कुछ काल के अनन्तर राजा स्वर्गगामी हुए। उनके वंशज राजा कुछ लोभी हुए। एक बार उन्हें धन की आवश्यकता हुई। वे लोग यह बात जानते थे, कि इन भृगुवंशी ब्राह्मणों के पास बहुत सा धन है। अतः वे उनसे माँगने गये। बहुत से ब्राह्मणों ने तो अपना धन उन्हें प्रसन्नता से दे दिया। बहुतों ने यह समझ कर कि ये दुष्ट राजा न जाने क्या अनर्थ करें अपने धन को चुपके चुपके अन्य ब्राह्मणों को बाँट दिया। दो चार ने अपना धन भूमि में गाड़ दिया। क्षत्रिय जितना धन चाहते थे, उतना उन्हे नहीं मिला। किसी भेदिये ने बता दिया—ब्राह्मणों के घर में बहुत सा धन गड़ा है। इस पर उन राजाओं ने एक ब्राह्मण के घर को खुदवाया उसमें विपुल धन निकला। अब तो वे क्रोध में भर गये और सभी भृगुवंशी ब्राह्मणों का वध करने लगे। उनकी हिंसा वृत्ति इतनी जागृत हो गयी, कि ब्राह्मणों को तो वे मारते ही थे, साथ ही ब्राह्मणों की गर्भवती स्त्रियों के गर्भस्थ बालकों का भी वध करने लगे। एक ब्राह्मणी ने पहाड़ों में जाकर अपने गर्भस्थ बच्चे की रक्षा की। उसे ऊरु में बहुत वर्षों तक छिपाये रही। द्वेष वश किसी दूसरी ब्राह्मणी ने यह बात उन क्षत्रियों से कह दी। उन्होने

आकर उस गर्भिणी ब्राह्मणी को घेरा और उसके गर्भ को नष्ट करने का उद्योग करने लगे। इतने में ही वह बालक गर्भ से निकल कर तुरन्त उत्पन्न हो गया। उसके दिव्य तेज के सम्मुख सभी क्षत्रिय अंधे हो गये। वे पर्वतों में इधर उधर भटकने और गिरने पड़ने लगे। अब उनकी बुद्धि ठिकाने आई। उन्होंने अत्यंत विनीत भाव से उस ब्राह्मणी की स्तुति की। ब्राह्मणी ने कहा– "बेटाओ ! मैंने तुम्हें अन्धा नहीं बनाया है। यह जो सद्यः जात बालक है, इसी के तेज से तुम सब अन्धे हो गये हो। जब तुमने भृगुवंश के बीज को ही नष्ट करने का सकल्प किया, तो सौ वर्षों तक मैं इस गर्भ को धारण किये रही। गर्भ में ही इस बालक ने वेद वेदाङ्गों का अध्ययन किया है। तुम सब इस बालक की ही स्तुति करो।"

यह सुनकर क्षत्रियों ने उस बालक की स्तुति की। कैसा भी सही,था तो वह ब्राह्मण बालक ही, उसने उन सब पर कृपा की। उनकी दृष्टि पूर्ववत् हो गयी। वे सब मुनि पुत्र को प्रणाम करके अपने अपने घर चले गये।

ऊरु से उत्पन्न होने के कारण इन ऋषि कुमार का नाम और्व हुआ। ये क्षत्रियों से बदला लेने के लिये घोर तप करने लगे। इनके तप से तीनों लोक जलने लगे। क्षत्रियों के अपराध से समस्त लोकों पर विपत्ति आई, तब इनके पितरों ने स्वर्ग से आकर और्व मुनि को समझाया, कि हमे क्षत्रिय क्या मार सकते थे। हम तो अपनी बड़ी आयु से ऊब गये थे। इसीलिये धन को छिपाकर हमने जान बूझकर क्षत्रियों को कुपित किया। क्योंकि आत्महत्या हम कर नही सकते थे। आत्महत्या करना महापाप है, इसलिए क्षत्रियों के बाणों से मर कर हम स्वर्ग में सुख से हैं। तुम क्रोध को छोड़ दो और लोकों को नष्ट करने का विचार छोड़ दो।"

तब पितरों के कहने से विप्रर्षि और्व ने अपने क्रोध का परित्याग किया। फिर भी ब्राह्मणों का बलपूर्वक धन अपहरण करने से तथा ब्राह्मणों की हत्या करने से उन कृतवीर्य के वंशजों की दुर्गति तो हुई ही। उन्हें इस लोक में और परलोक में दुःख तो सहने ही पड़े।"

सूतजी कह रहे है-"मुनियो! यह मैंने प्रसंग वश और्व मुनि के कोप की बात कही। भगवान् अपने बन्धु बान्धव और कुमारों से कह रहे हैं-"देखो भाई ब्राह्मण का धनतप ही है। वह तपस्या करने को ही शरीर की रक्षा करता है। उसी के लिए कुछ धन धान्य एकत्रित करते है। ऐसे उदार और कुटुम्बी ब्राह्मणों के धन को जो छीनता है अथवा उसके निर्वाह के निमित्त बँधी हुई वृत्ति का जो अपहरण करता है, वह कुम्भीपाकादि नरको में जाकर घोर यातनाओं को सहता है। दुःखित ब्राह्मण के रोने पर उसके उष्ण अश्रुओं से जितने रजकण भीगते है उतने ही वर्षो तक उस दुःख देने वाले तथा उसके वंशजों को नरक की यातनायें भोगनी पड़ती है। जो अपनी दी हुई या अपने वंशजों की दी हुई अथवा अन्य किसी की दी हुई ब्राह्मण की वृत्ति को हरण करता है, वह बहुत वर्षो तक विष्ठा का कीड़ा होता है। लोभवश जो लोग ब्राह्मणों की वृत्ति का अपहरण करते है वे अल्पायु होते है, उनकी श्री नष्ट हो जाती है। वे राज्यभ्रष्ट हो जाते है तथा इस लोक में और परलोक में नाना यातनाओं को भोगते है।

भगवान् कह रहे है—"सो देखो, भैया! तुम लोग इस बात को गाँठ बाँध लो। इसे सदा स्मरण रखो कि ब्राह्मण एक बार अपराध भी करे तो भी उससे द्वेष मत करना। वह चाहे मारे, ताड़े गाली दे या और खरी खोटी बातें सुनावे तो भी तुम कभी उससे कटु वचन मत कहना। उसे नमस्कार ही करते रहना। तुम प्रत्यक्ष मुझे ही देखो। मैं जब कहीं भी जाता हूँ, ब्राह्मणों को

नमस्कार करके जाता हूँ। सदा उनका स्वागत सत्कार और सम्मान करता हूँ, इसी प्रकार तुम सब भी किया करो। इससे तुम्हारे यश की, बल की, श्री की तथा आयु की वृद्धि होगी। दूर कहाँ जाते हो, तुम्हारे सामने प्रत्यक्ष ही उदाहरण है, देखो इन राजा नृग ने भूल से—अनजान में—ब्राह्मण की गौ दान कर दी थी, इसी के परिणाम स्वरूप इन महायशस्वी परमदानी राजा को गिरगिट योनि प्राप्त हुई।"

सूत जी कहते है—"मुनियो ! यह सुनकर सभी लोगों ने भगवान् की बात का अनुमोदन किया, उनकी आज्ञा को शिरोधार्य किया। तब सम्पूर्ण लोकों को पावन बनाने वाले प्रभु अपने बन्धुबान्धवों को साथ लेकर द्वारकापुरी में आये और वहाँ सुख पूर्वक महलो में रह कर राज काज करने लगे।"

इस पर शौनक जी ने पूछा—"सूतजी ! हमें इस नृगोपाख्यान के विषयमें कई शङ्कायें रह गयी हैं। उनका आप समाधान करें। प्रथम तो हमें यह है,कि राजा नृगने कोई जान बूझकर तो ब्राह्मण की गौ दान किया नही था। भूल में-अनजान में सेवकों के प्रमाद से उनसे यह अपराध बन गया। उस छोटे से अपराध के पीछे उन्हें इतनी दुर्गति क्यों सहनी पड़ी ? (२) दूसरी यह कि अधिक पुण्य करने से पाप क्षय हो जाते है और अधिक पाप करने से पुण्य क्षय हो जाते हैं। जब राजा के इतने अनन्त पुण्य थे, तो यह छोटा सा, अनजान का अपराध क्षय क्यों नही हुआ। (३) तीसरी यह कि वे दोनों ब्राह्मण थे या राक्षस थे, जब राजा अपनी भूल को स्वीकार करता है, एक गौ के उपलक्ष्य में लाख गौ देने को उद्यत है तो उन्होंने राजा पर दया क्यों नही की ? उनके उद्धार का कोई उपाय बताते। पत्नी का दान करते हैं, तो उसे मूल्य देकर लौटा नहीं लेते ? ऐसे ही यह ब्राह्मण लौटा देता, राजा उसकी गौ उसे दे देते। चौथी यह कि

यह जो ब्राह्मणों की इतनी प्रशंसा भगवान् ने की वह वेदज्ञ तपस्वी शान्त दान्त ब्राह्मण के लिए तो उचित ही है, जो केवल नाम के ब्राह्मण हैं निरक्षर लोभी और चरित्र हीन हैं, उनके साथ भी ऐसा व्यवहार किया जाय तब तो समाज में अराजकता फैल जाय, कृपा करके आप हमारी इन शंकाओं का संक्षेप में उत्तर दे।"

यह सुनकर सूतजी बोले–"महाराज ! मैं यथामति यथाशक्ति आपकी शङ्काओं का समाधान करता हूँ। पहिली बात तो यह कि पाप चाहें जानमे किया जाय या अज्ञानमें उसका फल अवश्य ही भोगना पड़ेगा। अग्नि को आप जान में छुएँ या अनजान में उससे अङ्ग जल ही जायेंगे। पाप दो प्रकार के होते हैं शुष्क और आर्द्र। जो जानकर किये जाते है वे आर्द्र होते है, उनका फल बहुत दिनों तक भोगना पड़ता है, जो अनजान में हो जाते हैं, वे शुष्क होते है फल तो उनका भी भोगना पड़ता है, किन्तु उसमें कष्ट नही होता। इसीलिए राजा को कृकलासयोनि में भी कोई कष्ट नहीं हुआ। पूर्व जन्म की स्मृति बनी रही, गंगाजी और द्वारकापुरी का वास मिला। ऐसा पुण्य क्षेत्र का वास पापियों को कैसे प्राप्त हो सकता है। यदि अधमयोनि पाकर फिर पाप कर्मों में प्रवृत्ति होती है, तो पाप बढते हैं। राजा के पाप तो बढे नही उन्हें महान् पुण्य की प्राप्ति हुई इसलिये राजा के शुष्क पाप का परिणाम अन्त में सुखप्रद ही हुआ।

रही अधिक पुण्य से पाप क्षय होने की बात। सो यह बात सत्य है, कोई अधिक पाप करता है, तो उसके पुण्य क्षय हो जाते हैं और इसी प्रकार पुण्य से पाप भी, किन्तु अंत समय के पुण्य पाप क्षय नही होते। "अन्ते या मति सा गतिः।" अन्त में जैसी मति होती है वैसी गति प्राप्त होती है। अन्त में मनुष्य जिस का चिन्तन करते करते मरता है वही योनि उसे मिलती है। जैसे

जड़ भरत जी मृग का चिन्तन करते करते मरे इसलिए उन्हे मृग की योनि प्राप्त हुई। महाराज नृग उन ब्राह्मणों के झगड़े के अनन्तर दान पुण्य करते तो उनका यह अनजान में किया हुआ पाप नष्ट हो जाता। किन्तु वे तो उस वाद विवाद के अनन्तर ही तुरन्त मर गये। जिस समय वे उन दोनों ब्राह्मणों के अभियोग को सुन रहे थे उस समय गौ वाला ब्राह्मण जो कहता उसकी बात पर भी महाराज सिर हिला देते और कह देते आपका कथन सत्य है। दूसरा दान लेनें वाला कहता तो उस पर भी सिर हिला देते। इस पर उस याज्ञिक ब्राह्मण ने कुपित होकर कहा-"राजन्! आप दोनो ओरसे गिरगिट का सा सिरहिला देते है कोई निर्णय नही देते।"इससे राजा को बड़ा दुःख हुआ, ब्राह्मण मुझे गिरगिट बताता है। हाँ गिरगिट ऐसे ही सिर हिलाता है।" बस, प्रारब्ध वश उन्हें अन्त में गिरगिट का स्मरण बना रहा उनका यही अन्तिम कर्म था इसलिये वह नाश न हो सका और अन्त में गिरगिट का स्मरण बना रहने से उन्हें गिरगिट योनि प्राप्त हुई।

अब रही उन दोनो ब्राह्मणों के हठ की बात। सो ब्रह्मन्! इस विषय में आप शान्त चित्त से विचार करें। अब कलियुग में तो यज्ञयाग की प्रथा ही नष्ट प्रायः हो गयी है। जब पहिले लोगों की यज्ञ कर्म में आस्था थी तब अनेक प्रकार के क्लेश सह कर यज्ञ की विधि को साङ्गों पाङ्ग पूर्ण करते थे। यज्ञ में विधि की ही प्रधानता है। विधि हीन यज्ञ का कर्ता तुरन्त ही नष्ट हो जाता है। यज्ञ में यज्ञीयधेनु का नष्ट हो जाना या खो जाना यह बड़ा भारी दोष है। आपने खाण्डिक्य और ऋतध्वज के सम्वाद में सुना ही होगा। खाण्डिक्य कर्म कांड में निष्णात था। ऋतध्वज ज्ञानी था। उसने खाण्डिक्य का सर्वस्व छीन कर उसे पराजित करके राज्य से निकाल दिया। खाण्डिक्य वनों में रहकर जैसे-तैसे निर्वाह करने लगा। इधर ऋतध्वजने एक यज्ञ किया। उसमें

यज्ञीय धेनु नष्ट हो गयी। किसी सिंह ने उसे मार दिया। यज्ञ में यह बड़ा भारी विघ्न हुआ। राजा ने बहुत से ऋषियों से इसका प्रायश्चित पूछा। सबने "कहा हम नहीं जानते, हम नहीं जानते। 'यह बहुत गूढ़ विषय है। खाण्डिक्य के अतिरिक्त कोई नहीं जानता।" तब राजा अपने शत्रु खाण्डिक्य के समीप गये। खाण्डिक्य के मन्त्रियों ने राजा को मार डालने की सम्मति दी, किन्तु धर्मात्मा खाण्डिक्य ने ऐसा नहीं किया। प्रायश्चित बता दिया। प्रायश्चित्त करके राजा ने यज्ञ पूरा किया और फिर इस प्रायश्चित्त बताने के उपलक्ष्य में राजा ने खांडिक्य से मनमानी दक्षिणा मांगने को कहा। यहाँ इस कथा के कहने का सारांश इतना ही है कि यज्ञीय धेनु के खो जाने का पाप बहुत है। धेनु खो जाने से ब्राह्मण अत्यन्त क्षुभित हो रहा था, इस लिये अपनी धेनु लेने के लिये उसने ये बातें कहीं। अब जब उसे यह विदित हुआ कि राजा ने इसे सविधि दान कर दिया है तो उसे दुःख होना स्वाभाविक ही था। उस दूसरे ब्राह्मण ने जो हठ की वह आत्म प्रतिष्ठा के निमित्त की। दान की हुई अन्य वस्तुएँ तो मूल्य देकर क्रय की जा सकती हैं किन्तु दान की हुई गौ का वेचना निषिद्ध है। यह सब होने पर भी यदि ब्राह्मण धैर्य के साथ इस विषय पर विचार करते, तो उचित उपाय निकल आ सकता था, किन्तु भवितव्यता ऐसी ही थी। भावी वश दोनों ही उत्तेजित हो उठे। उनकी उत्तेजना यद्यपि सकारण थी, धर्मरक्षार्थ थी। तथापि वे दोनों ही ब्राह्मण के क्षमा धर्म को भूल गये अब इस में भाग्य के अतिरिक्त दोष किसे दिया जा सकता है।

अब ब्राह्मण की अत्यन्त प्रशंसा वाली बात का उत्तर यही है, कि ज्ञान ही संसार की स्थिति का कारण है। उस ज्ञान को जो ब्राह्मण धारण करते हैं उनकी पूजा प्रतिष्ठा तो आवश्यक ही है।

.जो जन्म से भी ब्राह्मण हैं और कर्म भी उनके ब्राह्मणों के है, वे तो सब प्रकार से पूजनीय है ही। उनसे यदि कोई अपराध बन भी जाय तो उसे क्षमा कर देना चाहिये। जो जन्म से तो ब्राह्मण हैं, किन्तु कर्म उनके अत्यन्त निंदित है,चोरी आदि करते हैं। उन्हें राजा को दण्ड देने का विधान है। उनका सर्वस्व अपहरण करके राजा उन्हें देश से निकाल सकता है। उनसे शूद्रों का सा कार्य भी ले सकता है। किन्तु जन्मना तो वह ब्राह्मण है ही। राजा तो दण्ड देने को विवश है, उसका धर्म है किन्तु अन्य लोगों को दण्ड नहीं देना चाहिए। महाराज ! वेदज्ञ ब्राह्मणों का भगवान् आदर न करें तो यह सम्पूर्ण लोक अज्ञानान्धकार में भटक कर नष्ट हो जाय।"

शौनक जी ने कहा—"सूतजी ! हमारी शंकाओं का समाधान हो गया। अब आप भगवान् के अन्य चरित्र सुनाइये। हाँ,यह तो बताइये। जो व्रजवासी भगवान् से इतना प्रेम करते थे, उनसे मिलने भगवान् कभी व्रज में गये या नहीं।"

सूतजी बोले—"महाराज ! गये अवश्य होगे, द्वारका वासी नर नारी प्रायः कहा करते थे भगवान् हस्तिनापुर गये हैं, व्रज गये हैं, किन्तु मुझे उनके व्रज यात्रा के सम्बन्ध में विशेष ज्ञान नहीं है। हाँ बलभद्रजी तो अवश्य एक बार व्रज गये थे।"

शौनक जी ने कहा—"तो सूतजी ! हमें बलभद्रजी की ही व्रज यात्रा के वृत्तान्त को सुनायें। बलराम जी भी तो भगवान् के अवतार है। दशावतारो में उनकी भी तो गणना है। उनके तो आपने विशेष चरित्र सुनाये ही नहीं। अब कुछ उनके ही मधुर चरित्र सुनाइये।"

सूतजी बोले—"अच्छी बात है महाराज ! अब मैं बलभद्र जी के ही चरित्र को सुनाता हूँ । पहिले आप उनकी व्रजयात्रा के ही प्रसङ्ग को प्रेम पूर्वक श्रवण करें ।"

छप्पय

यादव ! कबहुँ न भूलि विप्र को धन तुम खाओ ।
जो नहिं मानो सीख अवसि नरकनि महँ जाओ ॥
अहिफन, पारो, भक्षि, हलाहल विषहुँ पचावें ।
किन्तु न द्विज धन पचै खाय दुख अधिक उठावें ॥

यों सबकूं उपदेश करि, गये सबनि सँग श्याम पुर ।
इत इच्छा व्रज गमन की, उपजी श्री बलदेव उर ॥

व्रजमें बलदेवजी

(११२८)

बलभद्रः कुरुश्रेष्ठ भगवान् रथमास्थितः ।
सुहृद्दिदृक्षुरुत्कण्ठः प्रययौ नन्दगोकुलम् ।*

(श्रीभा० १० स्क० ६५ अ० १ श्लो०)

छप्पय

रथ चढ़ि व्रज महँ गये सुनत व्रजवासी धाये ।
मिले ललकि जनु प्रान मृतक तन महँ पुनि आये ।।
सिर सूँघत पितु मातु और सब हिये लगावें ।
करि करि पिछली यादि नयन तें नीर बहावें ।।
प्रणय कोप युत सब सखीं, व्यंग वचन पुनि पुनि कहें ।
कहो निगोड़े श्याम अब, रानिनि सँग सुखतें रहें ।।

सगे सम्बन्धी बन्धु बान्धवोंका स्नेहानुबन्ध त्यागना मुनियोंके लिये भी दुस्त्यज है । जिनके साथ बाल्यकालके सुखद दिवस बीते है जिनके साथ मधुर मधुर खेल खेले हैं, जिनके साथ घुल मिलकर रहे है, वे भाग्य वश बिछुड़ जायँ

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! भगवान् बलदेवजी अपने सुहृद सम्बन्धियोंको देखने की उत्कण्ठासे रथ पर चढ़कर नन्दजी के गोकुल को गये ।"

तो बड़ा दुःख होता है। उनसे मिलने की उत्कण्ठा सदा बनी रहती है और उनसे मिलकर हृदय कितना प्रफुल्लित होता है, यह अवर्णनीय विषय है। चिरकाल के बिछुड़े बन्धु जब मिलजाते है, तो वे सभी पुरानी बाते चल चित्रों के सदृश हृदय पटल पर आती है और विलीन हो जाती है पुनः नई आजाती हैं। यह कौतूहल कब तक चलता रहता है, कुछ कहा नहीं जा सकता।

सूतजी कहते है-"मुनियो ! द्वारका में भगवान् को सब सुख थे। सोलहसहस्र एक सौ आठ सुन्दरी पतिपरायणा रानियाँ थीं। सुवर्ण के भवन थे, पारिजात के पादप थे। सुन्दर सुशिक्षित आज्ञाकारी दास दासी थे। अतुल ऐश्वर्य था, लाखों लड़के थे, फिर भी वे इन सबको व्रज के ऐश्वर्य के सम्मुख तुच्छ मानते थे।

जब कभी उन्हें ग्वाल बालों के संग गौओं को लेकर वन में जाना वहाँ नाना प्रकार के विहार करना, गोपियों का सहज अनुराग, लहरिया दार बालुका की रस मय वृन्दावन भूमि, सुन्दर हरा भरा गोवर्धन पर्वत, गौओं के रहने का व्रज, गोपों की भाँति भाँति की क्रीड़ायें, असुरों का आगमन, तथा गोपियों के साथ हास, विलास, रास और होरी आदिकी बातें याद आतीं तो उनके नयनों से निरन्तर नेहका नीर निकलता रहता, रानी उनके इस दुख का कारण न समझ सकती। उनके समझने की बात भी नही। वन्ध्या प्रसव की पीड़ा का अनुभव कैसे कर सकती है। कभी कभी भगवान् अपने बड़े भाई बलदेवजी से व्रज की बातें किया करते और करते करते विह्वल हो जाते। दोनों ही भुक्त भोगी थे। कभी कभी दोनों मिलकर सम्मति भी करते—"एक बार फिर व्रज में चलेंगे। फिर वहाँ का आनन्द लूटेंगे।"

जब इस प्रकार कहते कहते बहुत दिन व्यतीत हो गये, तो एक दिन बलदेवजी ने कहा—"कृष्ण भैया ! तू तो जन्म का भूठा है, तेरा पता नही तू कब वृन्दावन चलेगा। मेरी तो अपने

वृजवासी बन्धु बान्धवों से मिलने की उत्कट इच्छा हो रही है, मैं तो अकेले ही जाकर मिल आता हूँ। तुझे चलना हो तो चल।

भगवान्‌ने कुछ संकोच के साथ कहा–"दादा ! मुझे तो अभी कई आवश्यक कार्य हैं। अभी तो मैं न चल सकूँगा। अच्छी बात है, आप हो आवें सबसे मेरा यथा योग्य कहें माता पिता को प्रणाम कहें। मैं भी कभी अवकाश मिलने पर आऊँगा।"

हँसकर बलदेव जी ने कहा–"भैया ! तेरे काम तो कभी समाप्त होने के नहीं। तुझे तो अवकाश मिलने का नहीं ऐसे ही आज कल आज कल कर करके उनकी उत्कण्ठा को बढ़ाता रहेगा। अच्छी बात है, मैं तो जारहा हूँ।" यह कहकर बलदेवजी ने अपना तालके चिह्न से चिह्नित ध्वजा वाला सुवर्ण मण्डित रथ सजवाया और उसमें बैठकर वे व्रज के लिये चल दिये।"

इधर जबसे राम कृष्ण व्रज छोड़कर गये थे, तभी से समस्त व्रजवासी रात्रि दिन उन्हीं का स्मरण करते रहते। नित्य बाट जोहते रहते, कि संभव है राम श्याम अब आवें अब आवें।' एक दिन वे अति उत्कण्ठित होकर यमुनाजी की ओर देख रहे थे, राम कृष्ण की लीलाओं का गायन कर रहे थे. कि सहसा उन्हें सुवर्ण मंडित ताल की विशाल ध्वजा वाला रथ दिखाई दिया। सबके सब दौड़कर रथ की ओर गये। देखा उसमें एक कुण्डल पहिने बलदेवजी बैठे हुए है। उन्हें देखकर उन सबके हर्ष का ठिकाना नही रहा। बलदेवजी भी व्रजवासी गोपों को देखकर खिल उठे। वे सहसा रथ से कूद पड़े। उन्होंने सबका आलिङ्गन किया। छोटे गोपों ने उनके चरण छुए। कुछ गोप दौड़े दौड़े यशोदा मैया के समीप गये। राम कृष्ण की स्मृति में रोते रोते मैया की आँखों की ज्योति क्षीण होगयी थी। गोपों ने हाँपते हाँपते कहा—"मैया ! मैया ! बलदाऊ भैया आ रहे है।"

मैया को विश्वास नहीं हुआ। वह बोली—"अरे, छोरामों! क्यों तुम मुझे बहकाते हो। मेरे ऐसे भाग्य कहाँ जो मैं अपने राम श्याम का पुनः मुख देख सकूँ।"

गोपकुमारों ने कहा—"तेरी सूँ मैया! हम अभी देखकर आ रहे हैं।" इतने में ही खन खन करता हुआ रथ नन्द की पौरि पर आकर खड़ा हुआ। व्रजराज उठ कर रथ के समीप गये। बलदेवजीको देखकर उनके रोम रोम खिल उठे। बलदाऊजी ज्यों ही पैर छूने को आगे बढ़े कि नन्दबाबा ने कसकर छाती से चिपटा लिया और अपने प्रेमाश्रुओं से उनके बालोंको भिगो दिया। कुशल पूछते पूछते बलदेवजी का हाथ पकड़े ही पकड़े व्रजराज बलदेव जी को भीतर बगर में ले गये और पौरि पर से ही बोले—"महरि! ले यह तेरा बलराम आगया, जिसके लिये तू सदा रोती रहती थी।" इतना सुनना था, कि मैया उठकर खड़ी हुई किन्तु उसके पैर लड़खड़ाने लगे। वह गिरना ही चाहती थी, कि दौड़कर बलरामजी ने उसे पकड़ लिया और पैर छू कर कहा—"मैया! मैं आगया।"

माता ने रोते रोते बलदेवजी के सिरपर हाथ फेरा और बड़े प्यार से भर्राई हुई वाणी में अश्रु विमोचन करते हुए कहा—"बलुआ! अच्छा आगया भैया, तू। भगवान् तुम्हारी बड़ी आयु करे। इसी प्रकार तुम दोनों भैया सदा हमारी रक्षा करते रहो। जगत् का पालन करते रहो। यह कह कर मैया ने छोटे बच्चे की भाँति उन्हें गोदी में बिठा लिया और बारम्बार हृदय से लगाकर प्रेमाश्रु से उन्हे भिगोने लगी। रोते रोते मैया ने पूछा—"कनुआ नही आया क्या ?"

बलदेवजी ने कहा—"मैया! वह भी आवेगा। उसे अभी द्वारका में बहुत से काम हैं।"

मैया बोली—"अच्छा भैया! तू ही आगया! मैं तो तुम्हारे

विना अधीर थी। तुम लोगोंने तो हमें भुला ही दिया। अच्छा है भैया, तुम जहाँ भी रहो सुखसे रहो।"

मया इस प्रकार बलदेवजीको प्यार कर रही थी इतनी ही देर में यह बात समस्त व्रजमण्डल में फैल गयी। जो जैसे ही सुनता तैसे ही दौड़ा आता। वड़े बूढ़े, बालक, युवक, नर नारी जो सुनते वे ही चल देते। इस प्रकार नन्दजी के आँगन में बड़ी भारी भीड लग गयी। बलदेवजी ने उठ कर बूढ़े बूढ़े गोपों को प्रणाम किया। उनकी अवस्था वालोने उन्हें हृदयसे लगाया और छोटोंने उनके चरण छुए। इस प्रकार आयुके अनुसार, मित्रताके अनुसार तथा सम्बन्धके अनुसार सभीने परस्परमें विधिवत् प्रणाम नमस्कार किये। बूढ़ी गोपियोंने आकर उनके शरीर पर हाथ फेरे। युवतियोंने अपने घूँघटकी ओटसे लजाते हुए बलदेवजीको देखा। लड़कियाँ उन्हें चारों ओरसे घेर कर खड़ी हो गयी और चाचा ताऊ कहकर उन्हे छूने लगीं। बलरामजीने सबका यथा योग्य सम्मान किया। समवयस्क ग्वालबालोंने हँसते हँसते हाथ मिलाया। कर स्पर्श करके एक दूसरेको अपनी ओर बल पूर्वक खींचने लगे। तब मैयाने कहा—'बलुआ! बहुत थक गया होगा। भैया! वस्त्र बदलले हाथ पैर धोले ये लोग तो सब बैठे ही हैं।"

मैयाके आग्रह पर बलदेवजी उठे, उन्होंने नमक पड़े हुए उष्ण जलसे पैरोंको धोया मुख हाथ धोकर कुल्ला किया और वस्त्र बदल कर मैया प्रसन्नताके लिये कुछ जल पान भी किया। इतनेमें ही बहुतसे श्रीकृष्णके अत्यन्त अन्तरङ्ग सखा आगये। उन सबके शरीर क्षीण हो रहे थे। उन्होंने कमल नयन श्रीकृष्ण के निमित्त समस्त सुखोपभोगोंका त्याग कर रखा था। उन्हें देखकर बलदाऊजी को बड़ी दया आयी। वे उनसे अत्यन्त ही स्नेह के साथ मिले। बलदेवजीको देख कर सभीके नेत्रोंमें जल भर आया।

और वे गद् गद् वाणीसे बोले—" बलदाऊजी ! कहो क्या हमारे समस्त सम्बन्धी यादव अच्छे तो है ?"

बलदेवजीने कहा—"हाँ भैया ! किसी प्रकार दिन काट रहे हैं, तुम सब तो कुशल पूर्वक हो न ?"

आह भरकर गोपोंने कहा—"अरे, भैया ! हमारी कुशलको तो अक्रूरजी यहाँसे ले गये। दिन तो हम काट रहे हैं। तुम सब लोग तो द्वारकामें राज कर रहे हो। अब तुम्हारे भैया राज कन्याओंसे विवाह हो गये हैं। बहुतसी बहुएँ आगयी है, बहुत बाल बच्चे हो गये हैं। अब तो तुम बाल बच्चे वाले बन गये हो। अब हमारी तुम्हें काहे को याद आती होगी ? "

संकोचके साथ बलदेवजीने कहा—"अरे भैयाओ ! तुम लोग ऐसी बातें क्यो करते हो भला, याद न आती तो इतनी दूरसे मैं दौड़ा दौड़ा कैसे आता। भला, कभी व्रजको तथा आप व्रजवासियोको भी हम भूल सकते है। हमारे रोम रोममें यहाँकी अनन्त स्मृतियाँ निहित है। क्या करें यहाँसे जाकर ऐसे झंझटों में फँस गये, कि इच्छा होने पर भी यहाँ तक न आ सके। एक तो उस दुष्ट कंसने हमारे परिवार वालोंको बड़ा दुःखी कर रखा था जैसे तैसे उसका अन्त हुआ, तो फिर उसका ससुर जरासंध हमारे पीछे पड़ गया। अन्तमे उसके कारण हमें मथुरा पुरी छोड़ ही देनी पड़ी। वहाँ भी बडे बड़े झंझट, नित्य लड़ाई झगड़े मचे रहते है। कृष्ण तो उन्हीं सबके कारण अब तक भी नही आ सका ' मैं जैसे तैसे आँख मीच कर चला आया हूँ।"

गोपोंने कहा—"हाँ, भैया ! यह ससार ऐसा ही है। यहाँ गृहस्थाश्रम चिन्ताओं का घर है। इसमें नित्य नई चिन्तायें लगी रहती हैं। जब तक विवाह नहीं होता तब तक विवाह की चिन्ता होती है। विवाह कर लिया मानों चिन्ताओं का पहाड़ उठा कर सिर पर रखा। चलो यह अच्छा हुआ पापी कंस मारा

गया। उसके कारण यादव ही नहीं सभी दुखी रहते थे। हम सबको भी रात दिन उसीका भय बना रहता था। अब यादव गण उसके बन्धनसे मुक्त हो गये। रही जरासन्धकी बात, सो हमने सुना उसे भी आप लोगोंने कुण्डिनपुरमें जीत लिया मथुराका दुर्ग कुछ अधिक सुरक्षित नही था। शत्रु जब चाहते तभी उस पर चढ़ आते। अब यह बड़े आनन्दकी बात है, कि आप अपने शत्रुओंको जीत कर तथा विपक्षी असुरोंको मारकर द्वारकामे सुदृढ़ अभेद्य किला बना कर सुख पूर्वक निर्भय हो कर रहते हो।" इस प्रकारकी और भी बाते होती रहीं। अन्तमें स्त्रियो के झुण्डोंको बलरामजीसे बातें करनेको उत्सुक देख कर गोप लोग वहाँसे हट गये। तब बलरामजीने मन्द-मन्द मुस्कराते हुए उनको सम्मान भरी दृष्टिसे देख कर कहा—"कहो तुम सब अच्छी हो न ? सब कुशल मङ्गल है न ?"

गोपियोंने आंखोंमें आँसू भर कर कहा—"हमारी तो जैसी कुशल है, उसे हम ही जानती हैं। कहो आप सब तो अच्छे हैं न ?"

बलरामजीने कहा—"हाँ, समयको धक्का दे रहे हैं।"

गोपियोने व्यंगके स्वरमें कहा—"कैसे इधर भूल पड़े। कहीं हस्तिनापुर जारहे होगे, मार्ग भूलकर इधर चले आये होगे ?"

बलदेवजी बोले—"अब तुम जो चाहो सो कहलो। हम भूले नहीं हैं आप सबकी स्मृति निरंतर बनी रहती थी। काम धन्धे इतने है कि मरने तक का भी समय नही। कृष्णकी बड़ी इच्छा थी, किन्तु इन्ही झन्झटोंसे वह भी न आ सका।"

गोपियोंने कहा—"हां, यहांकी तो इन्हें चिन्ता होगी ही। अब तो सुना है सोलह सहस्र राजकन्याओंके साथ विवाह कर लिया है। एक ही बहूकी चिन्तासे सिरके बाल उड़जाते हैं फिर सोलह सहस्रोंकी चिन्ता करनी होती होगी उन्हें कैसे समय

मिल सकता है। अब उन्हें हम गाँवकी गँवारिने ग्वालिनियों की याद काहे को आती होगी, अब तो वे पुरस्त्रीजनवल्लभ बन गये हैं। अच्छा यह तो बताइये वे प्रसन्न तो हैं ?"

हँसते हुए बलदेवजी बोले—"हाँ, सब आप लोगों का आशीर्वाद है."

चौक कर व्रजाङ्गनायें बोली—"हमारा क्या आशीर्वाद, श्रीकृष्णके लिये ? बलरामजी ! क्यों उलटी गङ्गा बहाते हो ? हम उनकी कौन होती हैं। वे तो पुरवासियोंके प्राणाधार है। अच्छा सच सच बताइये वेभी यहाँके अपने बन्धु बान्धवों और माता पिताका स्मरण करते है ?"

बलदेवजीने कहा—"भला यह भी कोई पूछनेकी बात है, अपने माता पिताको बन्धु बान्धवोंको कोई भूल सकता है ?"

गोपियोने पूछा—"अच्छा, नही भूले हैं, क्या वे अपनी मैया यशोदाको देखने कभी एक बार भी व्रजमें आवेगे ?"

बलरामजी ने कहा—"आनेको तो वह नित्य ही कहता रहता है। *आज चलूँ, कल चलूँ !* उसीके पीछे मैं भी नहीं आसका। अब जब मैंने देखा उसका अभी चलना कठिन है, तो मैं अकेला ही चला आया, अवसर मिलने पर वह भी अवश्य आवेगा।"

गोपियोंने कहा—"अच्छा, बलरामजी ! यह तो बताइये, उन महाबाहु श्रीकृष्णको कभी हमारी की हुई सेवाओं की भी स्मृति आती है। कभी कथा प्रसङ्गमें हमारी भी चर्चा करते ?"

बलदेवजीने कहा—"अब उन बातोंको मैं अपने मुखसे क्या कहूँ। तुम्हारी वे कितनी यरद करते हैं, उसे कहनेकी मुझमें क्षमता नहो।"

इतना सुनते ही सबके नेत्रोमेंसे टप टप बड़े बड़े आँसू गिरने लगे। रोते रोते आँसुओ और नाकके पानीको पोंछती

हुई वे भर्राई वाणीमें कहने लगीं—"बलदेवजी ! हमें श्रीकृष्णसे ऐसी आशा नहीं थी। देखिये, जिनके लिये हमने अपने माता,पिता, पति, पुत्र, भाई, बहिन, तथा अत्यन्त दुस्त्यज सगे सम्बन्धी और बन्धु बान्धवों को त्याग दिया था, वे ही श्रीकृष्ण हमें बटाऊ की भाँति छोड़ कर चले गये। नेह का नाता उन्हों ने भी नही निबाहा। तृण के समान सम्बन्ध तोड़ कर, वे हमसे मुख मोड़ कर सदाके लिये चले गये। इसी लिये कहा है परदेशीसे प्रीति करना मानों जान बूझ कर अपने सिर पर विपत्तियोंको लादना है। हमें स्वप्नमें भी आशा नहीं थी इतने प्रेम करने वाले कृष्ण हमें इस प्रकार ठुकरा देंगे। इतने ही अल्पकालमें हमें भूल जायँगे।"

हँस कर बलदेवजीने कहा—"इसमें कुछ तुम्हारा भी दोष हो सकता है। तुमसे जब वह इतना स्नेह करता था, तो तुम्हें उसे मथुरा जाने ही नहीं देना था। सब मिल कर रोक लेतीं।"

रोते रोते गोपियोने कहा—"बलदेवजी ! तुम कैसी बातें करते हो ? जानेवाला भी किसीसे रुका है। फिर सीदे सादे आदमीको कोई रोक भी ले, जिसकी नस नसमे कपट भरा है, उसे कोई कैसे रोक ले। जब वे यहाँ रहते थे, तो एकान्तमें कितनी मीठी मीठी प्रेम भरी बातें किया करते थे। बार बार कहा करते। तुम्हारी सब वस्तुएँ मधुर हैं। तुमसे बातें करते करते मेरा चित्त ही नही भरता। तुमने मेरी बड़ी सेवा की है, मैं तुम्हारी सेवाके ऋण से दब गया हूँ। तुम्हारे प्रेमका मैं किसी प्रकार बदला हो नही चुका सकता। ऐसी ऐसी कपट प्रेम मयी बातो का भला कौन स्त्री विश्वास करेगी ? हमतो कुछ जानती नही थी, इस लिये उनकी बातोंमें आ गयीं।"

इसपर एक दूसरी आँसू पोंछती हुई बोली—"बलदेवजी ! हम तो गाँवकी गँवारिनी थी। ये नगरकी स्त्रियाँ तो बड़ी चतुर

होती हैं वे इन अव्यवस्थित चित्त श्रीकृष्णकी बातों का विश्वास कैसे करती होंगी ? श्रीकृष्ण तो बड़े कृतघ्नी हैं न ? कोई चाहे इनके पीछे अपने प्राणोंको भी दे दे तो भी इनका हृदय नहीं पसीजता। दूसरोंको इस प्रकार भ्रममें डाले रहते हैं, कि न तो इनका अविश्वास ही होता है, न पूर्ण रीतिसे विश्वास ही होता है। हम सब तो उनके प्रत्येक बातका विश्वास करती रहीं,किन्तु उन्होंने हमारेसाथ विश्वासघात किया। नगरकी नवेलियोंको तो उनके झाँसे में न आना चाहिये।"

इसपर एक दूसरी बोली—"अरी, वीर तुम जानती नहीं। ये कारे कृष्ण बडो बडो विचित्र बातें बनाना जानते हैं। उनकी मन्द मन्द मनोहर मुसकान और अनुराग भरी चितवन से हृदयमें हठात् प्रेम उद्दीप्त हो उठता है। उस प्रेमावेशमें आकुल होकर वे नारियाँ अपने आपको भूल जाती होंगी और उसी आवेशमें वे इनकी मीठी मीठी बातोंका अवश्य विश्वास कर लेती होंगी ?"

इसपर एक गोपीने झुँझला कर कहा—"होगी, बहिनजी। जिस मार्गमें चलना ही नहीं उसके पेड गिनने से लाभ ही क्या ? जब श्रीकृष्ण हमें छोड़ ही गये। वे हमें अपनी समझते ही नहीं तो व्यर्थमें उनकी चर्चा करनेसे लाभ ही क्या ? वे अपने घर हम अपने घर, छोड़ो उनकी बातों को अब कोई करो दूसरी बातें।" यदि हमारे बिना उनका समय बीत जाता है, तो हमारा भी किसी न किसी प्रकार समय बीत जायगा। हाँ अन्तर इतना ही है कि उनका समय सुखसे आमोद प्रमोद में बीतता होगा। हमारा दुःखमें रोते रोते बीत रहा है।"

इस पर एकने कहा—"सखि ! तुम कह तो सत्य ही रही हो यदि श्रीकृष्ण को हम भूल सकती, तब तो सब झंझट ही दूर हो जाते, हमें ये दुःखके दिन देखने ही न पड़ते। किन्तु उनको

कथा तो दुस्त्यज है। वे किसी प्रकार भुलाये ही नहीं जाते जितना ही उन्हें भुलाना चाहती है, उतने ही वे और अधिक याद आते है ।"

सूतजी कहते है—"मुनियो ! इस प्रकार बातें करते करते सभीको श्याम सुन्दरकी अधिक स्मृति हो आई। वे भगवान् की मधुर हँसी, प्रेम भरी बोली, मनोहर चितवन, ललित गति और प्रेम पूर्वक किये आलिङ्गनोंको स्मरण करती हुई ढाह मार कर रोने लगी। सब सुबकियाँ भरने लगी और मुख ढांक ढांक कर अश्रु विमोचन करने लगीं। बलदेवजीने देखा यह तो रङ्गमें भङ्ग हो गयी। विरहका वेग अत्यधिक बढ़ गया, तब तो वे उन गोपियोंको अनेक प्रकारसे समझाने लगे। वे नाना प्रकारकी अनुनय विनय करनेमें कुशल थे। बातें बनाना वे भी जानते थे। अतः उन्होंने कहना आरम्भ किया—'अरे, तुम इतनी दुखित क्यों होती हो, श्रीकृष्णको तो तुम्हारे बिना द्वारकामें कुछ अच्छा ही नहीं लगता। वे सदा तुम्हारा ही स्मरण करते रहते है। वे शीघ्र आकर तुमसे मिलेगे और तुम्हारे विरह जनित सन्तापको दूर करेंगे।' इस प्रकार अनेक मीठी मीठी बातें कह कर बलदेवजी ने उन सबको शान्त किया। अब बलदेवजी ने जैसे अपने यूथकी गोपियों के साथ रात्रिमे क्रीड़ायें की उनका वर्णन मैं आगे करूँगा।'

छप्पय

जिन हित हम पितु, मातु, स्वजन, परिजन सब त्यागे।
तृन समान ते तोरि नेह हमकूँ तजि भागे॥
कपट प्रेमको जाल रच्यो हम मृगी फँसाईं।
कैसे तिनिको तहाँ करति विश्वास लुगाईं॥
प्रेम कोप महँ भरि कहति, सबहि श्याम रङ्ग महँ रँगी।
हरि चितवनि बोलनि चलनि, सुमिरि सुमिरि रोवन लगीं॥

वलदेवजी की व्रज में पुनः क्रीड़ा

(११२६)

द्वौ मासौ तत्र चावात्सीन्मधुं माधवमेव च।
रामः क्षपासु भगवान् गोपीनां रतिमावहन् ॥*

(श्री भा० १० स्क० ६५ अ० १७ श्लो०)

छप्पय

समुझाई वलदेव करीं क्रीड़ा तिनि सँग महँ।
मधु माधव द्वै-मास सवनि वै विहरें वनमहँ॥
कालिन्दी इक दिवस करन जल केलि वुलाई।
किन्तु समुझि उरमत्त न तिनिके ढिंगसो आई॥
संकरषन अति कोप करि, हल तै खेंची तानिकें।
डरीं तुरत चरननि परीं, आई लोहो मादि के॥

---

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! इस प्रकार भगवान् बलभद्र जी वृज मे चैत्र और वैशाख दो महीने रह गये। उन रात्रियो मे वे गोपियो के प्रेम को बढ़ाते थे।"

जिन स्थानों में अपने प्यारे के साथ सुन्दर सरस क्रीड़ायें की हैं, उन स्थानोंको देखकर हृदय में एक प्रकार की हूक सी उठती है। उस स्थान को देखकर वे सब स्मृतियाँ नई हो जाती है, वे सब बातें स्मरण हो उठती हैं। यहाँ उन्होंने मुझे हार पहिनाया। यहां से पुष्प चयन किये थे। यहां बैठकर ऐसी घुलघुलकर बतें हुई थी। संयोगवश अपने बिछुड़े प्रेमी फिर कभी भाग्य से मिल जायँ और फिर वे ही सरस क्रीड़ायें देखने, सुनने और अनुभव करने को मिल जायँ, तब तो कहना ही क्या। वियोग जनित समस्त संताप दूर होकर एक नूतन स्फूर्ति का संचार हृदय मे होने लगता है और पूर्वकी अपेक्षा सहस्रों गुण सुख इसमें मिलता है। यह ज्ञान भी बना ही रहता है, एक दिन इसका भी अन्त होना है, फिर रोना है फिर तड़फना। फिर प्यारे की स्मृति में सदा अश्रु विमोचन करना है। संयोग वियोग का यह चक्र सदा चलता ही रहता है।

सूतजी कहते हैं—मुनियो ! बलदेवजी के आने से फिर व्रज-मण्डल में सरसता की लहर छा गयी। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी की गोपियों का यूथ पृथक् था और बलदेवजी की गोपियोंका यूथ पृथक्। भगवान् के यूथ वाली गोपियों को तो बड़ा सुख हुआ चलो श्यामसुन्दर के सब समाचार मिल गये। बलदेवजी के आने से नित्य उनके सम्बन्धकी चर्चा होगी। वे हमारा सन्देश श्यामसुन्दर से कहेंगे। बलदेवजी के [illegible] कोई स्मरण और चिन्तन और भी अधिक होगा, किन्तु [illegible]

के यूथ वाली गोपियों को तो उनके साथ क्रीड़ा करने का भी सुअवसर प्राप्त होता था।

बलदेवजी वसन्त ऋतु के दो मास—चैत्र और वैशाख—वहां व्रज में सुख पूर्वक रहे। वे उन वासन्ती निशाओं में व्रजाङ्गनाओं के साथ विहार करते हुए उनके आनन्दको निरन्तर बढ़ाते

रहते थे। व्रजवनिताओं से वेष्टित बलरामजी विविध वनों में, कुमुदकुसुमकी गन्ध से सुवासित यमुना पुलिनों में तथा नीलनीर वहाँ नगनन्दिनी कालिन्दी के तटकी निभृत निकुञ्जोंमें निरन्तर आमोद प्रमोद करके सभी को सुख देते थे।

बलभद्रजी को कुसुमों के मधुका वृक्षों के रसों का पानकरने का व्यसन था। अतः वरुणने अपनी बेटी वारुणी को वृन्दावनके विशदवनों में बहने के लिये तथा बलभद्रजी की सेवा के निमित्त भेजा। वह भी पिताकी आज्ञा शिरोधार्य करके द्रवरूप से ताड़ आदि वृक्षों की कोटर से बहने लगी। भगवान् संकर्षण को जब पिपासा देवी आकर चंचल करती तो वरुणपुत्री उसे तुरन्त शान्त कर देती। इससे उन्हें बड़ा सुख मिलता उस दिव्य वारुणी देवी की सुन्दर सुवास से वह विहारवन सुवासित हो रहा था। अपनी प्रियाओं के सहित उस परम प्रिय पेयको पानकरके प्रभुबलदेवजी परम प्रमुदित हुए। उसकी स्फूर्ति से स्फूर्तिमान होकर श्यामाग्रज संकर्षणजी के नयन अरुणवर्ण के हो गये। कण्ठ में वनमाला धारण किये, तथा एक ही कान में कलित कुण्डल धारण किये वे मदोन्मत्त की भाँति सुखपूर्वक विहार करने लगे। जानुपर्यन्त लम्बायमान वैजयन्ती माला से वे ऐसे जान पड़ते थे मानो लताओंको मसलता हुआ उनके रंगबिरंगे पुष्पोंसे सुशोभित बड़ी बड़ी डालियों को कण्ठमें धारणकिये गौर वर्णका गजराज अपनी हथिनियोंके साथ वनमें घूम रहा हो। उनका मनोहर मुखारविन्द स्वेदरूपतुषारकणों से विभूषित हो रहा था। वे सब व्रजवनितायें बलदेवजी के विरुदावली का गान कर रहीं थीं। उनके कमनीय कण्ठसे निकले अपने सुयश गान को सुनते हुए वे वनों में विचरण करने लगे।

चैत्र का अन्त था, वनमें विचरते विचरते तथा कमनीय क्रीड़ायें करते करते बलदेवजी को स्नान करने की तथा व्रज-वनिताओं के साथ जलकेलि करने की इच्छा हुई। वहाँ से यमुना जी कुछ दूर पड़ती थी। उन्होंने वही बैठे बैठे पुकारा—"यमुने! आओ, आओ! यहाँ अपना सुन्दर सुखद स्वच्छ शीतल सलिल बहाओ। हम सबका श्रम संताप मिटाओ। अपना मनोहर मधुर पयपान कराओ। कालिन्दी आओ आओ। देर मत लगाओ।"

यमुनाजी ने बलदेवजी के वचन सुने वह हँस पड़ी और मन ही मन कहने लगी–"बलदेवजी तो मदोन्मत्त हो रहे हैं। बताओ ऐसे मे सबके बुलाने पर उनके पास जाऊँगी तब तो मेरी मर्यादा ही नष्ट हो जायगी। मेरा मार्ग ही अनिश्चित हो जायगा। मैं अपनी इच्छानुसार बहती हूँ। जिसे नहाना हो, जलपान करना हो, मेरे समीप आजाय।" यही सब सोचकर यमुना जी बलदेवजी के बार-बार बुलाने पर भी नही आई तब तो उन्हे बड़ा क्रोध आया। वे यमुनाजी को डाँटते हुए बोले–" अरी पापिन ! तू बड़ी अभिमानिनी हो गयी है। इन्द्रादिक देवता तो सदा मेरी आज्ञामे हाथ जोड़े खड़े रहते है और तू नदी होकर मेरे बुलाने पर भी नही आती ? मेरे वचनों की अवज्ञा कर रही है। मुझे मत्त समझकर मेरी अवहेलना करके मेरे समीप नही आ रही है। अच्छी बात है मैं अपनी हल की नोंक से खींच कर तेरे सैकड़ों टुकड़े किये देता हूँ। तब तुझे मेरा प्रभाव जान पड़ेगा।" यह कहकर भगवान् हलधरने अपना हल सम्हाल ही तो लिया। ज्यों यमुनाजी की धारामें हल की नोंक लगाकर उसे अपनी ओर खीचना चाहा त्योंही यमुनाजी तुरन्त दिव्य रूप रखकर भयभीत और चकित होकर संकर्षण भगवान् के चरणों में आकर गिर गईं और अत्यन्त ही विनीत भावसे उनकी स्तुति करने लगी।–"हे देवाधिदेव ! हे बलरामजी ! हे जगत् पति मुझसे बड़ी भूल हो गयी। मैं आपके पराक्रमको पहिचान न सकी, आप तो हे देव ! सम्पूर्ण जगत् के एकमात्र स्वामी है। यह सम्पूर्ण भूमण्डल आपके सहस्र फणों मे से एक फणपर सरसोंके सदृश रखा हुआ है। मैं मोहवश आपके वास्तविक स्वरूप भूल गयी थी। हे भगवन् ! मोह तथा अज्ञानवश मुझसे भूल हुई, उसे आप क्षमा करें। अब मैं समझ गयी। आप सर्व समर्थ हैं। अब मेरे ऊपर कृपा कीजिये। मुझे छोड़ दीजिये।

शरणागत की रक्षा तो सज्जन सदा से करते ही आये है। मैंने अब एक मात्र आपके ही चरणों की शरण ली है।"

सूत जी कहते है—"मुनियो ! जब बलदेवजी के चरणों में पड़ कर यमुना जी बहुत गिड़गिड़ायी, तब कृपा करके उन्होंने उनको क्षमा दान दिया। फिर अपनी प्रियाओं के साथ हाथी जैसे सरोवर में क्रीड़ा करता है उसी प्रकार व्रजाङ्गनाओं के साथ उन्होंने जल क्रीड़ाकी गोपियोंने चारों ओर से जल उलीच उलीचकर उन्हें विवश सा बना दिया। उन्होंने भी सबको छींटे डाल डालकर सन्तुष्ट किया। जब जलक्रीड़ा हो चुकी, तब सब जल से बाहर हुए। उसी समय तुरन्त लक्ष्मीजी वहाँ प्रकट हुईं उन्होंने नील वर्ण के दिव्य दो रेशमी वस्त्र, महामूल्यवान् मणिमय आभूषण तथा सुन्दर सुगन्धित दिव्य केशर कस्तूरी युक्त चंदन उनको अर्पित किया। वस्त्राभूषण पहिन कर तथा सर्वाङ्ग में चन्दन लगाकर बलदेवजी की शोभा कोटि कन्दर्पों के सदृश हो गयी। वे मत्त गजराज के सदृश सुशोभित हो रहे थे। इस प्रकार वे नित्य नूतन प्रकार की क्रीड़ायें करके समस्त व्रजवासियो को आनन्दित करने लगे।

मुनियो ! जहाँ बलरामजी ने यमुनाजी को खींचा था, वह स्थान अब तक रामघाटके नाम से चीरघाट के समीप प्रसिद्ध है। अब तक उसे देखने से प्रतीत होता है यमुना जी यहाँ अपने मार्ग को छोड़कर टेढ़ी बही हैं। बलरामजी के हल की नोक से खोदे हुए मार्ग से बहती हुई यमुना जी मानो अद्यावधि बलरामजी के अनन्त पराक्रमकी सूचना देरही है। इस प्रकार व्रजाङ्गनाओं के माधूर्य से आकृष्ट चित्त हुए बलदेवजी को वहाँ उनके साथ क्रीड़ा करते करते वे वसंत की सुहावनी रात्रियाँ क्षण के समान बीत गयीं। वहाँ रहकर फिर उन्होंने सरसता की धारा बहा दी।

सूतजी बोले—"महाराज ? इधर बलदेवजी तो व्रजमें विराजे हुए व्रजाङ्गनाओं केसाथ विहार कर रहे थे, उधर द्वारका में भगवान् की एक राजा से लड़ाई हो गई। उससे लड़ने उन्हें काशी के समीप आना पड़ा।"

शौनकजीने पूछा—"सूतजी ? उस राजा से भगवान् की लड़ाई किस कारण हुई ?"

सूतजी बोले—"महाराज ? नाम के पीछे लड़ाई हुई।"

शौनकजीने कहा—"सूतजी ! पद प्रतिष्ठा के लिये भूमिके लिये, धन के लिये तथा स्त्री के लिये तो हमने लड़ाइयाँ सुनी हैं, किन्तु नाम के पीछे लड़ाई कैसे हुई। एक नाम के बहुत से लोग होते हैं। कृपा करके हमें इस कथा को सुनाइये।"

सूतजी ने कहा—"अजी महाराज तुम इन टेढ़े टाँग वालों की बात कुछ पूछो मत। जिनसे ये लड़ना चाहते हैं, कोई न कोई कारण निकाल हीलेते हैं। जैसे नदी केनीचे एक बकरा का बच्चा जल पी रहा था।इतने में ही सिंह आया। और बोला—"तू मेरे पानी को जूठा क्यों कर रहा है ?"उसने कहा—महाराज ! आप ऊपर पी रहे है,मैं नीचे पी रहा हूँ, जूठा कहाँ हुआ ?" तब सिंह बोला—"अच्छा तुमने उस दिन मुझे गाली क्यों दी? "

बकरी के बच्चे ने कहा—"कब की बात है महाराज ?"

सिंह ने कहा—"हो गयी साड़े छै महीने की बात ?"

बकरी के बच्चे ने कहा—"तब तो ! महाराज मैं दो दिन का भी न हुँगा।"

सिंह ने कहा—"तू न होगा तेरी माँ होगी।"

बकरी के बच्चे ने कहा—"मेरी माँ तो मुझे पैदा करते ही मर गई थी, वह कैसे हो सकती है ?"

सिंह बोला—"तेरी नानी होगी,ताई होगी, चाची होगी?"

बकरी के बच्चे ने कहा—"अजी महाराज ! आपको मारना हो, तो वैसे ही मारकर खा लीजिये ऐसे जूठे अपराध क्यों लगाते हैं? "सो महाराज ! जब किसी राजा रूप में उत्पन्न हुए असुर को भगवान् मारना चाहते हैं, तो उसपर ऐसे ही कुछ आरोप लगा देते है । कोई साधारण निमित्त बनाकर उसे मार डालते है ।नहीं तो भगवान् के सहस्र नाम है ।कोई अपना नाम वासुदेव हीरखता है, तो इसके लिये भगवान् को लड़ने की क्या आवश्यकता थी । कह देते—"अच्छा,भैया ! तेराही नाम वासुदेवसही ।"किन्तु भगवान् को तो उसे मारनाथा, इसलिये नाम केपीछे उससे भिड़गये।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! यह वासुदेव बनने वाला राजा कौन था ?"

सूतजी बोले—"अच्छी बात है महाराज ! अब मैं आपको मिथ्या वासुदेव की ही कथा सुनाता हूँ ।"

छप्पय

क्षमा करी, पुनि सखिनि सहित सुखतैं बल न्हाये ।
उलचि उलचि जल प्रचुर परस्पर अङ्ग भिगाये ।।
व्रज वनितनि को मान करें सुख सब कूँ देवें ।
पलक नयन कर-देह सरिस ते तिनिकूँ सेवें ।।
नंद गाँव बल निवसि इत, करत सतत क्रीड़ा मधुर ।
उत द्वारावति कृष्ण ढिंग, पौड्क पठयो दूतवर ।।

—:o:—

मिथ्या वासुदेवकी कथा

(११३०)

नन्द व्रजं गते रामे करूपाधिपतिर्नृप।
वासुदेवोऽहमित्यज्ञो दूतं कृष्णाय प्राहिणोत ॥*
(श्री० भा० १० स्क० ६६ अ० १ श्लो०)

छप्पय

दूत कहे-"कारूप नृपति सन्देश पठायो।
वासुदेव हौं एक भार भू हरि वे आयो॥
वासुदेव तू बनें चिन्ह सब धारे मेरे।
तजे नाम नहिं, करूँ दाँत खट्टे हौं तेरे॥
पौण्ड्रकको सन्देश सुनि, श्याम हँसे सब हँसि गये।
रथ चढ़ि लड़िवे ढीठ तें, पुर करूप कूँ चलि दये॥

भगवान्‌के सम्बन्धमें कोई मिथ्या कल्पना भी करता है, तो उसका परिणाम भी सुखप्रद होता है, क्यों कि भगवान् सुख स्वरूप है। एक कथा है, कि कोई राजकुमारी भगवान्‌की बड़ी भक्ता थी। वह विष्णु भगवान्‌की बड़े प्रेमसे पूजा किया करती

*श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित् से कह रहे हैं—'हे नृपवर्य! जब बलरामजी व्रज को चले गये, तब इसी बीच मे करूप देश के अधिपति पौण्ड्रक ने अज्ञान वश यह निश्चय करके कि यथार्थ वसुदेव तो मैं ही हूँ श्रीकृष्ण से अपना नाम बदल लेने का सन्देश देकर उनके वास द्वारका मे दूत भेजा।

थी। एक कुमार उससे मन ही मन प्रेम करने लगा। वह राजकुमारीसे बात करनेको अत्यंत ही उत्सुक रहता था, किन्तु राजकुमारी तो पहरेके भीतर युक्तिसे रहती थी। उसने क्या काम किया, कि अपना वेष विष्णु भगवान्का बनाया। दो हाथ तो उसके थे ही। दो अत्यंत सुन्दर हाथ मोमके बनवा कर लगवा लिये। चारों हाथोमें शंख, चक्र, गदा और पद्म ये चार आयुध धारण किये। रेशमी सुन्दर चमकीला पीताम्वर ओढा माथे पर मणिमय किरीट लगाया। काठका एक गरुड़ बनाया। सारांश यह कि भगवान्का सब कृत्रिम रूप बना लिया, फिर किसी युक्तिसे प्रहरी की सहायतासे ऊपर चढ गया। और वहाँ जाकर कुमारीसे कहा–"मैं विष्णु हूँ।" राजकुमारीके हर्षका तो ठिकाना नही रहा। उसने अत्यंत भक्ति भावसे उन बनावटी विष्णु भगवान्की पूजा की। उसके मनमे लेशमात्र भी सन्देह नही था, कि ये विष्णु भगवान् नही हैं। उसने तो उन्हें साक्षात् भगवान् ही समझा। एक ओर भी सत्यता होती है, तो बेड़ा पार हो जाता है। दोनो ही ओर बनावटी हो, दोनोके ही मनमें विषयवासना हो, तब तो पतन निश्चय ही है। बनावट बहुत दिन तक छिपती नही और साँचको कभी आँच लगती नही।

हाँ तो अब वह नित्य ही विष्णु वेष बनाकर राजकुमारीके समीप आता और उससे घुल घुल कर बातें करता। एक दिन किसीने राजासे जाकर कह दिया–"प्रभो! राजकुमारीके यहाँकोई पुरुष जाता है। राजाने चारों ओर से कुमारीके घरको घिरवा लिया और वे स्वयं खड्ग लेकर कुमारीके महलमें गये। उस बनावटी विष्णुने जब खड्ग हाथमें लिये हुए राजाको देखा, तो वह तो मारे डरके थर थर काँपने लगा। उसने अन्य कोई बचनेका उपाय न देख कर भगवान्की शरण ली। अत्यंत ही आर्त भावसे पूरी शक्ति लगा कर वह तन्मय होकर भगवान्से प्रार्थना करने

लगा—"प्रभो ! मैं कैसा भी हूँ आपकी शरण हूँ आप मेरी रक्षा करें।" सर्वान्तिर्यामी प्रभुने राजकुमारीकी सत्य और दृढ़ भावनाको सुदृढ़ बनाने के निमित्त उस काठके गरुडको चेतन्य कर दिया। गरुड़ उसे लेकर आकाश मे उड गया। राजाने आकर पूछा—"बेटी ! यह कौन था ?"

राजकुमारीने कहा—',पिताजी ! ये चतुर्भुज विष्णु थे। नित्य मुझे दर्शन देने पधारते थे। आपको देखते ही अन्तर्हित हो गये, गरुड़ पर चढ कर आकाश में उड़ गये।"

यह सुन कर राजा को बड़ा दुःख हुआ। वे पश्चात्ताप करते हुए कहने लगे—" हाय ! मैं बड़ा अभागी हूँ जो भगवान् के दर्शनो से वञ्चित रहा।"

इस कहानीके कहनेका अभिप्राय इतना ही है कि कोई झूठ-मूठ भी भगवान् का वेप बनाले। उसे भगवान्के सम्बन्ध में मिथ्या अभिमान हो जाय, तो उससे भी कल्याण ही होगा। क्योंकि ससार के पदार्थ अनित्य है अशाश्वत हैं मिथ्या हैं। उनके सम्बन्धमें जो भी अभिमान करोगे, वह मिथ्या होगा असत्य होगा, परिणाममें दुःखद होगा, किन्तु सर्वेश्वर भगवान् तो नित्य, शाश्वत और सत्य है। उनके सम्बन्ध की बनावट भी सत्य हो जायगी। क्योंकि जैसेके साथ सम्बन्ध होता है वस्तु वैसी ही बन जाती है।

सूतजी कहते है—"मुनियो ! अब मै आपको मिथ्या वासुदेव की कथा सुनाता हूँ। काशी और प्रयागके बीचमें एक छोटा सा करूप नामक देश है। जिसकी राजधानी विजयपुर (विजयपुर माढा) थी। भगवान् जिस समय अवतीर्ण होकर नर नाट्य कर रहे थे, उसी समय करूष देशमें पौण्ड्रक नामक राजा राज्य करता था। उस राजा को पूर्वजन्मोंके संस्कार वश यह भ्रम हो गयाथा, कि मैं ही वासुदेव भगवान् हूँ।' द्वारकामें जो श्री कृष्ण अपनेको वासुदेव कहता है, वह मिथ्या है।' यही सोच कर वह मन ही

मन भगवान् से द्वेष मानने लगा। उसके पिट्ठुओंने उसकी व्यर्थ की प्रशंसा करके उसे और भी बढ़ा दिया था।

उसने अपनी चार भुजाये बना रखी थी जिनमें वह शंख चक्र, गदा और पद्म धारण किये रहता। उसने अपने रथ पर बडी भारी गरुड़के चिन्हसे चिन्हित ध्वजा लगा रखी थी, पीताम्बर ओढ़ता था, मणिमयमुकुट माथे पर धारण करता। सारांश यह है, कि उसने विष्णु बनने मे कोई त्रुटि नही रखी थी। जिस समय बलदेवजी व्रजमें थे, तभी उस मिथ्या वासुदेव पौण्ड्रकने अपना एक दूत भगवान् के पास द्वारकामें भेजा। उसने यादवों की सभा में जाकर कहा—"मैं करूषाधिप महाराज पौण्ड्रकका दूत हूँ, श्रीकृष्णके लिये मै अपने महाराज की ओर से एक सन्देश लाया हूँ आज्ञा हो तो सुनाऊँ ?',

भगवान् ने कहा—"अच्छी बात है, सुनाओ।"

भगवान्‌की आज्ञा पाकर दूत कहने लगा—"मेरे स्वामीने कहा है-"वासुदेव तो एक मात्र मैं ही हूँ, मेरे अतिरिक्त कोई दूसरा वासुदेव नहीं है। ब्रह्माजीकी प्रार्थना पर भू का भार हरने के निमित्त तथा जीवोंके दुःखको दूर करनेके निमित्त दया वश मैने ही अवनि पर अवतार धारण किया है। वास्तविक विष्णु तो मैं ही हूँ। तुमने मेरी देखा देखी मेरे चिन्ह धारण कर लिये हैं। तुम भी अपनेको मूठ मूठ वासुदेव कहते हो। वास्तवमें तुममें वासुदेव बननेके कोई भी गुण नही। तुम्हारी जातिका पता नही। तुम वैश्य वृत्तिजीवी नन्द के लड़के हो। तुममें बल भी नहीं, निर्बल हो, जरासन्धके भयसे द्वारकामें भाग आये। तुममें धर्म भी नहीं अपने सगे मामाको जो निर्बल था रोगी था, उसे मार डाला। तुममें साहस भी नहीं किसीको किसीसे भिड़ा कर लड़ा देते हो और स्वयं पृथक् खड़े होकर खेल देखते रहते हो। तुममें दया भी नही स्त्री पूतनाको मार डाला। तुममें सदाचार भी नहीं, गोपाङ्ग-

नाग्रोंके साथ एकान्तमें रास क्रीड़ा करते हो। तुम जन्मके चोर हो। तुम बड़े स्त्री लम्पट हो। सदा स्त्रियों की ताड़में घूमते रहते हो। तुम बड़े मायावी हो, मायाका आश्रय लेकर लोगोंको भ्रममें डाले रहते हो। इन सभी कारणोंसे तुम वासुदेव कहलानेके अयोग्य हो। या तो तुम मेरे चिन्होंको छोड़ कर मेरी शरणमें आओ, मुझसे क्षमायाचना करो। नहीं, तो मुझसे युद्ध करना स्वीकार करो।"

दूत जब इतना कह कर चुप हो गया, तो भगवान्‌ने बड़े वेग से अट्टहास किया। उनके हास्यसे वह सम्पूर्ण सभा भवन गूँज उठा। अन्य यादवोंने भी उनकी हँसीमें अपनी हँसी मिलायी महाराज उग्रसेन तथा अन्यान्य सभासदगण भी खिल खिला कर हँस पड़े। तब भगवान्‌ने दूतसे कहा—"दूतजी! हमने आप के राजाका सन्देश सुन लिया, अब आप भी कृपा करके उस मन्दमति मूढ़से हमारा यह सन्देश जाकर कहना, कि "अरे! धूर्त! तैंने जो मुझसे सुदर्शनादि चिन्होंको छोड़नेके लिये कहा है, उन्हें अति शीघ्र आकर तेरे ही ऊपर उन्हें छोड़ूँगा। और जिन धूर्तोंने तुझे बढ़ा चढ़ा कर वुद्धू बना रखा है। जिनके बल पर तू इस प्रकार बक बक कर रहा है, उन सबको भी मैं आकर मृत्युके घाट उतार दूँगा। जिस मिथ्या मुखसे तू ऐसी व्यर्थकी बातें बकता रहता है, चिविर चिविर करता रहता है, उस मुखको मैं बाणोंसे छेद कर रणमें पटक दूँगा। उसे कक, गृद्ध और वट आदि मांस भोजी जन्तु घिरकर नोंचेंगे। तब तू सदाके लिये मर कर शयन कर जायगा। मैं तो तेरी शरणमें क्या जाऊँगा तू ही कुत्ता गीदड़ और गृद्धोंकी शरणमें जायगा। अच्छी बात है, तू समरके लिये सम्हल जा। मैं अभी तुझसे युद्ध करनेके लिये आता हूँ। उसी समय तू अपनी वीरता दिखाना।"

सूतजी कहतेहैं—"मुनियो! भगवान्‌का सन्देश पाकर वह दूत

तुरन्त पौण्ड्रकके समीप आया और उसने समस्त वृत्तान्त अपने राजासे कहा। इसे सुन कर वह अत्यंत कुपित हुआ और लड़ाईकी तैयारियाँ करने लगा। उसने अन्यान्य राजाओंके पास युद्धका निमंत्रण भेजा, किन्तु किसीने भी श्रीकृष्णके विरुद्ध युद्ध करना स्वीकार नही किया। हाँ, एक काशिराजने स्वीकार किया, क्योंकि वे तो इसके मित्र ही थे।

इधर भगवान् भी दूतको बिदा करके करूष देशको चलनेके लिये विदा हुए। भगवान् अपनी कुछ थोड़ी सी सेना लेकर पौण्ड्रकके पुरमे पहुँच गये। उसने जब देखा श्रीकृष्ण तो युद्ध करनेके लिये उद्यत है, तो वह भी अपनी बड़ी भारी दो सेनायें लेकर युद्ध करने आया। उसका मित्र काशिराज भी बड़ी बड़ी तीन सेनायें लेकर अपने मित्रकी सहायता करने आ डटा। अब क्या था, दोनों ओर से घमासान युद्ध छिड़ गया। भगवान्ने देखा, पौण्ड्रक शङ्ख, चक्र, खड्ग, गदा, शार्ङ्ग धनुष तथा श्रीवत्सादि चिन्होसे युक्त है उसके कण्ठमें घुटनों तक लम्बायमान वैजयन्ती माला झूम रही है। वक्षःस्थलमें कौस्तुभ मणि सुशोभित हो रही है। अङ्गपर सुवर्णके कामका दमकता हुआ पीताम्बर चमक रहा है माथे पर महामूल्यमय मनोहर मणियोंका मुकुट झलमल झलमल कर रहा है। अङ्ग अङ्गमें आभूषण चमक रहे है, तथा कानोमें मकराकृत कुंडल दमक कर उसके मुखके मिथ्या होने की घोषणा कर रहे है। उसके रथमें शुभ्रवर्णके चार घोड़े जुते हुए है तथा उस पर विशाल गरुड़के चिन्हसे चिन्हित ध्वजा फहरा रही है। जब वह रथ पर चढ़ कर भगवान्के सामने लड़ने आया तब सर्व साधारणको यह भ्रम होने लगा कि इनमे यथार्थ वासुदेव कौनसे है। क्योंकि जैसे नाट्य शालामे सज बज कर जब नट आता है, तो जिन्होने पहिले उसे नहीं देखा अथवा जिन्होने देखा भी है उन्हें भी भ्रम हो जाता है।

ने जब उसे अपने ही समान रूप बनाये देखा तब वे बहुत हँसे और सोचने लगे—"अनुकरण किया जाय तो ऐसाही किया जाय।"

मिथ्या वासुदेव का संकेत पाते ही उसकी सेना के सैनिक भगवान् पर त्रिशूल, गदा, परिघ, शक्ति, ऋष्टि, प्रास, तोमर, खड्ग, पट्टिश तथा बाण, शतघ्नी आदि अस्त्र शस्त्रों की वर्षा करने लगे। भगवान्ने जब शत्रुओ को प्रहार करते देखा तो वे सब पर पृथक् पृथक् प्रहार करने लगे। जैसे प्रलयकाल मे प्रलयाग्नि भिन्न भिन्न प्राणियों को भिन्न भिन्न प्रकार से पीड़ित करती है, उसी प्रकार शत्रु संघारी श्यामसुन्दर विपक्षी वीरों को बाण वर्षा कर पीडित करने लगे। उसकी गज, रथ, अश्व तथा पैदल चलने वाली जो चतुरङ्गिनी सेना थी,उसका पृथक् पृथक् अस्त्रों से संहार करने लगे। काशिराज तथा पौण्ड्रककी सम्मिलित सेना प्राणोका मोह परित्याग करके श्यामसुन्दरसे लड़ रही थी और श्यामसुदर भी उन्हें अपने शस्त्रों से मार मार कर सद्गति दे रहे थे। हाथी घोड़ा आदि पशुओं तथा सैनिकोके मरनेसे तथा अस्त्रों और रथों के टूटने से वह रणभूमि भगवान् भूतनाथ भवकी भयङ्कर क्रीड़ास्थलीके सदृश प्रतीत होती थी। रक्तको देखकर सैनिकोंका उत्साह बढ़ता था, वे प्राणों का पण लगाकर बड़े उत्साहसे युद्ध कर रहे थे। पौण्ड्रकने जब श्रीकृष्णको अपनी सेनाका संहार करते देखा, तो वह वीरताके साथ भगवान्के सम्मुख युद्ध करनेकी इच्छासे आया। उसे देखकर भगवान् बोले—"कहिये, पौण्ड्रकजी! अच्छी तरह हो न ? तुमने दूतके हाथों मुझे संदेश भेजा था,कि मैं अपने अस्त्रोंको छोड़ दूं। इसलिये मैं यहाँ अस्त्रोंको छोड़ने ही आया हूँ। उन्हें तेरे ही ऊपर छोड़ता हूँ। ले, सम्हल जा। अब हमारे तेरे दो दो हाथ हो जायँ। आज यहीं निर्णय हो जाय कौन वासुदेव है। यदि मैं वासुदेव हूँ और तैने मेरा बनावटी नाम रख लिया है, तो मैं उसे अभी छुड़ाये देता हूँ और यदि मैंने झूठ मूठ अपना

नाम वासुदेव रखा होगा,तो युद्धमें तुमसे पराजित होकर मैं तेरी शरणमें आजाऊँगा। अब संसारमें वासुदेव एक ही रहेगा या तो तू ही तू रहेगा या मैं ही मैं। मैं तू दो न रहेंगे।" ऐसा कह कर भगवान्ने उसकी अवज्ञा करते हुए धनुष पर अपना बाण चढ़ाया भगवान्ने तीखे बाण छोड़कर उसके रथको चकनाचूर कर दिया। सारथी और घोड़ोंको मार दिया तथा उसके धनुषको भी काट दिया। जब वह रथ हीन हो गया, तो भगवान्ने सुदर्शन चक्रसे उसके सिरको उसी प्रकार काट लिया जिस प्रकार छुरेसे खीराके सिरको काट लेते है। सिरसे पृथक उसका धड़ पंख कटे पर्वतके समान धड़ामसे धरती पर गिर पड़ा।

अपने मित्रको मरता देखकर काशिराजने भगवान्के ऊपर प्रहार किया, किन्तु वह भी समर में अधिक समय तक न ठहर सका। एक अर्ध चन्द्राकार बाणसे उसके सिरको काट कर भगवान्ने उसे आकाश मार्ग द्वारा काशीपुरी में उसके महल के आगे गिरा दिया। काशिराजका राजकुमार तथा नगर निवासी स्त्री पुरुष अपने स्वामीका सिर देखकर हाय हाय करते हुए रुदन करने लगे।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार भगवान्ने पौण्ड्रक को तथा काशिराजको मार कर सिद्ध गन्धर्वो द्वारा अपने यशको सुनते हुए द्वारका पुरीमें प्रवेश किया। जब लोगोंने भगवान्का हार्दिक अभिनन्दन किया। फिर भगवान् सुखसे अपने महलों में रहने लगे।"

शौनकजीने पूछा—'सूतजी! यह पौण्ड्रक कौन था। यह भगवान्से द्वेष क्यों करता था। क्यों उनके रूपको रखता था।"

सूतजी बोले—"महाराज! जैसे जय विजय भगवान्के द्वारपाल हैं, वैसे ही यह पौण्ड्रक भी भगवान्की ड्योढ़ीका द्वारपाल था। इसने महालक्ष्मीको एक दिन अन्तःपुरमें जानेसे

रोक दिया था ! तब लक्ष्मीजीने इसे शाप दिया—"जातू पृथिवी में मनुष्य होकर जन्म लेगा और भगवान्से द्वेष करेगा।"

भगवान्के सब पार्षद चतुर्भुज तो होते ही है। सभी शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण करते है। केवल श्रीवत्सका चिन्ह उनके नही होता, और सब चिन्ह भगवान्के से ही होते है। जब यह जाकर भगवान्के सम्मुख बहुत गिड़ गिड़ाया, तब भगवान्ने कहा—"लक्ष्मीजीने यह शाप मेरी इच्छाके ही अनुसार दिया है। तू पृथिवी पर उत्पन्न तो होगा ही, किन्तु वहाँ भी ईर्ष्यावश सदा मेरा चिन्तन करता रहेगा। मेरे समस्त चिन्होंको धारण किया करेगा। मुझसे युद्ध करेगा, फिर मेरे हाथसे मरकर अन्त में मुझे ही प्राप्त होगा। तेरी अधोगति न होगी।" यह सुनकर उसे सन्तोष हुआ और वही करूषाधिप पौण्ड्रक हुआ। मुनियो! द्वेषभावसे निरन्तर भगवान् वासुदेवका ही ध्यान करनेके कारण उसके समस्त कर्मबन्धन नष्ट हो गये और अन्तमें भगवान्के हाथसे मरकर चतुर्भुज रूप धारण करके वह भगवान्में तन्मय हो गया। द्वेषवश भगवान्का रूप धारण करनेसे ही उसे वह गति प्राप्त हुई जो बड़े बड़े योगियोंको समाधि द्वारा भी दुर्लभ है।"

शौनकजीने पूछा—"सूतजी ! भगवान्ने काशिराजके सिरको करूष देशसे काशीमें क्यों भेजा ?"

सूतजी ने कहा—"महाराज ! उन काशिराजकी निष्ठा होगी, कि मेरी मृत्यु वाराणसीमें ही हो। इसलिये भगवान्ने उनकी इच्छा पूरी की होगी, फिर काशीदाहकी उन्हे लीला भी करनी थी, इसीलिये सिरको काशीमें राजद्वार पर भेज दिया ?"

शौनकजी ने कुतूहल के साथ पूछा—"सूतजी ! सिर पहुँचने पर काशीदाह की लीला कैसे हुई। इसे भी कृपा करके हमें सुनाइये।"

सूतजी ने कहा—"अच्छी बात है महाराज ! इसी प्रसंग में मैं आपको सुदर्शन चक्रद्वारा जैसे काशी का दाह किया गया उस कथा प्रसङ्गको सुनाता हूँ। आप दत्तचित होकर श्रवण करें।"

छप्पय

रन हित हरि नृप लखे सेन सजि सम्मुख आयो।
धारि शङ्ख चक्रादि विष्णु सम रूप बनायो॥
लखिकें भाँड समान हँसे हरि खल ललकारचो।
कीन्हों कछु छिन युद्ध अन्त महँ ताकूँ मारचो॥
काशिराज आयो लड़न, तासु काटि सिर श्यामघन।
फेंक्यो सो काशी परचो, लखि रोवत सुत प्रजाजन॥

काशिराज की कृत्या का कुपरिणाम

(११३१)

कृत्यानलः प्रतिहतः स रथाङ्गपाणे—
रस्त्रौजसा स नृप भग्नमुखो निवृत्तः ॥
वाराणसीं परिसमेत्य सुदक्षिणं तम्,
सर्त्विग्जनं समदहत्स्वकृतोऽभिचारः ॥*

(श्रीभा० १० स्क० ६६ अ० ४० श्लो०)

छप्पय

यों दोउनि की करी मुक्ति हरि आये निज पुर ।
इत पितु वध तें दुखी काशिनृप-सुत सोचतउर ॥
पितु वध बदलौ लेउँ कृष्ण पुर सहित जराउँ ।
शिव आराधनकरूँ मनोवाछित फल पाऊँ ॥
करत सुदक्षिण शैव मख, प्रकटित कृत्यानल भई ।
करन भस्म हरि द्वारका, क्रूँ कृत्या गरजत गई ॥

मारण, उच्चाटन तथा अन्यान्य जितने परपीड़न कर अभिचार है । उनका परिणाम दुखद ही होता है । क्योंकि

---

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! काशिराज सुदक्षिण भगवान् को मारने को जो कृत्यानल छोड़ा था। वह भगवान् के सुदर्शन चक्रसे प्रतिहत तथा भग्नमुख होकर पुनः काशीपुरी को ही लौट पड़ा वहाँ पहुँचने पर उसने राजा को तथा उसके ऋत्विजों को जला डाला राजाका अपना किया हुआ अभिचार ही उसके विनाश का कारण बना।"

ये कृत्य तामसिक हैं। यदि सिद्ध हो जायँ तो इनका परिणाम परलोक में दुःखद होता है। यदि सिद्ध न हुए। कोई विधि सम्बन्धी त्रुटि रह गयी, तो ये उलटे करने वाले के ऊपर पड़ते हैं और उसे तुरन्त नाश कर देते है। ऐसी अनेक घटनायें प्रत्यक्ष देखी गयी है, कि रात्रि में किसी ने भूत, प्रेत, यक्षिणी आदि तामस सिद्धियों के लिये श्मशानादि मे जाकर शव के शरीर पर जप किया है, कोई भयङ्कर शक्ति उत्पन्न हुई जापक डर गया और कोई भूल कर गया, तो शक्ति उसी का रक्त पान कर गयी। भूत प्रेतादि सिद्ध होने पर भी उस पुरुष को सदा अशुचि रहना पडता है। मर कर भूतप्रेत ही बनना पड़ता है। जो जिसकी उपासना करता है, अन्त मे उसे उसी का सादृश्य प्राप्त होता है। *तमोगुणी* पुरुष अपनी सान्सारिक सिद्धि के *लिये तमोगुण* प्रधान देवताओं को ही भजते है। और अन्त मे घोर तम को ही प्राप्त होते है।

सूतजी कहते है—"मुनियो! भगवान् पौण्ड्रक और काशिराज को मार कर द्वारका में आ गये। अब आप काशिराज के पुत्रका भी कुछ वृत्तान्त सुनिये। भगवान् का फेंका हुआ काशिराज का कुण्डल मण्डित मस्तक जब महल के द्वारदेश में आकर गिरा, तो सभी उसे देखकर सन्देह करने लगे। तुरन्त इधर उधर से बहुत से स्त्री पुरुष जुट आये। सबने पहिचान लिया, यह तो हमारे महाराज का ही सिर है। यह जान कर राजा की जितनी रानियाँ थीं सभी छाती पीट पीट कर रुदन करने लगीं राजा के सभी सुत जुट आये, बन्धु बान्धव आ गये। सभी हाय! हाय! करने लगे। सिर गोदी मे रखकर हा नाथ! हा प्राणेश! कह कह कर रानियाँ सिर पटकने लगी और अत्यत दुःख से विलाप करती हुईं नयनों से नीर बहाने लगी।

राजाको मृतक जानकर सब प्रजा के लोगों ने महाराज के सुदक्षिण नामक सबसे बड़े पुत्रको सिंहासन पर बिठा दिया उसे राजा बना दिया। सुदक्षिण ने विधि पूर्वक पिता के अन्त्येष्टि आदि संस्कार कराये। परलोक में सुख प्राप्ति के लिये उनके निमित्त विविध भाँति के दान धर्म कराये। तदनन्तर उसने सोचा—"जिस श्रीकृष्ण ने मेरे पिता का वध किया है, उससे बदला लेना चाहिए। जब तक मैं अपने पितृहन्ता का वध न कर लूँगा, तब तक पितृऋण से उऋण न हो सकूँगा। युद्ध में तो मैं कृष्ण को जीत नहीं सकता अभिचार द्वारा उसका अन्त किया जा सकता है। समस्त भूत प्रेतोंके स्वामी भगवान् भूतेश्वर हैं। वे ही मुझे युक्ति बता सकते है। उपासना करूँ।" यही सब सोच कर उसने अपने राजपुरोहित के सहित परम समाधिद्वारा भगवान् भूतनाथ की उस अविमुक्त क्षेत्र वाराणसी में आराधना आरम्भ की।

भगवान् आशुतोष तो भोले बाबा ही ठहरे। सुदक्षिण की अल्प-उपासना से ही वे सन्तुष्ट होगये और राजा के सम्मुख प्रकट होकर बोले—"राजन्! मैं तुम्हारी उपासना से सन्तुष्ट हूँ, तुम मुझसे यथेष्ट वर माँगलो।"

यह सुनकर सुदक्षिण बोले—"प्रभो! यदि आप मुझपर प्रसन्न है, तो कोई ऐसा उपाय मुझे बताइये, जिससे मेरे पिताको मारने वालेका वध होसके।"

यह सुनकर शिवजी तो बड़े चक्कर में पड़े। वे सोचने लगे, श्रीकृष्ण को भला कौन मार सकता है किन्तु इसने तो मुझसे उपाय पूछा है, इसलिये इसे उपाय बता दूँ। सिद्धि असिद्धि इसकी क्रिया और साधन के ऊपर निर्भर है। यह सोचकर शिवजी बोले—"देखो, भाई! मैं तुम्हे एक उपाय बताता हूँ। तुम ब्राह्मणों के साथ मिलकर अभिचार विधि से दक्षिणाग्नि

की आराधना करो। उनके निमित्त एक आभिचरिक यज्ञ करो। तुम्हारे यज्ञ से प्रसन्न होकर अपने प्रमथ नामक गणो के सहित अग्निदेव प्रकट होंगे। उनसे तुम जो वरदान मांगोगे, वही देंगे। जिसे मारने को कहोगे उसे ही मार डालेंगे। किन्तु जो ब्राह्मण भक्त होगा, उस पर तो उनका वश न चलेगा। शेष सबको वे भस्म कर सकते है।"

यह सुनकर सुदक्षिण अत्यंत ही प्रसन्न हुआ। भगवान् भूतनाथ के आदेशानुसार उसने ब्रह्मचर्यादि नियमो का पालन करते हुए भगवान् के निमित्त से अभिचार यज्ञ का विधिवत् अनुष्ठान किया। जिस दिन उसका वह आभिचारिक यज्ञ पूर्ण हुआ उसी दिन अग्निकुण्ड से एक अति भयानक तामस अग्नि सशरीर प्रकट हुआ। देखने में वह अत्यत भयङ्कर था, उसके सिर के केश तथा श्मश्रु तपाये हुए तांबे के सदृश अरुण वर्ण के थे। लाल लाल बड़ी बड़ी भयंकर गोल गोल आँखो से अग्नि की लपटें निकल रही थी। उसका मुख पर्वत की गुहा के सदृश भयकर और वीभत्स था, बड़ी बडी रक्त से सनी दाढे चमक रही थी। कुटिल भ्रुकुटियो के कारण वह बड़ा ही भयङ्कर और क्रूर जान पड़ता था। उसके शरीर पर कोई वस्त्र नही था। बडे बड़े वाल शरीर पर थे। अपनी बड़ी और विकराल जिह्वा से वह बार-बार अपने ओठों को चाट रहा था। उसके हाथ में एक भयङ्कर त्रिशूल था, उसे वह इधर से उधर घुमा रहा था। उसने सुदक्षिण से पूछा—"राजन्! मैं तुम्हारा कौन सा कार्य करूँ।"

सुदक्षिणने कहा—"देव! आप मेरे पिताके मारने वाले श्रीकृष्णको तथा उनकी पुरी को जला दीजिये।"

इतना सुनते ही वह पुरुष एक भयङ्करकृत्या के रूप में परिणित होगया। भूत गणों से घिरी कृत्या अपने विशाल शरीर से दशों दिशाओंको दग्ध करती हुई, द्वारका की ओर दौड़ी।

उस भयङ्कर जलती हुई कृत्या को द्वारका की ही ओर आती देख कर द्वारका वासी भयभीत होकर भयहारी भगवान् की शरण में पहुँचे द्वारका वासियो के एक मात्र अवलम्ब तो अखिलेश्वर अच्युत ही थे। दुःख पडने पर वे उनकी ही शरण मे जाते और वहाँ जानेसे निर्भय हो जाते। अत वे दौडे भगवान् के समीप सभा भवन मे पहुँचे। उस समय श्याममुन्दर सभा में बैठे आमोद प्रमोद के लिये चौसर खेल रहे थे। जब उन्होने देखा वन मे आग लग जाने पर जैसे वन के जीव जन्तु सुरक्षित स्थान की ओर भागते है वैसे ही द्वारकावासी भयभीत होकर मेरी शरण मे आये है, तो भगवान् रहस्य भरी दृष्टि से उनकी ओर देखने लगे। तब उन सबने मिल कर बडी दीन वाणी मे भवभयहारी भगवान् से निवेदन किया—"प्रभो! हमारी रक्षा करो, रक्षा करो। न जाने कहाँ से प्रलयाग्नि के सदृश एक कृत्या सी आरही है। हे अशरण-शरण! हम उससे भयभीत है, आप उससे हमारी रक्षा करे। आप तुरन्त रक्षा न करेगे,तो वह समस्त द्वारकापुरी को अभी भस्म कर देगी। आप अविलम्ब हम सब पर अनुग्रह करे। हमे मृत्यु के मुखसे बचालें। द्वारका पुरी को दग्ध न होनेदें।"

शरणागत् वत्सल भगवान् ने जब देखा द्वारकावासी भयकर कृत्या से अत्यंत भयभीत है। तब वे उन्हें अभय प्रदान करते हुए बोले-"अरे,तुम लोग इतने अधीर क्यो हो रहे हो,मेरे रहते तुम्हे भय की कौन सी बात है। मैं तुम्हारी भय से रक्षा करूगा।" ऐसा कह कर भगवान् चुप हो गये। वे तो सर्वज्ञ है,सब के भीतर बाहर की बातें जानते है। वे समझ गये,सुदक्षिणाने मेरे नाश के निमित्त माहेश्वरी कृत्या भेजी है। इसलिये वे अपने स्थान से उठे नही, वही बैठे बैठे उन्होंने समीप में विराजमान सुदर्शन चक्रको आज्ञा दी—"सुदर्शन! इस कृत्याकी कुटाई पिटाई करके इसके भेजने वाले को भी फल चखा आओ।" अब क्या था, सुदर्शन चक्र

तो ऐसे कामो के लिये उधार खाये ही बैठे रहते है। भगवान् की आज्ञा पाते ही वे अपने तेज से दशों दिशाओं को आकाश और अन्तरिक्ष को प्रकाशित करते हुए प्रलयाग्नि के सदृश, उस कृत्या की ओर दौड़े। उस समय उनका तेज करोड़ों सूर्यों के समान हो रहा था। वे एक परम तेजोमय प्रकाश पुञ्ज ही दिखाई दे रहे थे। अब कृत्या को लेने के देने पड़ गये। कहाँ तो वह द्वारका जलाने के लिये आई थी कहाँ अपने ही जलने लगी, वह पूँछ दबाकर वहाँ से भागी किन्तु सुदर्शन अब उसका पीछा कब छोड़ने वाले थे, उन्होंने उसे रौंदा। वह शस्त्र के तेज से अभिभूत होकर ज्यों की त्यों लौटकर उसी स्थान मे आई जहाँ से वह निकली थी। अब वह चक्र के भय से अन्तर्हित होना चाहती थी, किन्तु जिस उद्देश्य से उनकी उत्पत्ति हुई थी, उसे बिना किये वह अन्तर्हित भी नही हो सकती थी, उसे जब कोई भस्म करने को न मिला तो वह यज्ञ कराने वाले ऋत्विजो और सुदक्षिण को ही जलाकर कुंड में घुसकर अन्तर्हित हो गयी। उन लोगों ने किया तो था दूसरे को नाश करने के निमित्त अभिचार किन्तु उलटा उन करने कराने वालो का ही नाश होगया। वे ही सबके सब भस्म हो गये।

अब रह गये सुदर्शन चक्र। इन्होंने सोचा–"मेरा आना ही व्यर्थ होगया। इन लोगो ने द्वारकानाथ को और द्वारकापुरी को जलाने के लिये ही अभिचार यज्ञ किया था, तो उसका फल उलटा होगया। भगवान् का कुछ भी न बिगड़ा करने कराने वाले ही भस्म हो गये। कृत्या मेरे भय से अन्तर्हित हो गयी। यज्ञ करने कराने वालों को तो उसने जलाया। अब नगर को मैं जला डालूँ यह सोचकर सुदर्शन चक्र ने अट्टालिकायें, सभाभवन, हाट-बाट. महल, नगर द्वार शिखर, भंडार,गजशाला, [illegible]
धान्यागार तथा और भी राजा के जो भवनादि

स्वाहा कर दिया। इस प्रकार द्वारका पुरी के स्थान में काशि राज की पुरी ही उलटी जल गयी। उसका सब कृत्य उलट हो गया। शिवजी ने तो कह ही दिया था,इसका प्रभाव ब्राह्मण भक्तों पर न पड़ेगा। भगवान् तो ब्रह्मण्यदेव है, उन्हें कृत्या कैसे जला सकती है। उन ब्रह्मण्ड्य के विरुद्ध जिन्होने षडयन्त्र किया था वे ही सब मर गये। इस प्रकार काशीपुरी को दग्ध करके सुदर्शन चक्र पुनः लौटकर श्री भगवान् के समीप द्वारका पुरी में चला गया।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! विशुद्ध सत्व पुण्य कीर्ति भगवान् वासुदेव के इस परमपुण्यप्रद आख्यान को जो लोग सुनेंगे सुनावेगे। वे सभी तामसिक अभिचार जनित पापों से निश्चय ही छूट जायँगे। यह मैंने बलदेव जी के ब्रजयात्रा के प्रसङ्ग में भगवान् की अद्भुत लीला कह दी, अब आप और क्या सुनना चाहते है?"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! आप तो बलरामजी के ही चरित्र को सुना रहे थे,हमें आप भगवान् संकर्षण के अन्य चरित्र सुनावें। इनके चरित्रों को सुनने की हमारी बड़ी इच्छा है।"

सूतजी बोले—"अच्छी बात है, महाराज! अब जैसे बलदेव जी ने द्विविद नामक उपद्रवी वानर को मारा था, उस कथा प्रसङ्ग को मैं आपको सुनाता हूँ आप सब समाहित चित्त से इसे श्रवण कर।"

छप्पय

कृत्या कूँ लखि डरें द्वारकावासी सब जन।
छोड़ि चक्र हरि दाह करायो नगर सुदक्षिन॥
पुर, द्विज,कृत्या,नृपति दग्ध करि सबनि असुहरि।
आयो द्वारावती निमिष महँ सब कारज करि॥
काशिराज के दाह की, कही कथा शुकदेव ने।
सुनो द्विविद वानर चरित, ज्यों मारयो बलदेव ने॥

बलदेवजी द्वारा द्विविदका वध

(११३२)

नरकस्य सखा कश्चिद्द्विविदो नाम वानरः ।
सुग्रीवसचिवः सोऽथ भ्राता मैन्दस्य वीर्यवान् ॥
सख्युः सोऽपचितिं कुर्वन्वानरो राष्ट्रविप्लवम् ।
पुर ग्रामाकरान्घोपान दहद्वह्नि मुत्सृजन् ॥*

(श्री भा० १० स्क ६७ अ० २,३ श्लोक)

छप्पय

त्रेतायुग को द्विविद बली वानर चंचल अति ।
नरकासुरको मित्र संग तै भई दुष्ट मति ॥
कृष्ण मित्र ध्रुक् मानि लैन बदलो खल आयो ।
जारे घर, पुर, गाँव दुष्ट अति दुन्द मचायो ॥
इक दिन गिर रैवतक पै, बलदाऊ मधुपान करि ।
हँसत हँसावत प्रेम तै, विहरत वनितनि कूँ पकरि ॥

सग का प्रभाव पड़ ही जाता है । कैसा भी भला आदमी हो यदि वह निरतर नीचों के संग में रहेगा, तो उसके मनमें नीचता

---

*श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! नरकासुर का मित्र द्विविद नाम का वानर था । वह मैन्दका भाई, और सुग्रीव का मंत्री था, तथा बड़ा बली भी था । भगवान् ने नरकासुरको मार दिया था अतः अपने उस मित्र का बदला चुकाने के लिये वह गांवों, नगरों, खानों तथा घोषों को आग लगा लगाकर जलाने लगा । इस प्रकार वह समस्त राष्ट्र में विप्लव करता हुआ घूमने लगा ।"

श्रा ही जायगी। कैसा भी सदाचारी हो यदि वह व्यभिचारी नर नारियों का संग करेगा, तो उसका चित्त चंचल हो ही जायगा, कैसी भी सती साध्वी सदाचारिणी पतिव्रता हो, यदि वह निरंतर कुलटाओं और चरित्र हीनों के सग रहेगी, तो उसका मन डिग ही जायगा। यह मन ऐसा भूत है, कि बड़े बड़े आरूढ़ योगी भी संग के प्रभाव से पतित हो गये हैं। भगवान् का सग होने के अनन्तर भी अधिक विषयों का सग होने से मन उसमें फँसा हुआ देखा गया है। इसीलिए ऋषियों ने वारम्वार इस बात पर वल दिया है, कि या तो किसी का संग करना ही न चाहिये। करना ही हो तो अपने से ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, गुणी और भगवद्भक्तों का ही संग करना चाहिये। नीचो के सङ्ग से नीचता आ ही जाती है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! महाराज परीक्षित् के पूछने पर मेरे गुरुदेव भगवान् शुकदेव उन्हें बलराम जी के कुछ चरित्र सुनाने लगे। बलदेव जी व्रजयात्रा का प्रसङ्ग सुनाया इसी बीच में द्वारका में पौण्ड्रक का दूत आया, अतः प्रसङ्गवश पौण्ड्रक वध और काशीदाह की भी कथा सुना दी। अब फिर महाराज परीक्षित् ने पूछा—"भगवन्! अनन्त अप्रमेय और अद्भुत कर्मा भगवान् बलदेवजी के मैं अन्य भी चरित सुनना चाहता हूँ। भगवान् संकर्षण तो सर्व समर्थ थे। उनके और भी चरित्र सुनाइये। बलरामजी ने तो परम पराक्रम युक्त कार्य किये होंगे?" राजा के ऐसे प्रश्न को सुनकर मेरे गुरुदेव ने जैसे बलराम जी के अन्य चरित्र सुनाये उन्हीं को मैं आप सब के सम्मुख कहता हूँ।

त्रेतायुग में भगवान् ने जब रावण को मारा था, तब सुग्रीव जी ही ऋक्ष और बानरों की सेना लेकर लंका गये थे। ये वानर दूसरे दूसरे द्वीपों में अन्यान्य वर्षों से रहते थे। ये एक उपदेव है। जैसे हनुमानजी किंपुरुषों में है। इनकी आकृति मनुष्यों की-सी

भी है कुछ वानरोंकी सी भी। न तो ये साक्षात् मनुष्य ही हैं, न साक्षात् वानर ही है। इन्हें देखकर सन्देह होता है। 'कि-पुरुष' क्या ये पुरुष है ? उपदेव होनेसे इनकी आयु भी बहुत बड़ी होती है। हनुमानजी तो अभी तक जीवित है, कल्प जीवी है। विभीषण भी कल्प जीवी है। ऋक्षराज जाम्बवान् भी जीवित है,उनकी कन्या के साथ तो भगवान् ने विवाह ही किया था। इसी प्रकार द्विविद नामक वानर भो चिरजावी है। श्री रामचन्द्रजी की जब साङ्ग सपरिवार पूजा की जाती है,तो मैन्द और द्विविद ये आवरण देव मानकर स्थापित किये जाते हैं और उनकी पूजा भी होती है। जसे विष्णु भगवान् के जय विजय दो पार्षद हैं वैसे ही श्री रामचन्द्रजी के ये पार्षद है। अपने लोक में ये नित्य रहते है। जैसे शापवश जय विजय पृथिवी पर, हिरण्यकशिपु हिरण्याक्ष, रावण कुम्भकर्ण तथा दन्त वक्त्र शिशुपाल के रूप में उत्पन्न हुए वैसे ही शापवश उस मैन्द वानर के अंश से यह पृथिवी मे उत्पन्न हुआ होगा। जैसे जय विजय अपने रूप से तो सदा वैकुण्ठ में बने ही रहे, अश रूप मे यहाँ उत्पन्न हुए उसी प्रकार आवरण देव के रूप में तो मैन्द नित्य ही भगवान् के लोक मे रहता है। अंशरूप मे पृथिवी पर उत्पन्न हुआ। श्रीरामावतार मे यह और इसका भाई मैन्द ये दोनों सुग्रीवजी के मन्त्री थे। बड़े भारी बली थे। इस द्विविद को अपने बल का बड़ा भारी अभिमान हो गया था। उसी अभिमान में भर कर इसने लक्ष्मणजी का अपमान किया। इस पर लक्ष्मण जी ने कहा—"मैं तुझे अभी इस अविनय का फल चखा देता, किन्तु भगवान् राघवेन्द्र ने तुम सब वानरो को अभय दान दे रखा है, इसलिये अब तो मैं तुझे मारता नहीं। दूसरे अवतार में तेरे अभिमान को चूर्ण करूँगा। तू दुष्टतावश मेरा अपमान करेगा तब मैं तुझे मारूँगा।"

वही द्विविद द्वापर में शापवश नरकासुर का मित्र हो गया। भगवान् ने नरकासुर को मार डाला। इस पर द्विविद को बड़ा क्रोध आया। संग दोष से उसमें दुष्टता भी आ गयी थी, वह भगवान् को भी साधारण पुरुष मानने लगा था। उसने मनमें सोचा—"श्रीकृष्ण ने मेरे मित्र नरकासुर को मार डाला है। यदि मैं अपने मित्रको मारने वाले से बदला न लूं, तो मेरी ऐसी मित्रता को धिक्कार है। जो परलोक गये मित्र की मित्रता को निभाता है, वही यथार्थ मित्र है।" यही सोच वह समस्त राष्ट्र में उपद्रव करने लगा। उसने अपने को वागी घोषित कर दिया। वह बड़ा बली था। उसे अपने बल का बड़ा अभिमान था। वह समझता था मेरे समान बली कौन है। इसलिये वह गाँवों को नगरों को फूंकने लगा, जहाँ भी सुवर्ण, चाँदी, कोयले तथा अन्यान्य वस्तुओं की खान देखता वहीं उसमें आग लगा देता पशुओं के रहने के घोषों को जला देता।

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! जब उसे भगवान् से ही बदला लेना था, तो द्वारका में आकर उपद्रव करता। और लोगों ने उसका क्या विगाड़ा था, नगर गाँवों को वह क्यों जलाता था।"

सूतजी बोले—"महाराज ! दुष्टों का स्वभाव ही होता है, व्यर्थ ही दूसरों को पीड़ा दिया करते हैं। उसका उद्देश्य तो एक मात्र श्रीकृष्ण से ही बदला लेने का था, किन्तु समस्त राजाओंपर वह अपना आतङ्क जमाने के लिये आते हुए मार्ग में ऐसे उपद्रवों को करता आता था। द्वारका में आकर तो उसने बड़ा भारी द्वन्द मचा दिया। भगवान् जिस द्वारावतीमें निवास करते थे, उसे नष्ट करने का तो उसने दृढ़ संकल्प ही कर लिया था, अतः वहाँ आकर उससे जितने उपद्रव करते बने सब करने लगा। उसमें दश सहस्र हाथियों का बल था। अतः पर्वतों की बड़ी बड़ी चट्टानों को उठा उठाकर गाँवों पर फेंक देता, कभी नगरों में आग लगा देता,

कभी समुद्र के बीच में खड़ा होकर हाथों से जल को इतने वेग से उलीचता कि बहुत से गाँव जल में बह जाते। कभी ऋषियों के आश्रमों में चला जाता, वहाँ के सुन्दर सुन्दर फल वाले वृक्षों को उखाड़कर फेंक देता। अग्निहोत्र की अग्नि को जला देता। कुन्डों में मल मूत्र कर देता। कभी कभी स्त्रियों को पुरुषों को बलपूर्वक पकड ले जाता और उन्हें उसी प्रकार पर्वतों की गुहाओं मे बन्द कर देता, और शिलाओंसे द्वार मूद देता जिस प्रकार भृङ्गी अन्य कोटों को पकड़कर अपने बिल मे बन्द कर देता है। अथवा धन के लोभ से जैसे डाकू धनिकों को बन्द कर देते हैं। अथवा बगाल की स्त्रियाँ जादू से मेढ़ा बनाकर जसे पुरुषोंको घरके भीतर बन्द कर देती हैं। इसी प्रकार के वह अन्यान्य भी बहुत से उपद्रव करने लगा। लोगों ने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी से उसकी दुष्टता का समाचार कहा। भगवान्ने कह दिया—"भैया! वह तो बलदेवजी के भागका है। उससे मैं छेड़खानी न करूँगा। तब लोगोंने बलदेवजी से प्रार्थना की। बलदेवजी तो अपनी धुनि में मस्त रहने वाले थे। उन्हे लड़ाई भिड़ाई अच्छी नही लगती थी। भांग का गोला चढ़ाया मस्त होकर पडे रहे न ऊधो का लेना न माधो का देना हाँ,कोई आकर उनके कामोंमें विघ्न डाले,तब तो वे उसकी गति बना देते हैं। इसीलिये लोगों ने उनसे कहा—"महाराज! आप क्या घर में घुसे रहते है। देखिये आजकल रैवतक पर्वत पर कैसा आनन्द आ रहा है। किसी दिन वन विहार का भी कार्यक्रम रखो।"

बलदेवजी को इसमे क्या आपत्ति होनी थी। दूसरे दिन वनविहार की तैयारियाँ होने लगी। सेवकों ने प्रथम जाकर आमोद प्रमोद का सब प्रबन्ध कर दिया। बलदेवजी अपनी स्त्रियों के साथ वहाँ पधारे। नाच गानका भी वहाँ प्रबन्ध था महुए के फूल भी गिर रहे थे। वसन्त की सुखद सुहावनी ऋतु थी। यथेष्ट

मधुपान करके बलदेवजी आनन्द से गायन सुन रहे थे। वे
बीच में स्वयं भी गाने लगते।

जब उस वानर ने ताल स्वर सहित सुन्दर संगीत की सुम
ध्वनि सुनी, तब तो वह उसी शब्द को लक्ष्य करके रैवतक प
पर पहुँचा। वहाँ उसने देखा वृष्णिवंशावतंस बलभद्रजी वनिता
के बीच मे विराजमान हैं। वे सुन्दर स्वच्छ वस्त्रों को धा
किये हुए है उनके सभी अङ्ग सुन्दर हैं वे विकसित पद्मों
मालाओ को पहिने हुए हैं। मधुपान करने से उनके बडे
विशाल नेत्र अरुण वर्ण के बने हुए है। मधु के मद में मदमाते
बने मदमद मुसकरा रहे है। उनका बड़ा विशाल शरीर मदस्रा
गजराज के समान प्रतीत हो रहा है। वे कामिनियों के कलकठ
निकले गायन को सुख से श्रवण भी कर रहे हैं और स्वयं गा
रहे हैं। उस दुष्ट ने आकर बलदेवजी के रगमे भंग कर दी।
एक दुष्टता सूझी। वह समीप के ही एक विशाल वृक्ष पर
गया और वहाँ से स्त्रियों की ओर मुँह मटकाने लगा, किल
रियाँ मारने लगा तथा लगा वृक्षों को झकझोरने। युव
स्त्रियाँ स्वभावसे ही चञ्चल,हँसमुख तथा कुतूहल प्रिय होती हैं
उन्होंने जब इस विचित्र वानर को यह सब उपद्रव करते देख
तो सबकी सब हँसने लगीं। उसकी खिल्लियाँ उडाने लगीं
बलवान् पति के साथ रहने से उन्हें किसी प्रकार का भय
था ही नहीं।

इस पर वह वानर अत्यन्त ही क्रुद्ध हुआ उसने इसमे अप
अपमान अनुभव किया। वह स्त्रियो की ओर घुड़की देने लगा
अपने गुह्य अंगों को दिखाने लगा तथा अन्य भी अनेकों प्रक
की अशिष्टता करने लगा। उसे इस प्रकार मुँह मठकाते अशि
व्यवहार करते देखकर बलदेवजी बड़े क्रुद्ध हुए। उन्होंने पास
पड़े एक पत्थर को उठाकर घुमाकर ज्योंही उसमे मारा, त्यों

वह वानर उछल गया। उछलने से लक्ष्य भ्रष्ट हो गया। पत्थर उसके नहीं लगा। वह तो उपद्रव करने पर तुला ही हुआ था। तुरन्त वह दौड़कर गया। बलदेवजी की सुन्दर बादाम पिस्ता पड़ी दूधिया मधुमिश्रित भाँग एक कलशमें रखी थी। वह दुष्ट गया और उसने उससे घड़े को उठाका पटक दिया। भाँग फैल गयी। भँगेड़ी की भाँग फैल जाय, तो मानों उसका सर्वस्व ही नष्ट हो गया अब तो बलदेवजी के क्रोध का ठिकाना नहीं रहा। इतना करके ही वह दुष्ट शान्त न हुआ। वह स्त्रियों की साड़ियों को खींच ले गया। उनके टुकड़े टुकड़े कर डाले और गर्जना करता हुआ घुड़की देने लगा तथा बलदेव जी की ओर मुँह मटका मटका कर उन्हें विराने लगा उनकी हँसी उड़ाने लगा।

अबतो बलदेवजी समझ गये, 'अरे' यह तो वही दुष्ट द्विविद वानर है। इसकी दुष्टता की बातें तो मैं बहुत दिनों से सुनता रहता हूँ। इस मदोन्मत्त ने तो बहुत से देशों को नष्ट किया है और मेरी भी उपेक्षा करता हुआ अवज्ञा कर रहा है। अच्छी बात है, मैं इसकी धृष्टताको अभी निकालता हूँ, अभी इसे इसकी अशिष्टता का फल चखाता हूँ।" ऐसा विचार कर उन्होंने अपने प्रधान अस्त्र हलमूसल को सम्हाला। वानर तो सावधान था, वह तो युद्ध करने ही आया था। बलदेवजी को हलमूसल सम्हालते देख वह भी ताल ठोककर लड़नेको झपटा उसने तुरन्त वहाँ खड़े हुए एक बड़े भारी शाल के वृक्ष को जड़से उखाड़ लिया और पूरी शक्ति लगा कर दौड़कर बलदेवजी के सिर में देही तो मारा। बलदेवजी अभी सम्हल भी नहीं पाये थे, कि उसने प्रहार कर दिया। अपने सिर पर वृक्ष को पड़ते देखकर बलदेवजीने बीचमें ही उसे पकड़ लिया। वे सुमेरु के समान अपने स्थान पर अडिग बने रहे। न तो भागे ही न घबराये ही। वृक्ष को तो उन्होंने बायें हाथ से खींचकर एक ओर फेंक दिया और दायें हाथ से उसके

सिर में अपने सुनंद नामक मूसल का एक प्रहार करही तो दिया। मूसल ने अपना काम किया। वानर के सिर को फूट की भाँति फाड़ दिया। उसमे से रक्तधारा उसी प्रकार वहने लगी जैसे गेरू के पर्वत से बड़े वेग से लाल रंग के जल का झरना झर रहा हो, किन्तु वह वानर तो वली था, उसने उस प्रहार को कुछ भी नहीं गिना उसने दूसरा वृक्ष उखाड़कर वलरामजी पर मारा। वलरामजीने ज्योंही उसे काटा त्योंही उसने तीसरा वृक्ष मारा। वलराम जी जब तक पहिले वृक्ष को काट भी नहीं सकते थे, तब तक वह दूसरा वृक्ष उखाड़ कर उनके ऊपर फेंक देता था, इस प्रकार वृक्षों को उखाडते उखाड़ते उसने सम्पूर्ण वनको वृक्ष हीन बना दिया। अब उस वन मे प्रहार करने योग्य वड़े वृक्ष नहीं रहे तो उसने पत्थरो का फेकना आरम्भ किया। वलदेवजी उसके प्रहारोको व्यर्थ बनानेमे ही लगे रहते थे, वह अपने ऊपर प्रहार करनेका अवसर ही नही देता था।

जब उसने देखा, वलराम जी तो अपने सुनन्द नामक मूसल से वृक्ष,पर्वत तथा अन्यान्य वस्तुओं को चूर्ण कर देते हैं,तो उसने वृक्ष पाषाण आदि फेंकना बंद कर दिया। अब वह ताल ठोककर द्वंद युद्ध के लिये खड़ा हो गया अपनी बड़ी विशाल वाहुसे घूँसा बाँध कर उसासे वलभद्रजीके वक्ष.स्थलमे पूरी शक्ति लगाकर उसने प्रहार कर ही ता दिया। अब तो बलदेव जी की आँखें खुली। वे समझ गये वानर बड़ा वली है। उन्होने हल मूसल कोतो रख दिया। झपट कर उसका टेटुआ दवा दिया। अब तो वच्चूजी हुच्च हुच्च करने लगे। मुखमे से रक्त वमन करने लगे बलदेवजी बोले—"बता, आटे का क्या भाव है दाल का क्या भाव है?"

अब उसकी वाणी निकलती ही नहीं थी, कटे वृक्ष के सदृश वह पृथिवी पर गिर गया उसके गिरते ही पृथिवी डगमगाने लगी। समुद्र का जल उछलने लगा। तालाव, सरोवरों का जल मर्यादा को अति क्रमण कर गया। उसके गिरने से जो 'धड़ाम' का शब्द हुआ उससे दशों दिशाएँ गूँजने लगीं। झंझावातमें जैसे नौका डगमगाने लगती है। वैसे ही पर्वत डगमगाने लगे। बलदेव जी ने एक घूँसा जमाया। उसीसे उसके प्राण पखेरू उड़ गये।

उसके कारण सभी देवता, सिद्ध तथा ऋषि मुनि दुखित थे। इस कारण उसके मरते ही सभी बलदेव जी की जय जयकार करने लगे। नमो-नमः साधु साधु कहकर उनका अभिनन्दन करने लगे। आकाश से पुष्पों की वृष्टि होने लगी स्त्रियाँ चकित चकित दृष्टि से उस मरे हुए वानर के विशाल शरीर को निहा-रने लगीं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार जगत् के कंटक रूप उस दुष्ट द्विविद वानर को मार कर बलदेवजी स्वजनों द्वारा प्रशंसित अपनी पुरी में आये। सभी ने उनके इस कार्य का अभिनन्दन किया। इस प्रकार मैंने बलदेवजी के द्विविद वानर वध का वृत्तान्त सुनाया। आज्ञा हो तो बलदेवजी के और भी चरित्र सुनाऊँ?

प्रसन्नता प्रकट करते हुए शौनकजी ने कहा--"अजी,सूतजी! चुपड़ी और दो दो, मीठा और भर कठौता। बलदेव जी के चरित्र सुननेकी तो हमारी बड़ी इच्छा है। हाँ, हाँ, महाभाग और कोई चरित्र सुनावें।"

सूतजी बोले—"अजी मुनिवर ! अब मैं बलराम जी के पराक्रम को सुनाता हूँ जो उन्होंने साम्ब के विवाह प्रसङ्ग हस्तिनापुर में किया था।"

छप्पय

तहाँ द्विविदने आइ करी अविनय घट फोरयो।
हल मूसल बल लयो मारि वानर सिर तोरयो॥
कपि तरु फेंकत काटि देहि बल खल घबरायो।
द्वन्द युद्ध पुनि करयो पकरि बल गरो दबायो॥
हुम हुम करिबे लग्यो, मरि धड़ाम धरनी गिरयो।
साधु साधु सुर मुनि कहत, सबने बल आदर करयो॥

लक्ष्मणा हरण के समय साम्ब का बन्धन

(११३३)

दुर्योधनसुतां राजन्लक्ष्मणां समितिञ्जयः।
स्वयंवर स्थामहरत्साम्बो जाम्बवती सुतः ॥*

(श्री भा० १० स्क० ६८ अ० १ श्लोक)

छप्पय

अपर चरित बल सुनो कर्यो हथिनापुर जाई।
जाम्बवती सुत साम्ब सुयोधन सुता उड़ाई ॥
गही स्वयम्वर माँहिँ चल्यो घेर्यो कौरव पुनि।
पकरि बन्द करि दयो भये क्रोधित यादव मुनि ॥
करिबे बीच बिचाव बल, हथिनापुर कूँ चलि दये।
संकरषन सन्देश सुनि, कौरव अति क्रोधित भये ॥

बड़े लोग जहाँ तक होता है, झगड़े को बचाते हैं। वे चाहते हैं, दोनों पक्षोंमें एक सम्मान पूर्ण समझौता हो जाय। जब साम उपायसे किसी भी प्रकार उपद्रव शान्त नहीं होता,तब वे दण्ड का प्रयोग करते हैं। वे शक्तिभर युद्ध से बचना चाहते हैं,किन्तु जहाँ आत्मसम्मान को ठेस लगती हो, तहाँ वे संघर्ष से डरते भी नहीं निर्भय होकर अपने बलको प्रदर्शित करते हैं और विपक्षी

---

* श्रीशुकदेवीजी कहते हैं—"राजन् ! दुर्योधन की पुत्री लक्ष्मणा को उसके स्वयम्वरसे जाम्बवती सुत युद्धविजयी साम्बने हरण किया।"

के सिर पर पैर रखकर अपने सम्मान की रक्षा करते हैं। मनस्वी पुरुषों के लिये आत्म सम्मान की रक्षा करना सबसे प्रधान कार्य है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! भगवान् के लाखों पुत्र थे, सभी विवाह योग्य हो गये। जो जहाँ भी स्वयम्वर की बात सुनता वह वही दौड़ा जाता। जाम्ववती के पुत्रों में साम्ब सबसे सुन्दर था। उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग मे सुन्दरता थी उसके लिये सुन्दरता अभिशाप हो गयी। सुन्दरता के पीछे ही उसे कोढ़ी हो जाना पड़ा।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! साम्ब को कुष्ट क्यों हो गया।"

सूतजी बोले—"अजी, महाराज ! अब ये सब बातें कहने कहाने की हैं नहीं। यह सौन्दर्य ऐसी प्रज्वलित अग्नि है, कि इसकी ज्वाला मे न जाने कितने जल जाते हैं। अति सुन्दरी स्त्री की रक्षा करना बडा कठिन हो जाता है। अति सुन्दर पुत्र को वशमें रखना दुस्साध्य हो जाता है। साम्ब के सौंदर्य को देख भगवान् की अन्य पत्निओं का भी चित्त चञ्चल हो गया था अतः स्वयं भगवान् ने ही अपने पुत्र साम्ब को कोढी हो का शाप दे दिया था। पीछे सूर्यदेव की उपासना से उनका रोग दूर हुआ। अस्तु कहने का सारांश इतना ही है, कि सा देवपुत्रों से भी अधिक सुन्दर था।

एक दिन उसने सुना हस्तिनापुर के दुर्योधन की कन्या लक्ष्मणा बड़ी ही सुन्दरी है। उसका स्वयम्वर होने वाला है इतना सुनते ही वह रथ मे बैठकर बिना किसी से कहे चुपके हस्तिनापुर को चल दिया। उसने सोचा—"मेरे और भी ला भाई हैं। उन सबकी भी इच्छा हुई, वे भी स्वयम्वर में गये और कन्या ने उन्हें ही वरण कर लिया,तब तो गड़बड़ी ह

जायगी। घर में ही कलह मच जायगी, इसलिये किसी से कहो ही मत। चुपके से चलकर दाव मार लावे और वहू सहित आकर सबको चकित करे।" यही सोचकर वह अकेला ही चला गया।

स्वयम्वर में जाकर साम्वने देखा यहाँ तो वड़े-वड़े राजकुमार आये हुए है। लाखो राजा और राजकुमार सजेबजे कन्या की आशा से चातक की भाँति आशा लगाये वैठे है। साम्व ने सोचा न जाने कन्या किसे वरण करले इसलिये जो पहिले हाथ मारले जाता है उसीके हाथ खेत रहता है। यही सोचकर उसने कन्या के वरण की प्रतीक्षा नही की। ज्योही जयमाला लेकर राजकुमारी लक्ष्मणा निकली त्यों ही साहसी साम्ब ने उसेउ ठाया, रथ पर बिठाया और भाग चला। लड़की को उठाकर भाग जाना यह तो इनके कुल का सदाचार ही है। पिता आदि वड़े जो करते है, लड़के भी उन्ही के कार्यो का अनुकरण करते हैं।

मानी दुर्योधन ने तथा उसके सभी भाई वन्धुओं ने इः में अपना घोर अपमान समझा। सवके सव कौरव कुपित हुए और कहने लगे—"ये श्रीकृष्ण का लडका वड़ा धृष्ट अविनयी और मूर्ख है। भला वताओ इस नीच ने ऐसा साहस किया कैसे। कन्या उसे चाहती होती, उसे वरण कर लेती, तो एक वात भी थी। यह तो इसने महान् नीचता का काम किया। इसने हम लोगों को कुछ समझा ही नहीं। इस दुर्विनीत छोकरे को पकड़ कर बाँधलो। इसके हाथ पैरों में वेड़ी डालकर वन्दी गृह में इसे रख दो।"

किसी ने कहा—"भाई, सोच समझकर कार्य करना चाहिए। इसे वाँधने का अर्थ होता है, यादवों से वैर करना। यादव कभी इसे सहन न कर सकेंगे। सुनते ही वे सव सैन्य सजाकर लड़ने आवेंगे। रक्तपात होगा, कलह का वीज वो जायगा।"

इसपर दुर्योधनने कहा—"अजी, तुम कैसी बात करते हो। यादव कोई सिंह है जो हमे खा जायँगे। कोई राजा हो,तो उसके सम्बन्ध में सोचा भी जा सकता है। यादव तो विशुद्ध क्षत्रिय भी नही। उन्हें राजसिंहासन पर बैठने का, छत्रचँवर लगाने का अधिकार ही नही। ये जो द्वारका में बैठकर अपने को राजा माने बैठे है, यह हमारी ही कृपाका फल है। हमने ही उपेक्षा कर रखी है, कि कुछ पृथिवी के भाग का ये भोग करते है, तो करने दो, किन्तु इसका अर्थ यह थोड़े ही हैं, कि ये हमारे सिर पर आकर चढ़ें। मर्यादा का अतिक्रमण करें। यदि साम्बका बन्धन सुन कर सैन्य सजाकर वे आते है तो आयेंगे। वे यहाँ आते ही उसी प्रकार शान्त हो जायँगे जैसे विपुल जल पाकर अग्नि शान्त हो जाती है। खीर हलुआ पाकर भूख शान्त हो जाती है, अथवा अग्निको पाकर सरदी शान्त हो जाती है। या प्राणायामादि उपायों द्वारा चित्तके एकाग्र होने पर इन्द्रियाँ शान्त हो जाती है। हमें यादवों का तनिक भी डर नहीं है, किन्तु इस विषय में अपने बड़े बूढो से भी सम्मति ले लेनी चाहिये। हमारे कुल में सबसे वृद्ध भीष्म पितामह है, उनसे अनुमति और लेलो और इस अशिष्ट बालक को बाँध लो।"

यह सुनकर सभी रोष में भरे हुए वृद्ध भीष्म पितामहजी के निकट गये और उनसे बोले—"पितामह ! देखिये, श्रीकृष्ण के उस रौहिनी के छोकरा ने हम लोगों का कैसा अपमान किया है। बलपूर्वक स्वयम्बर की रंगभूमि से अकामा कन्या को उठा ले गया है। हम सब उसे बाँधना चाहते हैं, आपकी क्या आज्ञा है ?"

भीष्म पितामह ने सब सुनकर मन ही मन सोचा—"जिनके संरक्षक श्यामसुन्दर हैं, उन्हें भला कौन बाँध सकता है, किन्तु ये जो करना चाहते हों उसे कर लेने देना चाहिए। अन्त में तो

साम्बका विवाह लक्ष्मणा के साथ निश्चित ही है।" यही सोचकर वे बोले-"लड़के ने अवश्य ही बहुत धृष्टता की है, उसे कभी भी क्षमा न करना चाहिए।" इतना सुनते ही सब का रक्त उबलने लगा। सभीने धनुषबाणो से सुसज्जित होकर साम्ब का पीछा किया। कर्ण, शल, भूरिश्रवा, यज्ञकेतु, दुर्योधन तथा उसके अन्यान्य भाई बन्धु साम्ब को पकड़ने चले। कुछ दूर चलकर उन सबनें साम्ब को घेर ही तो लिया।

साम्बने जब कौरवों को युद्ध के लिये आते देखा, तो वे न तो घबराये ही और न डरकर भागे ही। धनुषबाण तानकर वे भी युद्ध के लिये सिंह के सदृश डटकर खड़े होगये। अब क्या था होने लगी दोनों ओर से सर्र फर्र कौरव कहते-"खड़ा तो रह।" साम्ब कहते—"खड़ा तो हूँ आजाओ।" दोनो ओर से बाणों की उसी प्रकार वर्षा होने लगी जैसे प्रलयके समय सावर्तक मेघ वर्षा करते है। साम्ब कुछ कम नही थे। वे भी बड़े वीर थे। वे उनके अपमान को कैसे सह सकते थे। सिंहके बच्चे से मृग चाहे कितनाही बड़ा हो फिर भी वह मृगोसे डरकर भागता नहीं। वे कौरवों के प्रहारोंको दृढ़ताके साथ रोकते साथ ही उन पर प्रहार भी करते। इधर कर्ण दुर्योधन, शल, भूरिश्रवा आदि छै महारथी थे, उधर अकेले साम्ब थे। ये छै एक बार जितने बाण छोड़ते उनका वे एक साथ प्रतीकार भी करते साथ ही छओं पर एक साथ प्रहारभी करते। उन्होंने इन कौरव पक्षीय वीरों के बाण मार मार कर रथों को तोड़ दिया घोड़ोंको घायल कर दिया और सारथियों को मारदिया। दुर्योधनादि वीर इस बालक के [illegible] पराक्रम को देखकर परमविस्मित हुए। उनका हृदय [illegible] देखकर भर आया। वे कहने लगे—"यह लड़का है [illegible] किन्तु बड़ा खोटा है। इसने हम सबमें [illegible]

से टक्करली।" इस प्रकार वे विपक्षी वीर भी इनकी वीरता की मन ही मन प्रशंसा करने लगे।

अब उन्होंने सोचा--"धर्म युद्ध करके तो हम इससे जीत नहीं सकते। वैसे लड़की लेकर भाग जाता तो उतनी बुराई नहीं थी। जब हम छै वीरों ने इसका पीछा किया और यह अकेला हम छैओं को हराकर कन्या ले गया, तब तो हमारे मुख पर कालिख पुत जायगी। फिर तो हम किसी को मुख दिखाने योग्य भी न रहेंगे।" यही सोचकर उन सबने धर्म का विचार छोड़ दिया। सबके सब अकेले उस साम्ब पर टूट पड़े। चारों ने मिलकर साम्ब के चारो घोड़ों को मार डाला। एक ने बड़े कौशल से सारथी का वध कर दिया। एक ने अर्ध चन्द्राकार बाण छोड़कर साम्ब के धनुष को काट दिया। अब तो साम्ब रथहीन हो गये। उनपर धनुष भी नहीं रहा। पीछे से किसी ने झपट कर उन्हें पकड़ लिया और रस्सियों से बाँध लिया। कन्याको दूसरे रथ पर बिठा लिया। साम्ब को बाँधकर अपनी जय का डंका बजाते हुए कौरव हस्तिनापुर में आये। साम्बको तो बन्दीगृह में डाल दिया। लक्ष्मणा को महलों में भेज दिया। स्वयम्वर का कार्य स्थगित कर दिया गया।

इधर नारदजी भी स्वयम्वरके समय हस्तिनापुर में आये थे। देखने चले आये होंगे, कि देखें स्वयम्वर में कन्या किसे वरण करती है। जब उन्होंने देखा भगवान् के पुत्र को कौरवोंने बन्दी बना लिया तो उन्हें द्वारका जाने का एक अवसर मिल गया तुरन्त दौड़े दौड़े द्वारका आये। यादवों की सभा लगी हुई थी, उस समय किसी घरेलू विषय पर उत्तेजना पूर्ण वाद विवाद हो रहाथा। उसी समय सब नारद जी की वीणा की धुनि सुनकर चौंक पड़े। सभीने देवर्षिका स्वागत किया। मुनिने बैठते ही

कह—"अरे, तुम क्या छोटी छोटी बातों के विवाद में फँसे हुए हो। तुम लोगों की तो नाक कट गई।"

चौंककर प्रद्युम्नजी ने पूछा—"कैसे नाक कट गई महाराज ! आप तो ऐसे ही अद्भुत समाचार लाते हैं। सुने भी तो सही क्या हुआ ?"

नारदजी बोले—"हुआ क्या भाई ! तुम्हारे भाई साम्ब को कौरवों ने अधर्म पूर्वक बन्दी बना लिया है। वह बालक अकेला था, उससे छै छै माहारथी भिड़ गये। जैसे तैसे रथहीन करके उसे पकड़ लिया।"

लोगोंने कहा—"महाराज ! बात क्या थी, साम्बने ऐसा कौरवों का क्या अपराध किया था ?"

नारदजी बोले—"बात कुछ नहीं थी। उसने तो अपने कुल धर्मका पालन किया। जो उसके पिता करते रहे। भाई करते रहे, भतीजे करते रहे। वही उसने किया दूसरे की लड़की को सबके सामने लेकर भागा था। कौरवोंने समस्त यादवोंको बुरा-भला कहा और उसे पकड़ले गये। यादवों के सम्बन्ध में उन्होंने जैसी कहवनी अनकहनी बातें कहीं, उन्हें अब मैं क्या कहूँ ?"

इतना सुनते ही सबके सब यादव कुपित हो उठे वे आपस में कहने लगे—"कौरव हमारे सामने है ही क्या ? हम चलकर उन्हें उनकी अशिष्टता का फल चखावेंगे। साम्ब को बाँधकर उन्होने हमारा घोर अपमान किया है। अभी सेना सजाई जाय, आज ही कौरवों पर चढाई कर दी जाय। हमे पूर्ण आशा है महाराज उग्रसेन हमें इसके लिये आज्ञा देंगे।"

बूढ़े उग्रसेन ने भगवान् की ओर देखा, वे चुपचाप बैठे हुए सब की बातें सुन रहे थे। प्राचीन सदाचार था कि बड़ों के सामने लोग अपने पुत्रोंको गोदमें नहीं लेते थे। उनसे प्यार नहीं करते थे वे लोग कोई वस्तु मांगते थे. तो उन्हें बड़ों के

समीप भेज देते थे और उनके विवाह आदि की बात छिड़ते ही पृथक् हो जाते। पूछने पर कह देते थे "हम क्या जानें बड़े बूढ़ों से पूछो, वे जो कहेंगे वही होगा। बड़ों के रहते किसी उत्सव पर्वों पर अपना नाम नहीं लिखते थे। सारांश जब हमारे भी बड़े उपस्थित है, तो हमें अपने और अपनी सन्तानों के विषय में सोचने का क्या अधिकार है। परिवार में जो बड़े बूढ़े होते थे, उन्ही की चलती थी। इसलिये भगवान् साम्ब के पकड़े जाने के सम्बन्ध में कुछ बोल नहीं रहे थे। उग्रसेन है, वसुदेवजी हैं, बलदेवजी हैं तथा अन्यान्य वृद्ध यादव है, वे जो करेंगे वही होगा। भगवान् को मौन देखकर उग्रसेनजीने कहना आरम्भ किया—"यह अकेले साम्ब का ही अपमान नही है। समस्त यदुवश का अपमान है, इसलिये मेरी सम्मति में कौरवों पर अवश्य चढ़ाई कर देना चाहिये। जब तक साम्ब को छुड़ाया न जाय,तब तक हमें एक क्षण भी शान्त होकर बैठना न चाहिए।"

उग्रसेनजी की बातों का सभी युवक यादवों ने जय घोष करके समर्थन किया। युद्ध के लिये उनके अङ्ग प्रत्यङ्ग फड़कने लगे। वे तुरन्त ही हस्तिनापुर चलने को शीघ्रता करने लगे। कोई सेनापतियो से कहते—"अब शीघ्र ही सेना सजाई जाय।"

उन युवकों को युद्ध के लिये अत्यन्त उत्सुक देखकर बलभद्रजी खड़े हुए और बोले—"इस सम्बन्ध में मैं कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।"

उग्रसेनजी ने उत्सुकता के साथ कहा—"हाँ,हाँ, कहिये।"

इस पर बलदेवजी ने कहा—"देखो, भाई! इस सम्बन्ध में व्यर्थ उतावलापन न करना चाहिए कौरवों से हमारा पुराना सम्बन्ध है, उनसे हमारा युद्ध होना उचित नही। इतने राजाओं से हमारी शत्रुता है। कौरव हमारे शत्रु नही मित्र हैं। उन पर सहसा चढ़ाई करना शोभा नहीं देता।"

इस पर एक युवक यादव बोला—"यह काम तो शत्रुता का ही किया है। शान्ति की भी कोई सीमा होती है। हमें क्या उन्होंने निर्बल समझ रखा है। यह तो हमारा घोर अपमान है।"

बलदेव जी गम्भीरता के साथ उस यादव कुमार को समझाते हुए कहा—"भैया! अभी तुम्हारा नया रक्त है, तुम बिना पूर्वापर का विचार किये उत्तेजित हो जाते हो। जब तुम किसी की लड़की को बल पूर्वक हर ले जाओगे, तो वह उसका प्रतीकार न करेगा। उसकी कुछ मान मर्यादा नहीं है। मनुष्यों को दूसरों का राई भर दोष तो तुरन्त दिखाई दे जाता है,किन्तु अपना सुमेरू के सदृश दोष भी दिखाई नहीं देता। साम्ब को ऐसा लड़कपन करना ही नहीं चाहिए था। उसे विवाह करना था, तो हमसे कहता। यहाँ से सेना ले जाता। राक्षस विवाह क्षत्रिय के लिये विहित है,किन्तु उसके लिये बल भी तो चाहिए। अस्तु—कोई बात नही आप लोग शान्त हों, मैं अकेला हस्तिना-पुर जाता हूँ। वहाँ मैं सबको शान्ति के साथ समझाऊँगा दुर्योधन मेरा शिष्य है, वह मेरी बात टालेगा नही। भीष्म पितामह वृद्ध है, वे आगे पीछे की सब सोचते हैं। यथा शक्ति मैं ऐसा ही प्रयत्न करूँगा कि बिना कलह के ही झगड़ा शान्त हो जाय। यदि ऐसा न हुआ। बल प्रयोग करना पड़ा, तो इसके लिये मैं अकेला ही पर्याप्त हूँ इतनी बड़ी सेना सजाकर हस्तिनापुर जाने की क्या आवश्यकता है?"

महाराज उग्रसेन ने कहा-"हाँ, हाँ, यह उत्तम है। बलदेवजी जाकर ही इस झगडे को शान्त कर दें। बात को बहुत बढ़ाना उचित नहीं। तनिक सी बात पर उत्तेजित हो जाना बुद्धिमानी नहीं। जो गुड़ देने से ही मर जाय, उसके लिए विष प्रयोग क्यों किया जाय।"

यह सुनकर युवकों को बड़ी निराशा हुई। एक ही तो युद्ध का अवसर आया था, वह भी बलभद्र जी के कारण टल गया, किन्तु करते क्या राजा की आज्ञा है। सब शान्त हो गये। अब कलिकलुष विनाशन बलदेवजी हस्तिनापुर जाने को उद्यत हुए। उन्होंने बड़े-बड़े विद्वान् अनुभवी वृद्ध ब्राह्मणों को साथ लिया कुछ कुटुम्ब बड़े बूढ़े शान्ति प्रिय लोगों से भी साथ चलने का आग्रह किया। जिस प्रकार तारागणों से घिरे चन्द्रदेव चलते हैं उसी प्रकार बलदेव जी सब वृद्धों और विद्वान विप्रों से घिरे हु हस्तिनापुर की ओर चल दिये। भगवान् के आत्मसचिव उद्धवजी भी उनके साथ थे।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! हस्तिनापुर के समीप पहुँचक बलदेव जी ने नगर से बाहर एक उपवन में अपना डेरा डाला वहाँ स्वस्थ चित्त से बैठने के अनन्तर उन्होंने उद्धवजी से कहा "उद्धव! अब तुम हस्तिनापुर में चले जाओ और वहाँ जाक भीष्म पितामह, धृतराष्ट्र, विदुर, दुर्योधन तथा अन्यान्य कौर से मेरे आने का समाचार कहो। पहिले यह देखना चाहिए हमारे साथ कैसा व्यवहार करते हैं?"

उद्धव जी ने कहा—"जैसी आज्ञा।" यह कहकर उद्धव ज तुरन्त हस्तिनापुर में गये। संयोग की बात कि उस समय कौर की सभा लगी हुई थी। उसमें धृतराष्ट्र भीष्मपितामह,द्रोणाचा कृपाचार्य, वह्लिक सभी बैठे हुए थे। वहाँ जाकर उद्धवजी ने स को यथा योग्य प्रणामादि करिके कहा—"श्री बलराम जी य पर आप लोगों के यहाँ पधारे हुए हैं। वे नगर के बाहर उपव में ठहरे हुए है। उन्होंने मुझे आपके समीप सूचना देने के लि भेजा है। अब आप जैसा उचित समझें वैसा करें।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! अपने प्रिय सुहृद बलदेव जी के पधारने का समाचार सुनकर सभी कौरव पक्षीय पुरुष अति प्रसन्न हुए। वे माङ्गलिक वस्तुओं को सजाकर बड़ी धूमधाम से बलदेव जी का स्वागत सत्कार करने चले। अब दोनों पक्षों में जैसे बातें होंगी। उसका वर्णन आगे करूँगा।"

छप्पय

बल बोले—"सब सुनो, शान्ति के हित हौं आयो।
उग्रसेन भूपाल अधिपने मोइ पठायो॥
आज्ञा तुमकूँ दई साम्बकूँ छोड़ो अब तुम।
कौरव यादव एक रहें चाहत यह सब हम॥
भूल समुझि माँगो क्षमा, बिगरी फिरि बनि जायगी।
तुरत पठायो वर वधू, नहीं बात बढ़ि जायगी॥

कौरव और संकर्षण

(११३१)

यस्यांघ्रि पङ्कजरजोऽखिललोकपालै-
मौल्युत्तमैर्धृतमुपासिततीर्थ तीर्थम् ।
ब्रह्मा भवोऽहमपि यस्य कलाः कलायाः
श्रीश्चोद्वहेम चिरमस्य नृपासनं क ॥
(श्रीभा० १० स्क० ६८ अ० ३७ श्लो०)

छप्पय

सुनिकें कौरव कुपित भये बोले—'यादव सब ।
भूपति वनिकें पतित देहिं हमकूं आयसु अब ॥
नीच, भगोड़े फिरें नेक नहिं इनकूं लाजा ।
मारे मारे फिरत भये अब माठू राजा ॥
हमने ही ऊँचे करे, संग बिठाइ खवाइ कें ।
सत्य कहत मुनि विष बढ़त, पय पन्नगनि पिआइकें ॥

जब मनुष्य ऐश्वर्य के मद में मतवाला बन जाता है, तो अं

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! कौरवों की अविनय से कुपि होकर बलदेवजी कह रहे हैं—"जिन श्रीकृष्णचन्द्रजी की चरण रज सं द्वारा सेवित है, जो गङ्गादि तीर्थों को भी तीर्थ बनाने वाली है, जि समस्त लोकपाल गण अपने मुकुट मण्डित मस्तको पर धारण करते हैं जिसे उनके ही अंश के अंश से उत्पन्न होकर लक्ष्मी जी, ब्रह्माजी, शिवज तथा हम जैसे निरन्तर धारण करते हैं । उन श्रीकृष्ण के लिये राज सिंहासन का क्या महत्व है ?"

संट बकने लगता है। किन्तु जब उसका कोई मद चूर्ण करने वाला मिल जाता है,तब उसकी आँखें खुलती है। तब उसे अपने किये पर पश्चात्ताप होता है। तब उसकी बुद्धि ठिकाने आती है और विनयावनत होकर अपने अपराधोके लिये क्षमा याचना करता है। अपराध स्वीकृति भगवान्की कृपाके बिना हो नहीं सकती। जिन्हें धन, जन, विद्या, बुद्धि, कल, कौशल, अधिकार तथा तपका अभिमान है, वे अपने अपराधको भी उचित ही बताते है। उनमें अपराध को अपराध मानने की क्षमता ही नही रहती। जिनमें आत्मदोष दर्शनकी भावना जितनी ही अधिक होगी, वे भगवत् कृपा का उतना ही अधिक अनुभव करने वाले होंगे। दिखावे के लिये नही, भय अथवा दम्भादिसे नही सच्चे हृदयसे अपने कृत्यपर पश्चात्ताप होना यही भगवत् कृपाका लक्षण है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! कौरवोंने जब बलदेवजी का शुभागमन सुना तो वे पूजाकी सब सामग्री तथा गौ लेकर नगर के बाहर उपवनमें जहां वे ठहरे हुए थे, वहां गये। सबने अपनी अपनी आयु, सम्बन्ध तथा छोटे बड़े नातेसे उन्हें प्रणाम नमस्कार आदि किया। सब प्रसन्नता पूर्वक बैठ गये। दुर्योधन ने बलदेवजी की पूजीकी उन्हें गौ अर्पणकी अर्घ्य दिया और अक्षत धूप, दीप, वस्त्र फल फूल आदि अर्पण करके उनका आतिथ्य सत्कार किया। दुर्योधनकी पूजाको शास्त्रीय विधिसे स्वीकार करके बलरामजीने सबका आदर किया। जो अवस्थासे सम्बन्धमें बड़े भी थे, उन्होंने भी बलरामजो का महत्व समझ कर उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित किया। उन्हें सिर झुकाकर प्रणाम किया।

बलदेवजीने पूछा—'कहो, भाई! सब कुशल मङ्गल है न? आपका राजकाज भली भाँति चलता है न? प्रजाके सब लोग सन्तुष्ट हैं न? आपके मन्त्री, पुरोहित, भृत्य, सेवक तथा सेनाके

लोग कर्तव्य समझ कर लगन के साथ कार्य करते हैं न ?

दुर्योधनने कहा—"महाराज ! सब आपकी कृपा है। द्वारका में तो सब कुशल पूर्वक है न ? महाराज उग्रसेन, वसुदेवजी, भगवान् श्यामसुन्दर उनके पुत्र पौत्र तथा अन्यान्य यादव गण आनन्द पूर्वक तो हैं न ? आपने बड़ी कृपा की जो हमें दर्शन दिये।"

बलरामजीने कहा—"हाँ सब कुशल पूर्वक हैं। मैं एक विशेष कार्यसे आप सबके समीप आया हूँ। मैं अबकी बार अपनी ओरसे नहीं आया हूँ। मुझे महाराजाधिराज उग्रसेनने आप लोगोंके आस एक आज्ञा पत्र देनेको भेजा है। आप उनकी आज्ञाको सावधान होकर श्रवण करें। और सुनकर अविलम्ब ही उसका पालन करें।"

उग्रसेनने हमारे लिये आज्ञा भेजी है,यह सुनते हीकौरव आग बबूला हो गये,क्रोधके कारण उनकी भौंहें तन गयीं,किन्तु बलदेव जी रुके नहीं और न उनके बचनोमे ही कोई दीनता आयी, वे निर्भीक होकर कहते ही गये—"देखो, तुम लोगोंने बड़ा अन्याय किया है। युद्ध धर्मका उल्लङ्घन किया है। धर्मयुद्ध में एक व्यक्ति के साथ एक ही लड सकता है। तुम छै महारथियोंने मिलकर उस बच्चे साम्बको घेर लिया और उसे अधर्म पूर्वक जीतकर बाँध लिया। ऐसा करना युद्धके धर्मो के सर्वथा विरुद्ध है। यह काम तो आप लोगों ने शत्रुता का किया है, किन्तु हमारे आपके से अच्छे सम्बन्ध रहे हैं। हम नहीं चाहते, इस छोटी सी बात पीछे विवाद बढ़े। हमारी तुम्हारी एकता नष्ट हो। इस इच्छ महाराजने मुझे भेजा है। अब जो हुई सो हुई। अतः आप लो अपने अपराधके लिये क्षमा याचना करें। और साम्बको व सहित तुरन्त भेज दें।"

इतना सुनते ही कौरवों का कोप सीमाको अतिक्रमण क गया। बलदेवजी को सीधा तो किसीने उत्तर दिया नहीं, f

उन्हें सुनाते हुए परस्परमें कहने लगे। बलरामजी के बचनों में दीनता नहीं थी। उनमें भय, अथवा संकोच का भाव नहीं था। वे वीर्य, शौर्य और बलके उत्कर्षसे परिपूर्ण थे। वे उनके अनुरूप ही वचन थे, किन्तु कौरवोंने इसमें अपना घोर अपमान समझा। उनमेंसे एक सूखी हँसी हँसता हुआ कहने लगा—"देखो, भाई संसार बड़ा विचित्र है। अब तो कलियुग आगया। पहिले युगों में पैरकी जूती पैरसे रहती थी, माथेका मुकुट माथेपर रहता था, परन्तु समयकी बलिहारी है आज पैरकी जूती मुकुट मंडित मस्तक पर चढना चाहती है"

दूसरे ने कहा—"सो कैसे ?"

वही दाँत पीस कर बोला—"नीचोंको किसी तरह बढ़ा भी दो तो वे अपनी नीचता छोड़ नहीं सकते। अब इन यादवों को ही देखो। महाराज ययातिने अपने पांच पुत्रोंमें से चार को शाप दे दिया था, राज्य भ्रष्ट कर दिया था वर्णाश्रमसे बहिष्कृत कर दिया बड़े पुत्रको राज्य न देकर सबसे छोटे पुत्र पुरुको राज्य दिया था। पुरुवंशी क्षत्रिय ही विशुद्ध क्षत्रिय माने जाते हैं। शेष द्रुह्यु, तुर्वसु और अनु ये लोग भारतवर्षके बाहर चले गये और वहाँ जाकर म्लेच्छ, यवन, दर्दुर, कंक खश तथा अन्यान्य अनार्य जातियाँ राजा बन गये। ये लोग वर्णाश्रमसे बहिष्कृत माने जाते हैं। सबसे बड़े यदु यहीं भारतवर्षमें रह गये उन्हींके वंशज ये यादव हैं। इनको न राज्यासन पर बैठनेका अधिकार है न अपने को क्षत्रिय कहलाने का। क्षत्रियों से इनकी रोटी बेटी का भी सम्बन्ध नहीं। ये लोग अपने ही वंशमें-आपसमे विवाह करते थे। हमारे पूर्वजोंने बड़ी भूल की इनके साथ सम्बन्ध कर लिये। महाराज पांडुका विवाह कुन्तीसे कर लिया। उन्होने सोचा होगा 'स्त्रीरत्नम् दुष्कुलादपि।' स्त्री रत्न यदि अपने से नीच कुलमें भी हो तो उसे ले लेना चाहिए। इस प्रकार हम पुरु वंशियों और यदु

वशियोसे सम्बन्ध होना आरम्भ हो गया। अब ये लोग हमारे यहाँ आने जाने लगे। पहिले तो हम इनसे वैसा ही व्यवहार करते। जब सम्बन्धी हो गये, तब शनैः शनैः उठ बैठने लगे, खाने पीने लगे। फिर इन लोगोंने उग्रसेनको अपना राजा ही घोषित कर दिया। हम लोगोंने भी उपेक्षा कर दी। अच्छा है ये भी कुछ भूखण्डका राज्य भोगें। यद्यपि यह इन लोगोंने नई प्रथा चलाई थी। उग्रसेनके पूर्व यादवोंमें कोई चमर छत्र धारण करके राजा नहीं बना था। कंस यद्यपि बड़ा प्रतापी राजा था। राज छत्र तथा चँवरादि चिन्ह उसने भी धारण नहीं किये थे। उसने पचायतराज्यको समाप्त करके एकाधिपत्य स्थापित किया था धारा सभा और शासन सभाको भंग कर दिया था। किन्तु श्रीकृष्णके कहनेसे उग्रसेन तो यादवोंके नियमित राजा मान लिये गये। यह सब हुआ हमारी ढील ढालसे ही। यदि उस समय हम कड़े पड़ जाते और डाँटकर कह देते कि तुम ऐसा दुस्साहस क्यों कर रहे हो? क्यो यह नई प्रथा चला रहे हो? क्यों कुला-चारके विरुद्ध कार्य कर रहे हो? तो इनका साहस न होता। किन्तु हम कुछ बोले नहीं। उसका परिणाम यह हुआ कि ये लोग चमर, व्यजन, शङ्ख, श्वेत छत्र, राजमुकुट तथा राज सिंहासन आदि जो राजाओंके चिन्ह है उन्हें धारण करते रहे। राजसी आसन शय्या आदिका उपभोग करते रहे। उसीका यह परिणाम है कि यह कलके बने बनावटी राजा हम पर ही अपनी आज्ञा चलाते हैं। हमें आदेश देते हैं डराते हैं धमकाते हैं।"

इस पर एक दूसरेने व्यंगके स्वरमें कहा—"कैसे भी हो अब तो ये राजा ही नहीं राजाधिराज बन गये हैं। जब ये राजाओंके राजा हैं, तब इन्हे राजाओं पर शासन करनेका अधिकार है ही। जब तुमने उपेक्षा करके इन्हें बढ़ा दिया, तो इनकी आज्ञा मानो।"

इस पर दाँत पीसता हुआ दूसरा बोला—"भूल तो हमारी ही हुई,

कि इन नीचों को इतना बढ़ा दिया। हमें आशा थी, ये राज्य पाकर हमारे अनुकूल रहेंगे। हमारे सदा आभारी बने रहेंगे, किन्तु ये तो कृतघ्न ठहरे। जिस पत्तलमें खाते हैं, उसीमें छेद करते हैं। कुत्ते को भूँकना सिखाओ वह स्वामी को ही काटने दौड़ता है। सर्प को दूध पिलाओ तो सात्विक प्रकृति का थोड़े ही बनेगा, उसका और भी विष बढ़ेगा। यही दशा इन यादवों की है। जिन्होंने इनको राज्य चिन्ह दिये, अब ये उन्हीके प्रतिकूल आचरण कर रहे है। दाता को ही तुच्छ समझकर आज्ञा दे रहे हैं। इसका एक मात्र उपाय यही है कि अब इनसे छत्र चामरादि राज्य चिन्ह छीन लेने चाहिये। फिर इन्हें वैसा ही राज दण्डित कर देना चाहिये। ये लोग राज्य चिन्ह धारण करने के योग्य नहीं। इनके यहाँ के छोकड़े का दुस्साहस तो देखो, वह नीच राज कन्या के साथ विवाह करने का मनोरथ करता है। राजा भी कोई छोटे मोटे नही। पुरुवंशी राजाओं के साथ। अब उन्हें उनकी धृष्टता का फल मिल गया, तो अब वे उनके [illegible] ऐंठे हैं मूँछों पर ताव देकर। ये बड़ बड़ा रहे हैं, कि उग्रसेन वह आज्ञा दी है, वह आज्ञा दी है। इन निर्लज्जों को ऐसा कहते लाज भी नही लगती। हमने ही इन्हें ऊँचे उठाया और हमें ही आज्ञा देने चले है?"

पृथक रही,इनसे तो देवताओंके राजा इन्द्र भी नही जीत सकते।"
चलो इस मतवाले सुरापी को वकने दो। देखें,ये हमारा क्याकरते हैं

सूतजी कहते हैं–"मुनियो ! कौरवो को अपनी कुलीनता का,
अपने वल ऐश्वर्यका अत्यधिक अभिमान था। वे यह नहीं समझते
थे कि ये रामकृष्ण दोनों साक्षात् ईश्वर हैं। इसीलिये वे ऐसी
कठोर कठोर वातें वलरामजीसे कहकर, विना उन्हें प्रणाम नम-
स्कार किये असभ्यता पूर्ण ढँगसे उठकर अपने नगरमें चले गये।

कौरव उनके साथ भी ऐसा अशिष्ट व्यवहार करेंगे, इसकी
वलभद्रजी को स्वप्नमें भी आशा नहीं थी। उनकी इस कुटिलता
को देखकर तथा उनके ऐसे दुर्वचनों को सुनकर वलभद्रजी को
वड़ा क्रोध आया। वे वार वार सूखी हँसी हँसते हुए उद्धवजी से
कहने लगे। यद्यपि वे ऊपरसे तो हँस रहे थे, किन्तु भीतर हीं
भीतर उनके रोम रोममें क्रोध व्याप्त हो रहा था क्रोधके आवेश
से उनकी सौम्य आकृति अति उग्र वनी हुई थी। वे वैशाख ज्येष्ठ
के मध्यान्ह के सूर्यके सदृश प्रचण्ड और दुर्दर्शनीय वने हुए थे।
वे कहने लगे—"उद्धव ! देखो, साम्बके पकड़ने की वात सुनकर
समस्त यादव कितने कुपित हो गये थे। मैंने जैसे तैसे समझा
बुझाकर उन्हें शान्त किया। मैं चाहता था,यादवों में और कौरवों
में कलह न हो, सदा शान्ति वनी रहे। हमारे इनके सम्बन्ध
मित्रता पूर्ण वने रहें। किन्तु इन्हें तो अपने श्रेष्ठ कुलका वड़े
भारी कुटुम्बका तथा अपनी विपुल सम्पत्तिका अत्यधिक मद
हो गया है। एक ही मदके कारण उन्मत्त व्यक्ति कितने अनर्थ कर
डालते हैं, फिर जिनको नाना प्रकार के मद हैं, ऐसे खल पुरुष
शान्ति नही चाहते। उनसे यदि कोई शान्ति की वात कहता है,
तो वे समझते हैं, यह हमसे डरकर ऐसी वातें कर रहा है। इस-
लिये ये शान्तिके प्रस्तावको ठुकरा देते हैं और शान्ति की इच्छा
रखनेवाले का अपमान करते है। ये लोग ऐसे मानने वाले नही है।"

उद्धवजीने कहा—"तब क्या किया जाय ?"

बलदेवजीने रोषके स्वरमें कहा-"किया क्या जाय। लातों का देव बातोंसे नहीं मानता। पशुओंको डंडे द्वाराही वशमें किया जाता है। ये मूर्ख पशुओंके ही समान हैं। तभी तो इन्हें मेरी शान्तिकी बात अच्छी नही लगी। श्रीकृष्ण तो युद्धके लिये तत्पर ही था। जैसे तैसे उसे समझा बुझाकर मैं यहां आया था। किन्तु इनकी उद्धतता तो देखो, मेरे मुखपर ही इन्होंने कैसे कैसी कठिन बातें कही।

ये दुष्ट कहते है, महाराज उग्रसेनको हमें आज्ञा देनेका क्या अधिकार है। बताओ, इन्द्रादि लोकपाल गण तो उनकी आज्ञा को सिरसे धारण करते हैं। फिर ये कीड़े मकोड़े उनके सम्मुख क्या वस्तु है। उनको ये राजा ही नही मानते। जो भोजवशीय, वृष्णिवंशीय तथा अन्धकवंशीय यादवोंके एकमात्र अधिपति है, उनके सम्मुख ये तुच्छ राजा वस्तु ही क्या है। ये कहते है, यादव राज्य सिंहासनके अधिकारी ही नहीं। अरे, राज्य सिंहासन यादवोंके सम्मुख वस्तु ही क्या है। जिन श्रीकृष्णने स्वर्गसे इन्द्र की सुधर्मा सभा मंगाली, जो इन्द्रको पराजित करके पारिजात वृक्ष ले आये, उन जगत्पति श्रीकृष्णको भी ये मनुष्योंके राज्य सिंहासनका अनधिकारी समझते है। ये तुच्छ राजा तनिकसी लक्ष्मीकी छाया पाकरही अपनेको सब कुछ मानने लगते हैं। वही लक्ष्मी साक्षात् सशरीर होकर जिनके चरण कमलकी निरंतर सेवा करती रहती हैं उनके सम्मुख, छत्र चामरादि तुच्छ चिन्ह क्या महत्व रखते हैं। जिनकी चरण कमलकी रजको धारण करके अशिव वेषधारी शिव शिव हो गये हैं, जिस चरण रजको पाकर ब्रह्माजी सृष्टि रचते है। शेषस्वरूप मैं भी जिनके चरण रजके प्रभावसे ही समस्त भूमण्डलको धारण करता हूँ। उन श्रीकृष्णचन्द्रके लिये राज्यसिंहासनका महत्व ही क्या है।

अच्छी बात है, जैसा ये कहते हैं वैसा ही सही। हम पैरोंकी जूती ही है, ये कौरव गण शिर ही हैं, किन्तु कभी कभी पैर की जूतियाँ भी सिर पर तड़ातड़ बाजकर उसके बालोंको उड़ा देती है। हम इन्हींका दिया हुआ राज्य भोगते हैं, अब देखना है, ये किसके दिये हुये राज्यको भोगेंगे इन लोगोंने ऐसी ऐसी मर्म स्पर्शी बातें कही है कि उन्हें कोई भी आत्माभिमानी मनस्वी पुरुष सहन नही कर सकता। जो शासन करनेमें सर्वथा समर्थ है, वह इन असमर्थ और निर्बल शासकोंकी ऐसी बातोंको कैसे सहन कर सकेगा? अच्छी बात है, अब पृथिवी पर या तो कौरव ही रहेंगे या यादव ही रहेगे। मुझे सेना आदिकी कुछ भी आवश्यकता नही। मैं अकेला ही आज समस्त पृथिवीको कौरवोंसे रहित कर दूँगा। कौरव आज देखें, कि यादव राजा हैं या नही। जिन भीष्म, द्रोणादिका उन्हें अभिमान है वे भी आवे। आज मैं इन सबके सहित इनकी राजधानीको गंगाजीमे डुबाये देता हूँ।"

सूतजी कहते है—"मुनियो! ऐसा कहकर अत्यंत रोषमें भर कर संकर्षण भगवान्ने अपना हल मूसल उठाया। उस समय उनकी रोषपूर्ण मुद्रा ऐसी प्रतीत होती थी, मानों तीनों लोकोंको ये भस्म कर देंगे। उनके ऐसे रोषको देखकर लोकपाल डर गये। पृथिवी डगमगाने लगी। वे हल लेकर हस्तिनापुरको उलटनेके लिये उद्यत हो गये।"

छप्पय

यों कौरव कटु वचन कहत निज नगर सिधारे।
हल मूसल द्वै कुपित तुरत बलदेव निकारे॥
मारी हल की फार उखारचो सब हथिनापुर।
तरनी सम डगमगे नगर भय व्यापो सब उर॥
कौरव-कुल, धन कुटुम्बको, सब मद तजि सूधे भये।
तुरत साम्ब अरु वधू लै, बलदाऊके ढिग गये॥

श्री संकर्षण द्वारा हस्तिनापुरकर्षण

(११३५)

लाङ्गलाग्रेण नगर मुद्विदार्य गजाह्वयम् ।
विचकर्ष स गङ्गायां प्रहरिष्यन्नमर्षितः ॥*

(श्री भा० १० स्क ६८ अ० ४१ श्लोक)

छप्पय

हाथ जोरि कें कहें–'प्रभो ! हम अति अभिमानी ।
आप अनादि अनन्त शेष समुझें मुनि ज्ञानी ॥
भूल चूक कूँ भूलि करें अब अभय अखिल पति ।
साम्ब वधू सँग खड़े देहिँ आशिष हरषित अति ॥
विनय सुनत कौरव अभय-करे, मुदित पुनि पुर गये ।
संकर्षन की विजय सुनि, यादव आनन्दित भये ॥

बड़े लोगों को जितनी ही शीघ्रता से क्रोध आ जाता है, उतनी ही शीघ्रता से वह शान्त भी हो जाता है । जो उनके सामने अकड़ता है, ऐंठ दिखाता है, उसके सामने वे वज्र के समान वन जाते हैं, जो उनके सामने गिड़ गिड़ाता है—दीन वन जाता है, उसके लिये वे मोम से भी अधिक कोमल वन जाते हैं । यही महान्

---

* श्रीशुकदेव जी कहते हैं—"राजन् ! बलदेवजी हल के अग्र भाग मे हस्तिनापुर को उखाड़ कर अत्यंत रोष मे भरकर उसे गङ्गाजी की ओर खींचने लगे ।

पुरुषों की महत्ता है। अभिमान वशअज्ञानी पुरुष उनसे जो कटु वचन कह देते है, उन्हें वे मन में नहीं रखते। उनकी अज्ञानता को स्मरण करके क्षमा कर देते है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! क्रोध में भरकर शेषावतार भगवान् संकर्षण ने हस्तिनापुर को अपने हल की नोंक से उसी प्रकार उखाड़ लिया, जिस प्रकार छोटे छोटे बच्चे छत्राक को उखाड़ लेते है। सम्पूर्ण नगर को उखाड़कर वे उसे गंगाजी की ओर खींचने लगे। अब तो सबको ऐसा प्रतीत हुआ मानों भूंचाल आ गयी जैसे प्रबल धारा में नौका डग मग डग मग करने लगती है, वैसे ही वह सम्पूर्ण नगर डग मगाने लगा। बलदेव जी नगर को गगा जी की ओर खीचना चाहते थे,इससे समस्त कौरवगण घबरा गये। अब न उनकी सेना का वश चलता था। न उनका बल पराक्रम ही कुछ काम आता था। भीष्मपितामह तो सब जानते थे, यह भगवान् संकर्षण की अवज्ञा का प्रतिफल है, अत उन्होने दुर्योधन को सम्मति दी—"तुम तुरन्त ही लक्ष्मणा सहित साम्ब को लेकर बलराम जी की सेवा में जाओ, उनसे अपने अपराध के लिये क्षमा याचना करो-नही तो तुम्हारे नगर का चिह्न शेष न रहेगा।"

यह सुनकर दुर्योधन अपने सम्बन्धि बन्धु बान्धव तथा अन्यान्य कौरवों को आगे करके लक्ष्मणा सहित साम्ब को लेकर वे सपरिवार बलदेवजी की सेवा में उपस्थित हुए। सभी डरे हुए थे। सभी के ऊपर प्राणों का संकट आया हुआ था। उस संकट से बचने के लिये बलदेवजी की शरण के अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय ही नही था, अत: सबने जाकर अमित बलशाली बलराम जी के पाद पद्मो में प्रणाम किया और कहा—"हे राम! हे राम! हे महाबाहो! आप अमित तेजस्वी हैं। आपके बल पौरुष को कौन समझ सकता है। आप सम्पूर्ण संसार के

आधार हैं। प्रभो! हमने आपका प्रभाव बिना जाने ही ऐसे कुवाच्य कहे, आप जगदीश्वर का अपमान किया। हे अशरण-

शरण! अब हमें आपकी महिमा का ज्ञान हुआ। हम जड़मति मूढ़ हैं, कुबुद्धि हैं, अज्ञानवश हमसे जो अपराध होगया है, उसे

आप अपनी उदारतावश क्षमा कीजिये। आप ही इस दृश्य प्रपंच तथा विश्वब्रह्माण्ड के आधर हैं। ब्रह्मा बनकर आपही सृष्टि की उत्पत्ति करते हैं। विष्णु बनकर आपही उसकी रक्षा करते हैं और रुद्र बनकर अन्त में आपही अपनी बनाई सृष्टि का संहार भी करते हैं। आपही सबके आधार हैं आपका कोई आधार नहीं। हे शेषावतार ! मकड़ी जैसे अपने मुख से ही तन्तु निकाल कर जाला बुनलेती है और फिर अपने आपही उसमें क्रीड़ा करती है, उसी प्रकार आप भी इस सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न करके उसमें क्रीड़ा करते हैं तो अज्ञानियों को आसक्त से प्रतीत होते हैं। वास्तव मे आप आसक्त नहीं। आप तो इस सम्पूर्ण जगत् को खिलौना बनाकर लोकवत् लीला करते हैं। जब आप खेल का अन्त करना चाहते हैं, तो सबको समेट कर उदर मे रख लेते हैं और क्षीरसागर में जाकर सो जाते हैं। तब आपको ही सब लोग क्षीरशायी नारायण कहते हैं। आप वास्तव में सत्व, रज और तम इन प्रकृति के तीनों गुणों से परे है। आप विशुद्ध सत्वमय हैं।

हे सर्वभूतात्मन् ! बहुत से लोग आपको क्रोधी बताते हैं, किन्तु आपका क्रोध विवेकशून्य सर्व साधारण पुरुषों के समान नहीं है। आप क्रोध भी करते है, तो जगत् के कल्याण के ही निमित्त करते है। आपका क्रोध सब प्राणियों को शिक्षा देने के ही निमित्त है। डाह, मत्सर अथवा द्वेषवश नहीं है। इसलिये हे सर्वशक्तिधर ! आपने दंड देकर हमारे ऊपर बड़ी कृपा की। हे अव्यय ! आपने हलद्वारा चेत कराके हमारी आँखें खोल दी। हे विभो ! हम आपके पाद पद्मों में पुनः पुनः प्रणाम करते है। हे शरणागत वत्सल ! हम आपकी शरण मे आये हैं। हे विश्वकर्मन् ! हम शरणागतों की आप रक्षा करें।"

सूतजी कहते हैं—मुनियो ! ये कौरव बड़े अभिमानी थे, इन्हें अपनी कुलीनता, सेना, शक्ति और ऐश्वर्य का बड़ा भारी

अभिमान था। तभी तो इन सबने बलरामजी को इतनी खरी खोटी बातें सुनाई थीं, जब इनके भवन डगमगाने लगे, तब इनकी आखें खुली और दौड़े दौड़े बलरामजी के समीप आये। आकर अत्यत दीनता के साथ विनय करने लगे। आशुतोष सकर्षण उनकी दीनता को देखकर द्रवित हुए। उन्होंने हलको रख दिया। हस्तिनापुर के खींचने का विचार छोड़ दिया और सबको अभयदान देते हुए बोले—"अच्छी बात है, मैं तुम लोगों की विनय से सन्तुष्ट हूँ, अब भय का कोई काम नही। तुम लोग निर्भय हो जाओ। इस प्रकार कह कर उन सबको सान्त्वना प्रदान की

अब सबने संकर्षणजी को सन्तुष्ट देखा तो दुर्योधन ने आगे बढ़कर कहा—"प्रभो! ये आपके पुत्र साम्ब अपनी नव वधू के साथ आपके चरणों में प्रणाम कर रहे है, इन्हें आप आशीर्वाद दें।"

यह सुनकर पैरों में पड़े हुए साम्ब को बलभद्र जी ने प्रेम पूर्वक उठाकर छाती से लगाया। उनका सिर सूँघा और लक्ष्मणा को आशीर्वाद दिया।

बलराम जी ने दुर्योधन से कहा—"अच्छी बात है, भाई! जिस काम के लिये हम आये थे,वह होगया, अब हम जाते हैं।"

दुर्योधन ने विनीत भाव से कहा—"नही महाराज! ऐसे कैसे हो सकता है। आप मेरे नगर में पधारें, वहाँ मेरा आतिथ्य ग्रहण करें तब पुत्रवधू के सहित अपने पुत्र को लेकर जायँ।"

सब के आग्रह करने पर बलदेव जी हस्तिापुर आये। दुर्योधन ने लक्ष्मणा का विवाह वेद की विधि से साम्ब के साथ कर दिया। वह अपनी कन्या को अत्यंत प्यार करता था, अत: उसने साठ वर्ष की अवस्था वाले बारह सौ हाथी, दस सहस्र अश्व, सुन्दर सुवर्ण मण्डित चमकीले छै सहस्र रथ और सहस्र दास दासियों को दहेज मे दिया। दासियाँ सभी सुन्दर थीं

युवती थीं और सुवर्ण के भूषणों को कण्ठ में तथा सर्वाङ्गों में धारण किये हुए थीं।

इस प्रकार बलराम जी हस्तिनापुर में कौरवों का आतिथ्य स्वीकार करके और पुत्र वधू सहित साम्ब को साथ लेकर तथा दहेज के माल मसाले को लिये हुए आनन्द के साथ द्वारका पुरी में आये। जब सबने विजयी बलदेवजी के शुभागमन का समाचार सुना, तो सब उन्हें बड़ी धूमधाम के साथ नगर के बाहर से ले गये। वहाँ पहुँचकर सबने यथा योग्य श्री हलधरजी का स्वागत सत्कार किया। सब बलदेव जी की प्रतीक्षा कर रहे थे। सभी का चित्त उन्हींमें अनुरक्त था। सब लोग इस बात को सुनने के लिये बड़े उत्सुक थे, कि इतने अभिमानी कौरव इतने शीघ्र वश मे कैसे आगये।

सबके बार बार उत्सुकता पूर्वक पूछने पर बलदेवजी ने आदि से अन्त तक वहाँ का सब समाचार बताते हुए कहा— "पहिले तो उन लोगों ने बड़ी बुरी बुरी बातें बकीं और रोष मे भरकर उठकर चले गये। जब मैंने अपने हल से नगर को उखाड़ कर खींचना आरम्भ किया, तो सबकी सिटिल्ली भूल गयी भीगी बिल्ली की भाँति डरकर मेरी शरण में आये। मैंने भी सोचा—"मरे को क्या मारना। डरे पर क्या अस्त्र चलना।' मैंने उन्हें क्षमा कर दिया। मेरा उद्देश्य उन्हें केवल धमकाने का ही था। जब उन्होंने बहू सहित साम्ब को मेरे सम्मुख उपस्थित कर दिया, तो मैंने उन्हें क्षमा कर दिया।" यह सुनकर सभी प्रसन्न हुए और बलराम जी के बलबुद्धि की भूरि भूरि प्रसंशा करने लगे।

सूतजी कहते—"मुनियो! बलराम जी के हल से खींचने से हस्तिनापुर गंगाजी की ओर नीचा होगया है और दक्षिण की ओर ऊँचा होगया है। अब वह नगरी तो रही नहीं, हाँ

हस्तिनापुर नामका एक टीला है। गंगाजी वहाँ से दूर चली गयीं है, किन्तु गंगाजी की ओर झुका रहने से वह अब तक श्री बल-- रामजी के पराक्रम की सूचना दे रहा है। इस प्रकार मैंने बलराम जी का यह हस्तिनापुर कर्पण नामक प्रसग कहा। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं।"

शौनकजी ने कहा--"सूतजी! हमें भगवान् के अन्य चरित्र सुनाइये। वे अपनी पत्नियों के साथ कैसा व्यवहार करते थे। कैसे सबको सन्तुष्ट रखते थे?"

सूतजी ने कहा—"महाराज! यही शका देवर्षि नारदजी को हुई, कि भगवान् तो अकेले है, उनकी पत्नियाँ सोलह सहस्र एक सौ आठ हैं, अकेले सबको कैसे प्रसन्न रखते होंगे।" इस विषयका मेरे गुरुदेव भगवान् शुकने जो महाराज परीक्षित् से विना पूछे ही वर्णन किया है। उसे मैं आपको सुनाता हूँ, आप सावधान होकर सुनें।"

छप्पय

बसहिँ द्वारका श्याम सबहिँ रानिनि संतोपे।
सबके पुत्रनि प्रेम सहित नित पाले पोपे॥
नारद मन संतोप भयो हरि अति अलबेले।
रानी सोलह सहस किन्तु हैं आप अकेले॥
एक नारि मैंने वरी. भयो कछुक दिन महँ विरत।
इतनिनि कूँ सन्तुष्ट करि, कैसे यदुनन्दन रमत॥

नारदजीकी भगवान्‌की गृहचर्या सम्बन्धी उत्सुकता

(११३६)

नरकं निहतं श्रुत्वा तथोद्वाहं च योषिताम् ।
कृष्णेनैकेन बह्वीनां दद्दिदृक्षुःस्म नारदः ॥*
(श्रीभा० १० स्क० ६९ अ० १ श्लो०)

छप्पय

इच्छा मन महँ भई लखूँ गृहचरिया हरिकी ।
देखूँ चलिकें हृदय भावना सब नारिनिकी ॥
सोचि द्वारका चले घुसे पहिले इक घर महँ ।
प्रिया सँग हरि हँसत लसत बनमाला उर महँ ॥
नारद लखि ठाड़े भये, बैठाये सत्कार करि ।
करि इत उत दूसर महल, गये तहाँ हू लखे हरि ॥

स्त्रियोंको सदा प्रसन्न रखना इसे ईश्वरके अतिरिक्त कोई दूसरा कर नहीं सकता । यह संभव है, कि सर्पोंके साथ बहुत दिनों तक खेलता रहे और वे क्रुद्ध न हों, किन्तु यह संभव नही कि स्त्रियाँ

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! जब नारदजीने यह बात सुनी कि भगवान्‌ने नरकासुरको मारकर अकेले ही सहस्रों स्त्रियोंसे विवाह किया है, तो इस बातको सुनकर उनको भगवान्‌की गृहचर्या देखनेकी उत्सुकता हुई ।"

सदा प्रसन्न बनी रहें। एक भगवान् ही ऐसे है जो लक्ष्मीजीको सदा सन्तुष्ट बनाये रखते है साथ में ही भूदेवी और लीला देवी अपनी दो अपर पत्नियोंको लक्ष्मीजीकी सौतोंको भी प्रसन्न रखते है। भगवान्‌को छोड़ कर और जो भी स्त्री वाले पुरुष है, उन्हें खरी खोटी गाली गलोज और न जाने क्या क्या सहना पड़ता है। स्त्रियोंको वशमें रखना यह भी एक कला है, इस कलामे हमारे श्यामसुन्दर सबसे निपुण है। तभी तो उन्होने सोलह सहस्र एक सौ आठ विवाह किये थे और उन सबको सदा सन्तुष्ट रखते थे।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जिसका जिसके प्रति प्रेम हो जाता है, उसे उसके विना मिले कल नही पड़ती। चित्तमे सदा कुल बुली मची रहती है। हमारे नारदजीका भगवान् श्याम सुन्दरके चरणोंमें दृढ़ अनुराग था, अतः उन्हे द्वारका जाये बिना संतोष ही नही होता था जैसे भौंरा फूलके चारों ओर चक्कर लगाता रहता है, वैसे ही वे भी सदा द्वारकाके चारो ओर चक्कर काटते रहते थे। इधर उधर गये फिर द्वारका पहुँच गये। जैसे दाँतमे कोई वस्तु फँस जाय तो जिह्वा अपने आप वार वार वहीं पहुँच जाती है, ऐसे ही जिसके प्रति प्रेम हो जाता है, चित्त वहीं चला जाता है, उसीके सम्बन्धमें सोचता रहता है।" वे कैसे खाते होंगे कैसे उठते होगे, उसके साथ कैसे व्यवहार करते होंगे, उन्हें यह कठिनाई आती होगी, तो क्या करते होंगे। इस समय वे क्या कर रहे होंगे।" इस प्रकारके अनेकों विचार निरन्तर उनके ही सम्वन्धमें उठा करते हैं। इसी लिये नारदजी सदा भगवान्‌के ही सम्वन्धमें सोचते रहते थे। प्रेममें सदा नूतनता बनी रहती है प्रेमीकी जो भी चेष्टा देखते है वही बड़ी प्यारी लगती है। जैसे रसगुल्लाको सोने, चाँदी पत्थर, मिट्टी, बाँस तथा काठ पत्ता किसी के भी पात्रमे रख कर खाओ वह मीठा ही लगता है इसी लिये नारदजी वार वार द्वारका जाते। देखे भगवान् नहाते

हुए कैसे लगते हैं, खाते हुए कैसे लगते हैं। जाते हुए आते हुए कैसे लगते हैं। सोते हुए कैसे लगते है। बार बार देखने पर भी उनकी तृप्ति नहीं होती थी। फिर फिरकर वहीं पहुँच जाते थे।

एक दिन नारदजीने सोचा–"देखो, भगवान्‌के यहाँ मैं जब जब गया हूँ,उनकी सभी रानियोंको सन्तुष्ट पाया। यों सत्यभामा आदि कई मानिनी रानियां है, जो आपसमें सौतिया डाह तो करती है, किन्तु श्रीकृष्णसे सभी समान रूपसे सन्तुष्ट हैं। बड़ी होनेके नाते मैं रुक्मिणीजीके महलोमें जाता हूँ। जाते ही भगवान् मुझसे कहते है–"नारदजी! वीणा बजाओ।" ज्यों ही मैं वीणा बजाता हूँ, त्यों ही झुडकी झुड सभी आकर वहाँ एकत्रित हो जाती है! मेरी वीणाकी धुनिसे वे सबकी सब परिचित हैं, जिसके घरमें भी भगवान् हों वही मैं चला जाता हूँ, वही सब आजाती है। आश्चर्यकी बात तो यह है कि सबका श्यामसुन्दरके प्रति अत्यधिक अनुराग है। वे स्त्रियाँ सहस्रों भगवान् अकेले। कैसे सबको सन्तुष्ट करते होगे। मैंने जनम करममें तो एक स्त्रीसे सम्बन्ध किया। एक को अपनी पत्नी बनाया वह भी मुझे अन्तमें छोड़नी पड़ी।

यह सुन कर शौनकजी बोले—"सूतजी! कभी कभी तो आप ऐसी विचित्र आश्चर्य जनक बात कह देते हो, कि उस पर विश्वास ही नहीं होता। महाभाग! नारदजी तो जन्मसे ही गृहत्यागी ब्रह्मचारी थे, उन्होंने तो कभी दार परिग्रह किया ही नही। भगवान्‌की इस मोह मयी मायासे वे सदा बचे ही रहे। अब आप कह रहे हो, उन्होंने भी एक नारीसे विवाह किया। महाभाग! पहिले हमें इसी कथा को सुना दो, नारदजीने किसके साथ विवाह किया और उसे फिर क्यों छोड़ दिया। नारदजी इस कारे मूँडवाली मायाके चक्करमें कैसे फँस गये। विरागीसे रागी कैसे बन गये?"

सूतजी बोले–"महाराज ! जो मायाके भीतर रहेगा, उसका मायासे संसर्ग न हो, यह असंभव है। ये सनकादि कुमार मायिक सृष्टिमें नहीं है, इनकी उत्पत्ति मोहमयी मायासे प्रथम ही हुई थी। जबसे यह पंचपर्वा अविद्या हुई और ब्रह्माजी एक से दो बन गये, तबसे सबकी इच्छा दो होनेको होती है। बहुतसे ऋषि मुनि जीवन भर ऊर्ध्वरेता रहकर ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करते हैं, किन्तु कभी न कभी यह मोहमयीमाया उनको भी फांसा दे देती है। ऋषियोंमें एक बदरी नाथके नारायण ऋषि तो ऐसे है जो इसके चक्करमें नहीं फँसे। नही तो महाराज कुछ न कुछ गड़ बड़ सड बड़ सभीमें हो जाता है। संसारी लोगोंको नित्य गृहस्थ धर्म में निरत देखकर कुछ न कुछ संस्कार तो पडते ही हैं। इसी लिये ऋषियोंने इस बातपर बार बार बल दिया है, कि कभी मनुष्यको अनाश्रमी बनकर न रहना चाहिये। एक क्षरण भी अनाश्रमी रहने से पुरुष पतित हो जाता है। बिना आधारके जीवनकी गाड़ी चल कैसे सकती है। हाँ, तो आपने मुझसे नारदजीके विवाहका प्रश्न पूछा था, उसीको मैं बताता हूँ।

एक बार नारदजीने भगवान् विष्णुसे श्रीकृष्णकी लीलाओं के सम्बन्धमें बहुतसे प्रश्न किये भगवान्‌ने उन सबका उत्तर दिया। नारदजी भगवान्‌के उत्तरोंसे बड़े सन्तुष्ट हुए और बोले—"महा-राज! आपने मेरे ऊपर बड़ी कृपाकी। भगवान्‌की रहस्यमयी लीलाएँ सुनाईं। अब मेरे लिये क्या आज्ञा होती है। मैं अब क्या करूँ? आप आज्ञा दे दें तो मैं हिमालयपर जाकर तपस्या करूँ!"

यह सुन कर हँसते हुए भगवान् बोले–"नारदजी ! देखो अभी तपस्या फपस्याको छोड़ो। तपस्या तो घरकी वस्तु है, जब इच्छा हुई करली। तुम एक काम करो,जाकर अपना विवाह करलो।"

नारदजीने चौंक कर कहा—"अजी ! महाराज ! आप यह कैसी बातें कह रहे हो। विवाह न करनेकी तो मैंने प्रतिज्ञाकी है।

जिस किच पिच्चसे मैं घबड़ाता था, उसे ही आप फिर मेरे पल्ले बाँधना चाहते हैं। महाराज ! मेरी तो विवाह करनेकी इच्छा है नहीं।"

हँसते हुए भगवान् बोले—" अरे, भाई ! अकेली अपनी इच्छासे ही काम थोड़े ही चलता है। जन्मान्तरीय संस्कार बड़े प्रबल होते है। दूसरोंका आकर्षण हमें अपनी ओर खींचता है, उसके कारण इच्छा न होने पर भी खिचना पड़ता है।"

नारदजीने उत्सुकताके साथ पूछा-"महाराज ! मुझे कौन अपनी ओर खींच रहा है ?"

भगवान् बोले-"तुम्हें स्मरण है न, पहिले तुम उपबर्हण नामके गन्धर्व थे। उसके अनन्तर तुम दासीपुत्र हुए वहाँ आप को साधुओंका संग मिला जिससे तुम्हें फिर यह नारद शरीर मिला, ब्रह्माजीके मानसिक पुत्र हुए। हाँ, तो जब आप गन्धर्व योनिमें थे, तब आप बड़े स्त्री लम्पट थे। आप अत्यंत ही सुन्दर थे। आपके रूप पर बहुत सी गन्धर्वियाँ आसक्त बनी रहती थीं। उन गन्धर्वियोंमेंसे एक आप पर अत्यंत ही अनुरक्त थी। उसने आपको पति बनाने के लिये शङ्करजीकी घोर आराधनाकी। उसकी तपस्यासे आशुतोष भगवान् प्रसन्न हुए और उससे वर माँगनेको कहा। उसने यही वर माँगा—"हे सदाशिव ! यदि आप इस दासी पर प्रसन्न है तो मुझे जन्मान्तरमें नारदजी ही पति रूपमें प्राप्त हों।"

शिवजी तो औघड़ दानी ही ठहरे। उन्होंने तत्काल कह दिया—"एवमस्तु ! अच्छा, ऐसा ही होगा।" यह वर पाकर वह गन्धर्व कन्या परम सन्तुष्ट हुई। इस समय वह राजा सृञ्जय की कन्या हुई है। आप जाकर उसके साथ विवाह करलें। शङ्करजीका वरदान अन्यथा हो नहीं सकता। आपको उसके साथ विवाह करना पड़ेगा।"

नारदजीने कहा—"अजी, महाराज ! आपने तो मुझे धर्म संकटमें डाल दिया । अब आपकी आज्ञा कैसे टालूँ ?"

हँसते हुए श्रीमन्नारायण बोले—"अजी, इसमें धर्म संकटकी क्या बात । भैया, जो भाग्यमें लिखा है, उसे कौन मेट सकता है, कर्मकी रेख पर मेख कौन मार सकता है ?" कोई बात नही । जिस राजकुमारीके साथ विवाह करनेको मैं कह रहा हूँ, वह कोई ऐसी वैसी साधारण लड़की नही है । बड़ी सुन्दरी है, कमल के समान उसके सुन्दर नेत्र है, अत्यत कोमलाङ्गी है । बड़ी मधुर बोलने वाली है । लड़ाई भिड़ाई वह जानती भी नहीं । यह नही कि बात बात पर मुँह फुलाले । बड़े सुन्दर स्वभाववाली,सुशीला सदगुणवती और रूपवती है । एक मात्र आपमे ही उसका चित्त फँसा है । देखो, भैया ! इस प्रारब्धका पता नही । इसीलिये तुम धर्म पूर्वक उससे विवाह करलो । अधर्म पूर्वक छिपकर अविहित सम्बन्ध करनेमें पाप है । धर्मसे अविरुद्ध काम तो मेरा रूप ही है ! इसलिये तुम सोच मत करो । अच्छा, तुम एक बार उसे देख तो आओ ।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! भगवान् नारायणके ऐसे वचन सुन कर दुखित मनसे नारदजी उन्हें प्रणाम करके सृञ्जयपुरकी ओर चल दिये । वहाँ पहुँच कर उन्होंने देखा वह राजकुमारी अत्यंत ही सुन्दरी है । निरन्तर जप तप पूजा पाठ और व्रतमें ही लगी रहती है । उसका चित्त नारदजीमें ही लगा हुआ है । मुनियो ! मनसे किसीका निरन्तर ध्यान किया जाय, उसका उस पर प्रभाव न पड़े यह असंभव है । यदि कोई ऐसी वैसी सदाचार-हीन कामिनी होती, तो तपस्वीको उसे देखते ही घृणा हो जाती । किन्तु जो निरन्तर दान, व्रत, जप तप और देवाराधनमें लगी हुई , तपस्विनियोंका सा जीवन बिता रही है, तो उसका प्रभाव नारदजी पर क्यों न पड़ता । यद्यपि नारदजी जितेन्द्रिय थे,

मोहसे सर्वथा रहित थे। फिर भी उनका मन उस कन्याको देख कर आसक्त हो गया। अब नारदजीने सोचा—"भगवान्‌की भी आज्ञा है और भावी भी ऐसी है, लाओ इससे विवाह कर ही लें। फिर सोचा—"हमारे तो पिता समुपस्थित हैं। जिनके पिता है, वे विवाह करनेमें स्वतन्त्र नहीं। इसलिये पिताजीसे ही चल कर कहें। वे ही करना चाहेंगे, तो हमारा विवाह कर देंगे। न करना चाहेंगे, तो हम विशेष आग्रह भी न करेंगे।" यह सोचकर वे तुरन्त ब्रह्मलोकमें पहुँचे। जाकर ब्रह्माजीके चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम किया बहुत दिनोंमें अपने पुत्रको देखकर ब्रह्माजीने प्यार किया उनका सिर सूंघा और बोले—"नारद! अरे, भैया! तुम तो बहुत दिनोंमें आते हो कहो क्या समाचार है?"

नारदजीने विनीत भावसे कहा—"महाराज! सब आपकी कृपा है। अबके मैंने श्रीमन्नारायणसे श्रीकृष्णचरित्रकी कथा सुनी। उसीमें बहुत दिनों तक लगा रहा। कथा के अंतमें उन्होंने एक बड़ी विचित्र बात कही। उन्होने कहा—"तू सृञ्जयराजकी राजकुमारीसे विवाह करले।"

यह सुन कर ब्रह्माजीका मुख मण्डल खिल उठा। वे बोले· "हम तो तुझसे आरम्भसे ही कह रहे थे। तू मानता ही नहीं हमारी बात। तू समझता होगा, हम मोहवश कह रहे हैं। सो बात नही भैया! हमें संसारका सब ऊँचनीच ज्ञान है। हमारी यह दाढी घूपमें नहीं पकी है। हम जो बात कहते हैं, सोच समझ कर कहते हैं। बिना स्त्रीके पुरुष आधा होता है। इसी लिये सभी ऋषियोंने विवाह किया। भगवान् विष्णु तो अपनी पत्नी लक्ष्मी को सदा हृदयमें ही धारण किये रहते हैं। शिवजी तो स्त्रीके पीछे अर्धनारी नटेश्वर बन गये। किसी भी देवताको बता दो जो शक्ति से हीन हो। इसलिये तुमने हमारी बात नही मानी तो कोई बात नहीं। भगवान्‌की आज्ञाका कभी उल्लङ्घन मत करना। जैसी

उन्होंने आज्ञा दी है, उसका पालन करना।"

नारद जी तो चाहते ही थे अतः वे बोले—"अच्छी बात है महाराज ! जब आप सबकी ही ऐसी आज्ञा है, तो मै बड़ों के सम्मुख कह क्या सकता हूँ । आप जैसा उचित समझे वैसा करें।"

इतना सुनते ही ब्रह्माजी के रोम रोम खिल उठे। चलो भूला भटका लड़का सीधे मार्ग पर आगया। तुरन्त उन्होने देवताओं को आज्ञा दी बात की बात में बरात सज गयी। एक रत्न मंडित विमान पर नारदजी को साथ बिठाकर ब्रह्माजी बेटा का विवाह करने सृञ्जय राजा के यहाँ चले।

राजा ने जब सुना,ब्रह्माजी मेरी पुत्री का अपने पुत्र नारद से विवाह करने पधारे है। तब तो उसके हर्ष का ठिकाना नही रहा। उसने ब्रह्माजी का तथा बारात में आये समस्त देवताओं का यथोचित आदर सत्कार किया। फिर शुभ मुहूर्त में सुन्दर दिव्य वस्त्र तथा रत्नों के आभूषणों से अलकृत अपनी कन्या का नारद जी के साथ विवाह कर दिया। विवाह हो जाने परजब नारदजी बहू को विदा करके चले तो महाराज सृञ्जय कन्या को देखकर उच्च स्वर से रोने लगे। वे कहने लगे—"बेटी ! मेरे घरको सूना करके तू जारही है। अब तेरे बिना मुझे यह घर अच्छा न लगेगा मैं वनमें जाकर तपस्या के द्वारा इस शरीर को सुखाकर त्याग दूँगा।" पिता के ऐसे प्रेम भरे वचनों को सुनकर कन्या ढाह मार मारकर रोनी लगी। बार बार माता पिता के गले से चिपट जाती। जैसे तैसे राजा रानी ने कन्या को विदा किया। फिर वे पुत्रको राज सौंपकर तपस्या के निमित्त वनको चले गये।

इधर नारदजी ब्रह्मलोक में आकर अपनी नयी बहू के साथ आनन्द विहार करने लगे। कुछ दिन तो उन्हें बड़ा अच्छा लगा उसके प्रेम में यह भी भूल गये कब दिन होता है कब रात्रि।

किन्तु कुछ दिन के अनन्तर उनका मन दुविधा में पड़ गया। जिनको मीठा खाने का अभ्यास होता है, उन्हें कितना भी मीठा खिला दो उनकी तृप्ति ही नहीं होती, सदा मीठा खानेकी इच्छा बनी ही रहती है, किन्तु जिन्हें मीठा खाने का अभ्यास नहीं उनका चित्त तनिकसा मीठा खाने से ही भर जाता है। फिर मन उससे हट जाता है। इसी प्रकार कुछ दिन में नारदजी उस राजकुमारी के प्रेम से विरत होगये। एक दिन चुपके से अपने घर से निकल कर ब्रह्मलोक में हो एक सुन्दर सघन वट वृक्ष था, उसके नीचे चले गये और वहाँ रहकर तपस्या करने लगे। उसी समय उन्हें नंगधड़ंगे सनक, सनंदन, सनत्कुमार और सनातन ये चार महर्षि आये हुए दिखाई दिये। उनकी पाँच पाँच वर्ष की *अवस्था थी। मुख मण्डल तेज से दमक रहा था।* चारों दिगम्बर थे छोटी छोटी सुनहरी लटूरियाँ उनके कपोलों को चूम रही थी। अपने चारों बड़े भाइयों को देखकर नारदजी उठकर खड़े हो गये और उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया।

नारदजी यद्यपि एकान्त में आ गये थे, किन्तु चिन्तन उस राजकुमारी का कर रहे थे। उनके मनोगत भाव को समझकर उन चारों में से सनत्कुमार जी बोले—"नारद! अरे, यह क्या भैया! तुम कृष्ण का चिन्तन छोड़कर कामिनी का चिन्तन कर रहे हो? छिः छिः यह बड़ी लज्जा की बात है। भैया,यह स्त्रीका प्रेम ऐसी अग्नि है, कि जिस हृदय में लग जाती है फिर अनेक उपाय करने पर भी नहीं बुझती। जब कभी इच्छा भी होती है इससे पृथक् हो जायँ, तो वह रोने लगती है, उदास हो जाती है, इससे वह प्रेमाग्नि और प्रज्वलित हो उठती है। यह स्त्री ज्ञान मार्ग को रोकने की बेड़ी है बेड़ी। त्याग मार्ग के पथिक को जान बूझ कर इस बन्धन में न बँधना चाहिये। जो स्त्रीका संग करेगा,उसे स्त्रीके गर्भ मे अवश्य आना पड़ेगा। जो कृष्ण कीर्तन

और चिन्तनको छोड़कर कामिनी के फन्दे में फँस गया, वह मानो भगवान् की माया द्वारा ठगा गया। देखो, तनिक सी भूल के कारण तुम गन्धर्व हुए दासी पुत्र हुए। अब फिर उसी चक्कर में फँस गये।

रोते रोते नारदजी ने कहा—"तो मुझे आप उपाय बता दें मैं क्या करूँ?"

सनत्कुमारजी ने डाँट कर कहा—"उपाय तुम सब जानते हो। तुम तपस्या करने भारतवर्ष में चले जाओ, इस मायामयी प्रिया का परित्याग करो। जिस गंधमादन पर्वत के बदरीवन में भगवान् नर नारायण तपस्या करते हैं वही जाकर रहो। यह मैं तुम्हें दो अक्षर का परम रहस्यमय "कृष्ण" मन्त्र देता हूँ यह सभी शास्त्रों का सार है। परम गोपनीय अति रहस्य मन्त्र है निरंतर तुम इसे ही रटा करो। एकाग्र चित्त होकर स्वर सहित रटा करो।

कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण॥
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण॥

इस दो अक्षर वाले मंत्र को चाहे मन से जपो, वाणी से जपो या तालस्वर के सहित ऊँचे स्वर से कीर्तन करो। इसीमें तुम्हारा कल्याण है।"

सूतजी कहते है—"मुनियो! यह सुनकर नारद जी चारों मुनियों को साष्टाङ्ग प्रणाम किया। वे उन्हें आशीर्वाद देकर गोलोक में भगवान् के दर्शन करने चले गये। इधर नारद जी इस परम रहस्यमय दो अक्षर वाले मन्त्र को पाकर इस भारत वर्ष में आये। यहाँ आकर वे कृतमाला नदी के तट पर एक मन्दिर में गये, वहाँ उन्हें शंकर जी मिल गये।

नारदजी को देखकर भोलेनाथ खिलखिला कर हँस पड़े और उन्हें छाती से चिपटाते हुए बोले—"अहा हा ! नारदजी ! धन्यभाग आपके दर्शन हुए। संसार में वैष्णवों के दर्शन होना यह बड़े पुण्य का फल है। जिसे वैष्णव के दर्शन मिल गये, उसे मानों सब कुछ मिल गया। मुझे ज्ञात हो गया है सनत्कुमारजी ने आपको परम रहस्यमय मंत्र दिया है। यह मंत्र मुझे गोलोक में रास के समय साक्षात् श्रीकृष्ण ने दिया था। मैंने अपने पुत्र गणेश तथा कार्तिकेय को दिया। ब्रह्माजी को भी भगवान् यही मंत्र दिया था। ब्रह्माजी ने उसे धर्म को दिया। धर्म ने अपने पुत्र नारायणको दिया। ब्रह्माजी ने सनत्कुमार को भी दिया था। उन्होने तुम्हें दिया है। अब तुम आनंद से बदरीवन में जाकर इस मंत्रका जप करो। और श्रीकृष्ण का मनोहर मूर्तिका ध्यान करो।"

नारदजी ने कहा—"महाराज ! मन्त्र तो मेरे बड़े भाइयों ने बता दिया अब ध्यान की विधि आप बता दें। भगवान् का ध्यान कैसे करें।"

श्री महादेवजी बोले—"अरे, अन्य देवताओं का ध्यान चाहे कठिन भी हो, श्रीकृष्ण का ध्यान तो बड़ा सरल है। देखो, कितने भी पुरुष बैठे हों, उनमें जो सबसे सुन्दर, सबसे हँस मुख, सबसे चंचल, सबसे सजा बजा, सबसे अधिक संगीत प्रिय होगा, उसकी ओर सबका मन स्वतः ही आकर्षित हो जायगा चाहे वह नर हो अथवा नारी। इसोलिए श्रीकृष्ण की उपासना स्त्री पुरुष सभी समान रूप से करते हैं। उनमें सौन्दर्य, हास्य, चंचलता मंडनप्रियता, संगीतप्रियता तथा मनमोहकता ये गुण सबसे अधिक और सबसे उत्कृष्ट है। तुम श्रीकृष्ण का ऐसा ध्यान करना कि वे नूतन जल भरे मेघों के सदृश श्यामवर्ण के हैं। उनकी अवस्था नित्य किशोर ही बनी रहती है। वे सुन्दर चमकीले भड़कीले अति सूक्ष्म चौड़ी किनार वाले पीताम्बर को पहिने रहते

है। उनके मुखकी उपमा शरदकी सौ चन्द्रमाओंसे देना भी तुच्छ है। उनका अंग प्रत्यंग भूषणोंसे विभूषित है। उनके सर्वाङ्गमें दिव्य चंदन लगा रहता है। वक्षःस्थल पर कौस्तुभ मणि क्रीडा करती रहती है। माथेपर मोर का मुकुट धारण करते है। कठमें दिव्य मणियोंकी तथा मालती आदि अम्लान सुगंधित पुष्पोंकी माला पहिने रहते हैं। उनके मुखमडल पर निरन्तर मंद मुसकान व्याप्त रहती है। मैं तथा ब्रह्मादिक देव सदा उनकी उपासना करते रहते है। वे बड़ी कठिनतासे ध्यानमें आते हैं। वे निर्गुण हैं प्रकृतिसे परे है। परमात्मा है। और भक्तोंके ऊपर निरन्तर अनुग्रह करते रहते हैं। तुम उन्हीका जाकर ध्यान करो।"

यह सुन कर नारदजी बड़े प्रसन्न हुए और बदरी वनमें जाकर तपस्या करने लगे। "कृष्ण" इस महामंत्रका निरन्तर जप कीर्तन करते रहते। जब उन्हें भगवान्‌के अवतार लेनेका विचार ज्ञात हुआ तो ब्रजका चक्कर लगाने लगे और जब भगवान् द्वारका मे निवास करने लगे, तो द्वारकाकी धूलि छानने लगे। द्वारका जाते और फिर लौट आते। फिर न रहा जाता, फिर भगवान्‌के दर्शनोको किसी न किसी निमित्तसे पहुँच जाते। अबके वे इस उद्देश्यसे चले, कि देखें भगवान् अपनी सब स्त्रियोको कैसे सन्तुष्ट रखते है। आठ तो उनकी पट रानियाँ ही थी, फिर नरकासुरको मारकर सोलह सहस्र एक सौ इकट्ठी ही भीड़की भीड़ हाँक लाये। अब इतनी स्त्रियोंके साथ कैसे रहते होंगे। उनकी गृहचर्या क्या है। हमने ऐसा भी सुना था कि सोलह सहस्र घरोमें उन्होंने सब के साथ पृथक पृथक् बिधि पूर्वक विवाह किया था। अकेले भगवान् ने सबके साथ कैसे विवाह किया होगा और आज कल वे सबके साथ कैसा वर्ताव करते है।" यही सब सोचकर वे द्वारकाकी ओर चल दिये। अबके न तो उन्होंने वीणा वजाई

श्रौर न रुक्मिणीजीके ही घरको खोजकी। द्वारकामें प्रवेश करते ही उनकी घ्राणेन्द्रिय दिव्य सुगंधिसे भर गयी। ऐसी दिव्य सुगधि तो स्वर्गमे भी दुर्लभ है। नारदजीने वहाँ बड़े सुन्दर सुन्दर खिले हुए दिव्य पुष्पोंके श्रसंख्यों पेड़ देखे। बहुतसे फलो के भारसे नमित थे, बहुतों पर कलियाँ लग रही थी। बहुतोंकी कलियाँ खिल गयी थी। उन पर बैठे विहंग वृन्द कलरव करके दशो दिशाश्रोंको गुँजा रहे थे। मधुके लोभी मधुकर इधर उधर सुमनोके श्रास पास मँड़रा रहे थे। स्थान स्थानपर छोटे-छोटे कमलाकार कुड बने हुए थे। उनमे रंग विरंगे कमल खिले हुए थे। इन्दीवर,श्रम्भोज,कह्लार,कुमुद तथा उत्पलोकी अनेक जातियो के कमलोंसे प्रफुल्लित सरोवरोंमें हंस, सारस, जल कुक्कुट श्रादि जल पक्षी विहार कर रहे थे। उनमें रंग विरंगी मछलियाँ तैर रही थी। द्वारकापुरीमें लगभग नौ लक्ष महल थे, वे सभी सुवर्णके बने थे,उनकी दीवालों पर रत्न जड़े हुए थे। उज्वल मणियोंसे वे दमक रहे थे। बहुतसे भवन रजतके भी बने हुए थे। वे सब क्रम-बद्ध एक नियमसे थे। सबके बीचमें बड़ी बड़ी सड़कें थीं। दूर-दूर पर चौराहे थे। सड़कोसे जो गलियाँ जाती थी वे भी सकीर्ण नही थी। उन पर भी स्वच्छता थी। सुगधित जलसे वे सब नित्य छिड़की जाती थी। कुछ कुछ दूरी पर विश्राम गृह, सार्वजनिक उद्यान, सभाभवन तथा विहारस्थान बने हुए थे। बड़े बड़े विशाल देवालयोंकी ऊँची-ऊँची ध्वजायें फहराकर भगवान्के यश को वायु मंडलमे बखेर रही थी। उस विशाल नगरीमें सर्व प्रथम सुन्दर एक से सोलह सहस्र एक सौ श्राठ एक ही ढँगके भवन बने हुए थे। उन सबमें भगवान्की पत्नियाँ ही निवास करती थीं। वे सब घर समस्त सुखकी सामग्रियोंसे सम्पन्न थे। उनके बनानेमें विश्वाकर्माने श्रपनी समस्त शिल्पचातुरी लगा दी थी। इससे बढ़कर सुन्दर भवन वे बना ही नही सकते थे। नारदजी जानते ही

थे, ये सब भगवान्‌की पत्नियोंके ही घर है। उन सब पर सख्या अङ्कित थी। इसलिये नारदजी सबसे प्रथम एक सख्याके ही महलमें चुपकेसे घुस गये। नारदजी पहिले आते थे तो दन दनाते हुए भीतर घुस जाते। वीणा वजाकर भगवान्‌को भजन सुनाकर कुछ प्रसाद पाकर चले आते, किन्तु आज तो परीक्षाके निमित्त आये थे, इस लिये सभी बातोंको अत्यत ही ध्यान पूर्वक देखते। उन्होंने चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर देखा भवनके खम्भे चमकीले लाल लाल मूँगोंके बने हुए है। उनकी चौखटे लकडी या पत्थर की नहीं वैदूर्य मणिकी हैं। दीवारोमें इन्द्र नील मणि जड़ी हुई है, जिनकी कान्ति कभी भी घटती नही। नीचेकी भूमिमें भी इन्द्र नीलमणियाँ लगी है। वहाँ के पलग आसन और चौकियों के पाये हाथी दाँतके कलामय ढँगसे बने हुए है। स्थान स्थान पर मोतियोंकी झालरें लगी हुई है। चँदोवे सुन्दर स्वच्छ और विमल हैं। वहाँ स्वच्छता इतनी है, कि मक्खी भी चलनेसे रपट जाती। खोजने पर भी वहाँ कहीं भी कूड़ा करकट अथवा धूलि नहीं मिल सकती थी। वहाँके दास दासी सभी सुन्दर थे, सुशील थे स्वच्छ निर्मल वस्त्र पहिने हुए थे। सभीके कानोमे मणिमय कनक के कुंडल शोभित हो रहे थे। वे रंग विरंगे वस्त्र पहिने इधरसे उधर आते जाते ऐसे लगते थे मानों अनेक रूप रख कर सुन्दरता भवनमें नृत्य कर रही हो। उस भवनमें घृतके या तैलके दीपक नहीं जल रहे थे। रत्नमयी दीपावलीकी दमकसे वह सम्पूर्ण भवन जगमग जगमग कर रहा था। वहाँ इतना प्रकाश था, कि एक छोटीमे छोटी पड़ी सुई भी दिखाई देती थी। स्थान स्थान पर कर्पूर अगुरु और घृतसे मिली धूप जल रही थी उसका सुगन्धित धूम्र जब चक्कर काटता हुआ ऊपर जाता तो ऐसा लगता मानों बहुत से कपोत नभ में उड़ान भर रहे हों! वही धूपधूम्र झरोखों से निकल कर छतों की ओर जाता, तो छज्जों पर बैठे

हुए मयूर उसे मेघ समझकर चहकने लगते। उनका बोलना बड़ा ही प्यारा लगता। बहुतसे अपने पंखोंको फैला कर आनन्दमें विभोर होकर नृत्य करने लगते। ऐसे उस सुन्दर, सुसज्जित भवन की शोभा निहारते हुए नारदजी उसमें घुसे। उनके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा यह तो रुक्मिणीजीका ही भवन है। न जाने इसमे कितनी बार आकर भगवान्के दर्शन किये हैं, प्रसाद पाया है और वीणा बजाई है, किन्तु आज मुझे यह घर नवीनसा ही प्रतीत हो रहा है।

नारदजी यह सोचते हुए जा ही रहे थे, कि मणियोंके प्रकाश में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने नारदजीको देख लिया। उस समय भगवान् सायंकालीन व्यालू करके सुन्दर सजे हुए पलँग पर पौढ़ रहे थे। पासमें ही उनकी प्राणप्रिया रुक्मिणीजी अपने ही समान गुण, रूप, वय और वेषवाली दश सहस्र दासियोंके साथ समुपस्थित थी। स्वयं रुक्मिणीजी सुवर्णकी डंडी वाले चमरको डुला रही थी। कोई पान बना रही थी, कोई चरण दबा रही थी, कोई थूकनेके वर्तनको सम्हाल रही थी, कोई माला लटका रही थी। इस प्रकार सभी सेवामें संलग्न थी।

नारदजीको देखते ही ब्रह्मण्यदेव भगवान् वासुदेव सहसा अपने पलँगसे उठकर खड़े हो गये। दौड़ कर अपने मुकुट मण्डित मस्तक को महर्षिके चरण कमलोंमें रख दिया। विनयावनत होकर श्रद्धा सहित प्रणाम करके उन्हें प्रेमपूर्वक पकड़ कर ले गये और बल पूर्वक अपनी शय्या पर बिठा दिया और हाथ जोड़ कर उनसे कुशल प्रश्न किया। भगवान् तो नर नाट्य कर रहे है न ? जो सबके पूजनीय और आदरणीय है, वे आज नारदजीकी पूजा कर रहे हैं। जिनके चरण कमलोंके जलसे भुवनपाविनी भगवती सुरसरि प्रकटित हुई हैं, वे ही आज अपनेको पावन बनानेके लिये देवर्षिके पाद पद्मोंको पखार रहे

हैं और उस पय को परम पावन बताकर पान कर रहे है और सिर पर धारण कर रहे है मानों अपने "ब्रह्मण्यदेव" इस जगत विख्यात नाम को सार्थक कर रहे हों

चरण धोकर श्रीहरि ने नारदजी की विधिवत् पूजाकी,फिर दोनों हाथों की अञ्जली बाँध कर अमृत के सदृश मधुर और स्वल्प वाणी से उन कर्ण कुहरों को परिप्लावित करते हुए बोले- "प्रभो ! आपने इस सेवक पर बड़ी ही कृपा की मैं आपकी कौन सी सेवा करूँ ? मेरे योग्य जो सेवा हो, उसे सूचित करें।"

नारदजी को ऐसे व्यवहार की स्वप्न मे भी आशा नही थी, भगवान् इतनी नम्रता दिखावेंगे। इतना अधिक मेरा आदार करेंगे अत: वे लज्जित होकर कहने लगे—"भगवन् ! आप ऐसा क्यों न कहें, अपने अनन्याश्रित भक्तों के प्रति प्रेम प्रदर्शित करना, उनका संरक्षण करना तथा दुष्टों का दमन करना ये तो आपके सहज स्वभाव ही है। आपका नाम ब्रह्मण्यदेव है, इस लिये आप हम जैसे नाम के विप्रों का भी अत्यधिक आदर सत्कार करते है। आप इस चराचर विश्व के एक मात्र अधिपति हैं, आप विश्वम्भर हैं। आप अज है अव्यक्त है निर्गुण और निराकार है। केवल भक्तों के ऊपर अनुकम्पा करने के निमित्त इस जगत् की स्थिति, रक्षण और कल्याण के ही निमित्त आप निराकार से साकार बन गये हैं। अज होकर भी आपने जन्म धारण किया है। आप किन्ही कर्म बन्धनो के कारण अवनि पर अवतरित नही हुए अपितु स्वेच्छा पूर्वक आपने यह शरीर धारण किया है। आपका ज्ञान अगाध है,ब्रह्मादिक देव भी आपका हृदय में निरन्तर चिन्तन करते रहते हैं। इस भव कूप में पतित प्राणियों के एक मात्र अवलम्बन आप ही हैं। संसार सागर से पार लगाने वाले आपके ये पुनीत पाद पद्म ही नौका हैं। आज मुझे उन्हीं अमल चरण कमलों का साक्षात् दर्शन हुआ, अतः

मुझ से बढ़कर भाग्यशाली दूसरा कौन होगा। आप मेरे ऊपर ऐसी अनुग्रह करें, कि ये चरण कमल सदा मेरे मन मन्दिर में बसे रहें कभी मुझे इनका विस्मरण न हो। आपके चरणोंको हृदय में धारण करके चौदह भुवनों में निर्भय होकर विचरण करता रहूँ।"

भगवान् ने कहा—"नारदजी! बहुत दिनो में आप आज आये। आप तो ऐसा गोता लगा जाते हैं, कि हमें भूल ही जाते हैं। अच्छा, वीणा की कोई तान सुनाइये।"

नारदजी ने व्यग्रता के साथ कहा—"महाराज! मेरी वीणा के तार आज कुछ ढीले हो गये हैं। मुझे आज बहुत आवश्यक कार्य है क्षमा कीजिये फिर सुनाऊँगा अब तो मुझे आज्ञा ही हो।"

भगवान् ने आग्रह के साथ कहा—"अजी, ऐसे कैसे हो सकता है। अच्छा, वीणा न सुनाओ कुछ जलपान तो करते जाओ।"

नारदजी ने कहा—"अब महाराज! जल पान की इच्छा नही है। वरुणजी के यहाँ से भोजन करके अभी २ आरहा हूँ।"

भगवान् ने बात पर बल देते हुए कहा—"अजी, नहीं। ऐसा हो सकता है कि आप आवें और बिना मुँह जुठारे चले जायँ। यह तो बड़ा दोष है।" फिर रुक्मिणी जी से बोले—"तुम देखती क्या हो, शीघ्रता से जलपान ले आओ।"

यह सुनकर रुक्मिणी जी तुरन्त गयी। भीतर से तुरन्त की बनी गुलाब जामुन, गरमा गरम जलेबी और एक कटोरा मलाई दार दूध ले आयी। अब नारदजी क्या करते। म [illegible] देख कर ब्राह्मण की इच्छा न रहने [illegible] इच्छा हो [illegible] रहा ही नहीं जाता।" रुक्मि[illegible] मना कैसे सबको। फिर कुल्ला करते [illegible] र "अच्छा आज्ञा हो" यह कहकर तुर[illegible] । भ

मनोगत भावों को ताड़ गये थे, अतः वे कुछ बोले नहीं। नारद जी तुरन्त दूसरे घर में पहुँच गये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अब दूसरे भवनों में नारदजी जो कुछ देखा, उसका वर्णन मैं आगे करूँगा।"

छप्पय

तहँ देखे घन श्याम प्रिया सँग चौसर खेलत।
देखि दाव निज हँसत प्रिया कूँ कर तै ठेलत॥
नारद निरखे अतिथि कहें अनजान सरिस हरि।
करे कृतारथ देव! दये शुभदरश दया करि॥
करि पूजा मिष्ठान्न अति, अधिक खवायो पेट भरि।
तुरत तहाँ तें चलि दये, नारद दंड प्रनाम करि॥

मुझ से बढ़कर भाग्यशाली दूसरा कौन होगा। आप मेरे ऊ
ऐसी अनुग्रह करें, कि ये चरण कमल सदा मेरे मन मन्दिर
बसे रहें,कभी मुझे इनका विस्मरण न हो। आपके चरणोंको हृ
में धारण करके चौदह भुवनों में निर्भय होकर विचरण करता हूँ।

भगवान् ने कहा—"नारदजी ! बहुत दिनों में आप आ
आये। आप तो ऐसा गोता लगा जाते हैं, कि हमें भूल ही ज
है। अच्छा, वीणा की कोई तान सुनाइये।"

नारदजी ने व्यग्रता के साथ कहा—"महाराज ! मेरी वी
के तार आज कुछ ढीले हो गये हैं। मुझे आज बहुत आवश्य
कार्य है क्षमा कीजिये फिर सुनाऊँगा अब तो मुझे आज्ञा ही हो

भगवान् ने आग्रह के साथ कहा—"अजी,ऐसे कैसे हो सक
है। अच्छा, वीणा न सुनाओ कुछ जलपान तो करते जाओ।

नारदजी ने कहा—"अब महाराज ! जल पान की इ
नहीं है। वरुणजी के यहाँ से भोजन करके अभी २ आरहा हूँ

भगवान् ने बात पर बल देते हुए कहा—"अजी, न
ऐसा हो सकता है कि आप आवें और बिना मुँह जुठारे
जायँ। यह तो बड़ा दोष है।" फिर रुक्मिणी जी से बोले
"तुम देखती क्या हो, शीघ्रता से जलपान ले आओ।"

यह सुनकर रुक्मिणी जी तुरन्त गयीं। भीतर से तुरन्त
बनी गुलाब जामुन, गरमा गरम जलेबी और एक कटोरा म
दार दूध ले आयीं। अब नारदजी क्या करते। मीठे पदार्थ
कर ब्राह्मण की इच्छा न रहने पर भी इच्छा हो जाती है। र
रहा ही नहीं जाता।" रुक्मिणीजी से मना कैसे करते उड़ा
सबको। फिर कुल्ला करते हुए वीणा लेकर "अच्छा तो महा
आज्ञा हो" यह कहकर तुरन्त चल ही तो दिये। भगवान् रु

ोगत भावों को ताड़ गये थे, अतः वे कुछ बोले नहीं। नारद
तुरन्त दूसरे घर में पहुँच गये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! अब दूसरे भवनों में नारदजी
जो कुछ देखा, उसका वर्णन मैं आगे करूँगा।"

छप्पय

तहँ देखे घन श्याम प्रिया संग चौसर खेलत।
देखि दाव निज हँसत प्रिया कूँ कर तें ठेलत॥
नारद निरखे अतिथि कहें अनजान सरिस हरि।
करे कृतारथ देव ! दये शुभदरश दया करि॥
करि पूजा मिष्ठान्न अति, अधिक खवायो पेट भरि।
तुरत तहाँ तें चलि दये, नारद दंड प्रनाम करि॥

"अभी तो गरमागरम जलेबी खिलाई है। अभी पूछते हैं। कब आये ?"

नारदजी को चुप देखकर बोले—"महाराज ! बड़ी कृपा की आपने। हम लोग तो गृहस्थी के जंजाल में ऐसे फँसे हैं कि महात्माओं के दर्शन भी दुर्लभ हो गये हैं। हम जैसे सकाम गृहस्थी आप जैसे आप्तकाम महात्माओं के दर्शन कैसे प्राप्त कर सकते है ? हमारे योग्य कोई सेवा हो तो बताइये। आपकी सेवा करने से ही हमारा जीवन सफल हो सकता है।"

नारदजी ने कहा—"महाराज ! मैं तो आपके दर्शनों को आया था, आप तो न जाने कैसी बातें करने लगे।"

भगवान् शीघ्रता से बोले—"अच्छा ये सब बातें तो पीछे होंगी, आप भोजन प्रसाद की बातें कहिये ?"

नारदजी ने कहा—"अजी महाराज ! भोजन तो मैं अभी करके आया हूँ।"

भगवान् दीनता के स्वर में बोले—अजी, नारदजी ऐसा नहीं हो सकता। हम गृहस्थियों के घर से आप बिना खाये लौट जायँ, तब तो हमारी सब बात बिगड़ जायगी। देखिये मथुरा के पेड़े आये हैं, कुछ खुरचन भी है। तुम्हारी चेली सत्यभामा ने रसगुल्ले बड़े सुन्दर बनाये हैं। कुछ तो चखिये।"

नारदजी मना ही करते रहे इतनी देर में सत्यभामा जी थाल सजाकर ले ही तो आयी। नारदजी ने बहुत आनाकानी की, किन्तु भगवान् के सामने उनकी कुछ चली ही नहीं। एक एक करके सभी पेड़े रसगुल्ले खिला दिये। नारदजी ने सोचा-"यह तो बड़ी आपत्ति है। यदि ऐसा ही सोलह सहस्र एक सौ आठ घरों में आतिथ्य सत्कार हुआ। तब तो जय जय सीताराम हो जायगी। अब उन्होंने निश्चय किया छिपकर ही भगवान् की लीला देखनी चाहिए,उनके सम्मुख होने पर तो वे बिना खिलाये

छोड़ेंगे नहीं।" यह निश्चय करके वे सूक्ष्म रूप से प्रत्येक घर में जाकर भगवान् की लीलाओं को देखने लगे।

कहीं उन्होंने देखा भगवान् छोटे-छोटे बच्चों को गोदी में लेकर खिला रहे हैं। किसी के हाथ को लेकर "आटे बाटे दही चटाखे। वन फूले वनवारी फूले" कर रहे हैं। किसी के कान में "कानावाती कुर्रे कर रहे है किसी की बगल में गुलगुली करके हँसा रहे है, किसी के प्यार से चपत लगा रहे है, किसी का मुख चूम रहे हैं। किसीकी नाकको पकड़कर हिला रहे हैं। किसीके सिरमें खुटका मार रहे हैं। किसी किसी की उँगली पकड़कर पांपां पैंया चला रहे हैं। किसी की चकवी को घुमा रहे है। किसी को थपकियाँ देकर सुला रहे है। नारदजी के आश्चर्य का ठिकाना नहीं था, उनका कौतूहल बढ़ रहा था।

फिर वे उससे आगे के घर में गये, वहाँ भगवान् जलसे स्नान करने को खड़े हैं। धोती अंगोछा लिये उनकी प्रिया खड़ी है। नारदजीने देखा भगवान् पैछर सुनकर चौक पड़े। उन्हें सन्देह हुआ कि कही भगवान् ने मुझे देखतो नही लिया। इस लिये वे तुरन्त लौट पड़े और फिर उससे अगले घर में गये।

उस घर में देखा कोई बड़ा भारी यज्ञ हो रहा है, बहुत से ब्राह्मण वेद मंत्र पढ़ रहे है। अपनी पत्नी की ओढ़नी में गाँठ बांधे यजमान बने भगवान हाथ जोड़े खड़े हैं। उससे आगे के घर में देखा किसी देवपूजन की सामग्री जुटाई जा रही है। रंग-विरंगे फूलोंकी डालियाँ भरी हुई रखी हैं। नाना भाँति के नैवेद्य फल, फूल, आदि पदार्थ रखें हैं। आसन, गंध अक्षत, धूप दीप तथा अन्यान्य वस्तुएँ यथा स्थान सजाई हुई रखी है।

उससे आगे के घर में देखा भगवान् ब्राह्मणोंको स्वयं भोजन करा रहे हैं, उनसे आग्रह पूर्वक कह रहे हैं। यह पूड़ी महाराज बड़ी मृदु है, गरमागरम है, एक तो लीजिये। अच्छा तनिक

हलुआ ही लीजिये। रवड़ी तो आपने पीयी ही नहीं। यह ठीक नहीं है। देखिये खीर के पात्र को खाली कीजिये। करने का काम नहीं। भोजन रुचि के साथ करना चाहिये। चटनी चाट लीजिये, फिर मोदकोंका स्वाद देखिये। रायता पीलीजिये सब पच जायगा। पापड़ों में कुछ बोझा ही है। सोंठ में अधिक चरपरी हो, तो इसमें तनिक बूरा लीजिये फैंनीको दूध में डाल दीजिये। आप बूढ़े है घेवरों लिये दाँत की आवश्यकता नही। ये तो ओठों से भी फूट जाते अजी, पंडित जी! आपतो युवक हैं। इन बूढ़ों का साथ दीजिये। अभी से बैठ कैसे गये। अच्छा, मीठा अच्छा नहीं लग तो नुकती का रायता ही पीलें। दालमोंठ कैसी कुरकुरी है। जी यह देखकर दबे पाँव लौटना ही चाहते थे कि भगवान् आकर प्रणाम किया और बोले—"आइये, आइये नारद महाराज! आपतो समय ही पर कृपा करते हैं। स्वर्ग से आपको सुगन्धि आगयी होगी, कि आज ब्राह्मण भोजन है कहावत भी है।

> रूखी सूखी कोस दुकोसी, हलुआ पूरी बाहर।
> जो सुनि पावे मालपुआकी, धावै कोस अठारह॥

घबराकर नारदजी ने कहा—"नहीं महाराज! मुझे भोजन करना नहीं है। मेरा तो पेट कंठ तक भरा है।"

हँसकर भगवान् बोले—"हाँ, महाराज आपको (तो ऐ कहना ही चाहिये। ब्राह्मण भोजन के लिये और लड़की लड़ विवाह के लिये ऐसे ही ऊपरसे नही, नहीं, करते रहते हैं। कि समझने वाले उनकी नाहीं का अर्थ समझते है।

> 'मन मन भावै। मूड़ हिलावै।"

नारदजीने कहा—"नही, महाराज! मैं तो सत्य ही कह र हूँ। तनिक भी इच्छा नहीं है।"

भगवान् बोले—"पहिले से इच्छा थोड़े ही होती है। वस्तु के सामने आते ही इच्छा हो उठती है। पत्तल पर बैठिये तो सही, कलाकन्द की कतरियों को देखते ही इच्छा हो जायगी।" नारदजी मना करते ही रहे किन्तु मदन मोहन मानने वाले थोड़े ही थे, हाथ पकड़कर ले गये और ब्राह्मणों के बीच में बिठा दिया। उनके सामने पत्तल परस ही तो दी। नारदजी विवशता के स्वर में बोले—"महाराज! पेट फट जायगा।"

हँसते हँसते भगवान् बोले—"आपको आतापी वातापी वाला श्लोक याद नही है क्या?"

नारदजी ने खीजकर कहा—"मेरी तो स्मरण शक्ति सब कुंठित हो गयी है।"

भगवान् बोले—"मंत्र मैं पढ़ता हूँ आप पेट पर हाथ फेरें।

आतापी भक्षितो येन, वातापी च निपातितः।
समुद्रः शोपितो येन स मेऽगस्त्यः प्रसीद तु॥

नारदजीने दो चार ग्रास खाये और फिर वे भागे। अगले घर में पहुँचे तो भगवान् यज्ञशिष्टान्नका भोजन कर रहे हैं, उनकी प्रिया पंखा झल रही है और बार-बार आग्रह कर रही है—"आपको हो क्या गया, कुछ खाते ही नहीं। थालमें सब वस्तुएँ ज्यों की त्यों रखी हैं।" नारदजी खिड़की में से ही देखकर लौट पड़े। उससे सटे हुए घर में जाकर देखा भगवान् एक सुंदर आसन पर बैठे हैं, सम्मुख चांदी के पञ्चपात्र रखे हैं। सन्ध्यावन्दन कर रहे हैं आचमन करके अर्घ्य दे रहे हैं। दूसरे घरमें गये तो वहाँ गायत्री मन्त्र का एकाग्रचित्त से जप कर रहे हैं। कहीं पर देखा सुखपूर्वक शय्या पर शयन कर रहे हैं। कहीं पर देखा, सभा लगी है। बहुत से मंत्री बैठे हैं। उनसे राज्य सम्बन्धी मन्त्रणा कर रहे हैं। कहीं पर सेनापति को बुलाकर उसे अनेक प्रकार की सेना सम्बन्धी परामर्श दे रहे हैं। कहीं पर सैनिकों के संगठन

का निरीक्षण करने स्वयं हाथी घोड़ों पर चढ़कर जा रहे हैं।

किसी घर मे देखा, एकान्त में बैठकर ध्यान में मग्न हैं, प्रकृति से परे अपने ही पुराण पुरुष स्वरूप का चिन्तन कर रहे हैं। कहीं पर देखा अपने गुरुजनों को प्रणाम नमस्कार कर रहे हैं, विविध वस्तुएँ अर्पण करके उन्हें प्रसन्नकर रहे है। कहीं सुवर्ण के सींगोवाली, चाँदी के खुरों वाली, जिसकी पूँछमें मोती पिरोये गये हैं, ऐसी गौओंका ब्राह्मणों को दान कर रहे हैं। कहीं पर देखा भगवान् सुखपूर्वक अपने आसन पर विराजमान हैं, वन्दीजन उनकी स्तुति कर रहे हैं। कही बड़े बड़े सगीतज्ञ जुटे हुए हैं भगवान् उनके बीचमें बैठकर संगीत सुन रहे और सिर हिला रहे हैं। कही नेत्र बंद किये हुए सो रहे है दासियाँ व्यजन डुला रही है। कहीं भोरमें प्रातः ब्राह्म मुहूर्त में उठकर प्रातः स्मरण कर रहे हैं, कहीं शौच जाने की तैयारियाँ कर रहे हैं, कहीं दन्त धावन कर रहे है।

कही स्नान करके तिलक स्वरूप लगा रहे है। कही जलपान करके हाथ धो रहे है। कही बच्चों को पढ़ने जाने के लिये उपदेश दे रहे है, कहीं आचार्य से बच्चेके अध्ययन के सम्बन्ध में परामर्श कर रहे हैं। कही भोजन करके इतिहास पुराण सुन रहे हैं कहीं ब्राह्मणगण जो स्वस्त्ययन आशीर्वाद मन्त्र पढ़ रहे है, उन्हें नीचा सिर किये हुए श्रद्धा भक्ति के साथ श्रवण कर रहे हैं।

नारदजी ने देखा, कहीं भगवान् अपनी प्राणप्रिया के साथ ऐसी हँसी विनोदकी वातें कर रहे है, कि सरसता की मानों सरिता ही बह रही हो। कही पर घरके ही सरोवर में स्त्रियों से घिरकर जलक्रीड़ा कर रहे हैं, उनको भिगो रहे है, स्वयं उनके द्वारा भिगोये जा रहे हैं। कहीं पर आश्रितों को पारितोषिक बाँट रहे है तो कही सैनिकोंको पदक देने की तैयारियाँ कर रहे हैं कही दूर दूर देशों के दूतों से सन्धि विग्रह आदि कर रहे हैं। कहीं किसी को

ाँट फटकार कर रहे हैं।

कहीं घरका प्रवन्ध देख रहे हैं, कहीं गृहस्थ सम्बन्धी आव-यक वस्तुओंको जुटाने के लिये सेवकोंको आदेश दे रहे हैं। किसी घरमें गर्भाधान संस्कार की तैयारियाँ हो रही हैं पण्डित जन कराने के लिये बैठे हैं, सामग्री जुटाई जा रही है कहीं र्भस्थ बच्चे के सात महीने होने पर पुंसवन संस्कार हो रहा है। मुराल से ही आई हुई वस्तुओं को देख रहे है, स्त्रियाँ गीत गा रही हैं बड़ी चहल पहल हो रही है। किसी घरमें सीमन्तोन्नयन संस्कार हो रहा है गर्भिणी के बालों को बाँधा जा रहा है दान पुण्य हो रहा है। कहीं किसी घर में बच्चा पैदा हो रहा है, भगवान् नान्दी मुखादि श्राद्ध करके जातकर्म संस्कार की तैयारियाँ कर रहे हैं। कहीं किसी घर में पैदा हुए बच्चेका नाल छेदन हो रहा है। कहीं दश दिन का होने पर बच्चे का नाम संस्कार हो रहा है। पट्टे पर अपनी प्रिया के साथ गाँठ बाँधे हुए पूजन कर रहे हैं। कही पर बच्चे के कान छेदे जा रहे है, बच्चा रो रहा है, उसके मुख मे मिठाई दी जा रही है, स्त्रियाँ गीत गा रही हैं। कही ब्राह्मणो को भोजन कराके बच्चे का अन्नप्राशन संस्कार किया जा रहा है। कही मुंडन हो रहा है भगवान् सबको नेग बाँट रहे हैं।

नारदजी ने देखा कहीं मंडप बना हुआ है बच्चों का यज्ञोपवीत संस्कार हो रहा है। वे ब्रह्मचारी बने भिक्षा माँग रहे हैं, भगवान् हँस रहे हैं। कहीं आचार्य बच्चों का वेदारम्भ संस्कार करा रहे हैं, अग्नि मे आहुति देना सिखा रहे हैं। कही देखा बच्चे स्नातक होकर लौट रहे हैं, उनका समावर्तन करा कर उनके सदृश भार्या की खोज कर रहे है,कहीं पुत्र के विवाह की तैयारियाँ हो रही हैं बरात सजाई जा रही है। वर की घुड़चढ़ी हो रही है। कहीं पुत्र का विवाह होकर आया है नई बहू के मुख देखने की धूम है उसे मुँह दिखाई में सब लोग नानाभाँति के उपहार दे रहे हैं। कहीं

कन्याके विवाहकी तैयारियाँ हो रही हैं, वरातका प्रवन्ध
रहे हैं। कहीं आप स्वयं कन्या के पीले हाथ करके
रहे हैं। कहीं कन्या का विदा कर रहे हैं, वह भगवान् से
कर फूट फूट कर रो रही है। उसे समझाते हुए और
प्रेमाश्रुओ से उसकी चोटी को भिगोते हुए कह रहे हैं—"बेटी
रोते नहीं है अब शीघ्र ही तुझे बुलालेंगे। जा, बेटी जा।" कहीं
कन्या के लिये छोछक देनेकी तैयारियाँ कर रहे हैं। भेजा जाने
वाली तीहरों और सिरोपाओंको देख रहे हैं। बुरजीदार
बड़े मोदकों को देकखर प्रसन्नता प्रकट कर रहे हैं।

कहीं पर अपना जन्म दिवस मनाया जा रहा है कहीं
के जन्म नक्षत्र पर दान पुण्य हो रहा है। कहीं कोई पर्व मना
जा रहा है, कहीं नये आये हुए सम्बन्धियों से वहाँ की कु
पूछ रहे हैं। कहीं देखा भगवान् बड़े बडे यज्ञों की दीक्षा ले
हैं, कहीं महामहोत्सव कर रहे हैं। कहीं कूआ खुदाने का मु
पूछ रहे हैं, कहीं पौसला लगाने को आज्ञा दे रहे हैं। कहीं उ
लगाने को कह रहे हैं, कहीं धर्मशाला, पाठशाला, औषधालय
विद्यालय आदि बनावा रहे हैं। कहीं विद्यार्थियों की वृत्ति
प्रवन्ध कर रहे हैं, तो कहीं अध्यापकों को इष्ट वृत्ति प्रदान
रहे हैं। कहीं पर लेखकों की लिखी हुई पुस्तकों को ध्यान
सुनकर उसपर सम्मति दे रहे हैं, कहीं किसी की कविता की प्र
कर रहे हैं। कहीं किसी के नये आविष्कार को सुनकर उसपर
आश्चर्य प्रकट कर रहे हैं, कहीं किसी ऋषिमुनि से गूढ़ धर्म
सम्बन्धी प्रश्न कर रहे हैं। कहीं राजपथ बनवाने के लिये
शिल्पियों से कह रहे हैं, कहीं वृक्ष लगवाने के लिये आदेश दे
रहे हैं। कहीं किसी मठ मंदिर में मासिक वार्षिक वृत्ति लगाने
के लिये मंत्रियों को सम्मति दे रहे हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! कहाँ तक गिनाऊँ। नारदजी जहाँ भी गये वहीं वहीं भगवान् को कोई न कोई नया काम ते ही पाया। जहाँ भी भेंट हो जाती पूछते "कब आये ?" भोजन के लिये आग्रह करते। नारदजी एक इलायची उठा और भग जाते। उन्हें भगवान् की लीला देखते देखते तृप्ति नहीं होती थी अतः वे सोलह सहस्र एक सौ आठ महलों में गये। अब उन सब का वर्णन करूँ तो कथा प्रसङ्ग बढ़ ायगा, अतः मैंने अत्यंत संक्षेप में संकेत से उनकी गृहचर्या ा वर्णन किया। अब भगवान् ने जैसे उनपर कृपा की। जैसे देश उपदेश दिया उसका वर्णन मैं आगे करूँगा।"

छप्पय

खाइ भगे ऋषि तुरत न अब फिरि सम्मुख आवें।
लखि चुपके हरि कृत्य अपर घर महँ भगि जावें॥
कहूँ निहारें न्हात खात कहुँ हवन करत हैं।
कहूँ प्रियनि सँग हँसें कहूँ द्विज चरन परत है॥
कहूँ करहिं सन्ध्या हवन, कहूँ दान व्रत नियम जप।
कहूँ श्राद्ध तर्पन क्रिया, कहूँ वेदविधि यज्ञ तप॥

भगवत्कृपासे नारदजी की उत्सुकता शान्त

(११३८)

एवं मनुष्यपदवीमनुवर्तमानो-
नारायणोऽखिलभवाय गृहीतशक्तिः ।
रेमेऽङ्ग षोडश सहस्र वराङ्गनानाम्,
सव्रीडसौहृद निरीक्षणहासजुष्टः ॥*
(श्री भा० १० स्क० ६९ अ० ४४ श्लो०)

छप्पय

हरि कहुँ गर्भाधान आदि संस्कार करावें।
जातकर्म पुंसवन कहूँ शिशु नाम धरावें ॥
कहुँ मुंडन उपनयन कहूँ पै व्याह रचावें ।
कहुँ पुत्रिनि करि विदा पतिव्रत पाठ पढ़ावें ॥
घर घर महँ नटवर लखे, नर लीला विधिवत् करत ।
नारद अति विस्मय सहित,इत तैं उत छिपि छिपि फिरत ॥

विज्ञ पुरुष जान बूझकर अपने ऊपर संदेह करने वाले को अवसर देते हैं। उसके सामने ऐसे अनाड़ी बने रहते हैं, मानों उसके मनोगत भावों से ये सर्वथा अपरिचित हैं। जब अवसर

*श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! इस प्रकार जिन श्रीमन्नारायण ने जगत् के कल्याण के ही निमित्त अपनी योगमाया शक्ति को स्वीकार किया है, वे मनुष्य लीला का अनुकरण करते हुए तथा सोलह सहस्र सुन्दरियों के लज्जापूर्वक प्रणय कटाक्षों और मधुर मुसकान द्वारा सत्कृत होते हुए उनके साथ रमण किया करते थे ।"

ते हैं, तो उसके सम्मुख खुल जाते हैं और वस्तुस्थिति उसके गे रख देते हैं, जिससे उसका सन्देह दूर हो जाता है। फिर नों ही हँसकर हृदय खोलकर बातें करते है। इससे प्रेम की द्धि होती है श्रद्धा विश्वास और दृढ़ हो जाता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! नारदजी बड़ी उत्सुकता से गवान् की लीलाओं को देख रहे हैं। अन्तःपुर में ही अनेक रूप रखकर केशव क्रीड़ा करते हों, सो बात नहीं। वे नगर में और नगर के बाहर भी अनेक रूपों से व्यवहार कर रहे थे। कहीं घोड़े पर चढ़कर मृगया के निमित्त जा रहे थे। तो कहीं राजसभा की ओर ही रथ पर चढकर जा रहे हैं नारदजी इस प्रकार घूम घूम कर इधर से उधर देख ही रहे थे, कि इतने में ही उन्हें नथ पहिने घूँघट मारे छम्म छम्म करती हुई एक सुन्दरी दिखाई दी। वह बारबार घूँघट की ओट से नारदजी को अनुराग भरी दृष्टि से देखती जाती थी। नारदजी पहिले तो उसे देखकर सहम गये,यह कौन इतनी सुन्दरी स्त्री इधर से उधर अकेली अँधेरे में घूम रहा है। किन्तु जब देखा इसकी दृष्टि में विशेष मोहकता है, तो उनसे रहा नहीं गया। वे उसके समीप पहुँच गये। यह देखकर वह स्त्री हँस पड़ी।

नारदजी के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा, वह सुन्दरी बनावटी है, वह स्त्री नहीं पुरुष है। उसने बनावटी नथ पहिन रखी है। वे तो श्यामसुन्दर ही स्त्री बने हुए है। नारदजी ने चौंककर कहा—"महाराज ! यह क्या आप लोग से लुगाई क्यों बन गये। पुरुषों के लिये स्त्री का वेष बनाना तो निषेध है।"

हँसकर भगवान् बोले—"मेरे लिये कुछ विधि निषेध नहीं।"

नारदजी ने कहा—"न सही विधि निषेध फिर भी आपने यह कपट वेष क्यों बनाया ?"

भगवान् ने कहा—"शासक को सब की रेख देख
चाहिये। वेप बदल कर सब के मनोगत भावों से

जाना चाहिये कौन क्या चाहता है। प्रजा के लोगों के क्या भा
हैं। मेरे अन्तःपुर में रहने वाले स्त्री पुरुषों के मनोगत भाव क्य

हैं, इन सब बातों को जानने के निमित्त मैं अनेक प्रकारके रूप रख कर घूमता रहता हूँ।"

नारदजी ने कहा—"धन्य है प्रभो! मेरे मन में बड़ी उत्सुकता थी, कि आप सोलह सहस्र एक सौ आठ रानियों को कैसे सन्तुष्ट रखते होंगे, मेरी वह उत्सुकता आप की ही कृपासे शान्त हो गयी। हे योगेश्वर! मैं जानता हूँ, आप की माया का जानना सरल नही। जो माया के पति कहे जाते है। ऐसे ब्रह्मादि देवों के लिये भी आपकी मायाको जानलेना अत्यत कठिन हो जाता है, फिर मुझ जैसे अल्पज्ञों की तो बात ही क्या? किन्तु उसी मायाका मैंने आज आपकी अनुकम्पा से दर्शन कर लिया। आज मैं कृतार्थ हो गया। मेरा समस्त भ्रम भाग गया। अब मैं आप से एक आशीर्वाद की भिक्षा चाहता हूँ।"

भगवान् बोले—"वह क्या? तुम सकोच छोड़कर मुझसे माँग लो।"

नारदजी बोले—"हे देव! मैंने आपकी भुवन मोहिनी माया के दर्शन किये। मेरी उत्सुकता मिट गयी। अब आप मुझे ऐसा आशीर्वाद दें, कि आपकी सुन्दर यश से पूर्ण लीलाओ में मेरा अनुराग हो और उनका निरन्तर गायन करता हुआ निर्भय होकर सभी लोकों में विचरूँ?"

भगवान् ने कहा–"अच्छा, ऐसा ही होगा तुम वीणा के तान पर सदा मेरे गुण गान करते हुए विचरा करोगे। अच्छा और कुछ पूछना है?"

नारदजी ने कहा–"महाराज! मुझे यह शंका हो रही है, कि आप अखिल ब्रह्माण्ड नायक होकर भी ऐसी अद्भुत अद्भुत लीलायें क्यों करते रहते हैं? साधारण गृहस्थियों के सदृश व्यवहार क्यों करते है?"

भगवान् हँसकर बोले—"ब्रह्मन्! देखिये, मै ही धर्म का

प्रयर्तक हूँ। उसे कहने वाला भी मैं ही हूँ, उसका अनुमो
कर्ता भी मैं ही हूँ। संसार में सर्व श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचर
करते हैं। अन्य लोग उसी का अनुकरण करते हैं। मैं यदि ध
का आचरण न करूँ धर्म की मर्यादा न वाँधूँ, तो यह लोक ध
हीन होकर नष्ट हो जाय। इसीलिये मैं धर्म मार्ग की शिक्षा
के निमित्त ये सब व्यावहारिक कर्म करता हूँ।"

नारदजी बोले—"महाराज ! मुझे तो एक शरीर से इ
कृत्य करते देखकर बड़ा मोह सा हो गया।"

हँसकर भगवान् बोले—"बेटा ! इसमें चिन्ता करने की
कोई बात नहीं। मैं तो सर्वात्मा हूँ, सब अन्तःकरण में सा
रूप से रहकर मैं ही तो सब करा रहा हूँ। मुझे सर्वगत सब
न्तर्यामी जानकर तुम मेरी योग माया के प्रभाव से मोहित
हो जाओ।"

सूतजी कहते है—"मुनियो ! इस प्रकार जब नारदजी ने ए
ही श्यामसुन्दर को सभी घरों में पृथक पृथक सद्गृहस्थ के ध
का आचरण करते पाया, तो प्रथम तो वे बड़े विस्मित हुए
अनन्तवीर्य भगवान् वासुदेवकी योगमाया का वैभव वारम्ब
निहार कर कौतुक वश इधर से उधर घूमते रहे, फिर जब उन्हें
उपदेश दिया तो उनका विस्मय तथा कौतुक दूर हुआ। मुनियो
जो भगवान् चतुर्वर्ग के दाता हैं, फिर भी गृहस्थ धर्म का ना
करने से जिनकी त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, और काम) में प
आस्था है, वे श्रीहरि नारदजी से परम सन्तुष्ट हुए। नारदजी
प्रणाम करने पर भगवान् ने उनका सम्मान किया। इस प्रका
भगवान् से सम्मानित तथा पूजित होकर प्रसन्न चित्त से उन
का स्मरण करते हुए इच्छानुसार लोकों में चले गये।"

इस प्रकार महर्षियो ! भगवान् मनुष्य लीला का अनुकर
करते हुए सोलह सहस्र एक सौ आठ रानियों के साथ अकेले ह

रमण करने लगे।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो ! यह मैंने अत्यंत संक्षेप में उन भगवान् अजित की यह कथा कह दी जो विश्वकी उत्पत्ति,स्थिति और प्रलयके एक मात्र कारण हैं। जो अचिन्त्य कर्मा हैं, उनके इस परम पावन उपाख्यान को जो सुनेगे सुनावेंगे। पढ़ेंगे पढ़ावेंगे गायेंगे गवायेंगे स्वयं अनुमोदन करेंगे दूसरोंसे करावेंगे। उन सबको गोक्षपति भगवान् विश्वम्भर अपनी भक्ति प्रदान करेंगे। मुनियो ! अब आप और क्या सुनना चाहते है।"

शौनकजी बोले—"सूतजी ! हमें भगवान् की नित्यचर्या सुनाइये !"

सूतजी बोले—"अच्छी बात है महाराज ! सुनिये !"

छप्पय

इतने महँ इक नारि लखी अतिशय सुकुमारी।
रुनुभुनु रुनुभुनु करतफिरत ऋपि दौरि निहारी ॥
कहँ पैर परि प्रभो ! नारि च्यौं रूप बनायो।
हरि हँसि बोले—"पुत्र तोइ निज खेल दिखायो ॥
बेटा ! रक्षा धरम की, सहित योग माया करूँ।
र दनि को शोक भय, भ्रम माया सबई हरूँ ॥

—*—

भगवान्‌की दिनचर्या

(११३६)

ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय वार्युपस्पृश्य माधवः ।
दध्यौ प्रसन्नकरण आत्मानं तमसः परम् ॥
(श्रीभा० १० स्क० ७० अ० ४ श्लो०)

छप्पय

यों नारद हरि चरित निरखि ह्वै मुदित गये पुनि ।
अब दिनचर्या कृष्णचन्द्रकी शौनक मुनि सुनि ॥
हरि अति तरकें उठें धोइ मुख ध्यान लगावें ।
न्हावें सन्ध्या हवन करें पुनि धेनु मँगावें ॥
पितर, देव, द्विज पूजि कें, करें दान बहु धेनु नित ।
जाइँ सुधरमा सभा महँ, रथ चढ़ि उद्धवके सहित ॥

जिसके सम्बन्धमें जानना हो उसकी दिनचर्याको देखले। उसका समय किन किन कामोंमें बीतता है। विद्वान् पुरुष काव्य शास्त्रके विनोदमें समय बिताते हैं। जो संसारी लोग हैं, उनका समय व्यसनोंमें तथा परस्परकी कलहमें बीतता है। धर्मात्मा गृहस्थी लोग अपने समयको धर्म अर्थ और काम इस प्रकार

---

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र नित्य ब्राह्म मुहूर्तमें उठते थे, उठकर हाथ पैर धोकर आचमन करके, स्वस्थेन्द्रिय होकर मायासे प्रतीत अपने आत्मस्वरूपका चिन्तन करते थे।"

ान कामों में नियम पूर्वक बिताते हैं। दिन में वे धर्म और अर्थ ा चिन्तन करते है और रात्रि में काम सम्बन्धी सुखों का पभोग करते है। उनका सब कामों का सब समय बँधा रहता , वे असमय में कोई काम नही करते।

सूतजी कहते है—"मुनियो! भगवान् की गृहचर्या सुनने के नन्त आपने मुझ से उनकी दिनचर्या के सम्बन्ध में प्रश्न किया उसका वर्णन मैं करता हूँ। मुनिवर! जिस समय सूर्य के प्रथम उदय होते हुए दर्शन होते है, उसे सूर्योदय समय कहते है। उनके तीन चार घड़ी पूर्व जब आकाश लाल हो जाता है, उसे अरुणोदय काल कहते हैं। सूर्य के सारथी, अरुण प्रथम उदित होते हैं, तदनन्तर सूर्यदेव के दर्शन होते है। अरुणोदय काल को ही ब्राह्ममुहूर्त भी कहते है। उसीका नाम उषाकाल है। उस समय बड़ी मीठी २ नींद आती है। उस समय सूर्य मण्डल से अमृत स्राव होता है, इसीलिये उस समय की वायु स्वास्थ्य के लिये परमहितकर होती है। विषयी लोग उस समय को सो कर बिताते हैं। योगी जन उस समय में ब्रह्मका ध्यान करते हैं और कर्मकाण्डी उस समय में स्नान करके सन्ध्या वन्दन, देवता, ऋषि और पितरों का तर्पण करते है। सूर्यदेव का उपस्थान करते हैं और अग्नि में हवन करके देवताओं को सन्तुष्ट करते हैं, उस समय को जो सो कर बिताते हैं, वे मानों अपने बहु मूल्य धन को चमकीले काँच के टुकड़े के मूल्य में बेच देते हैं। उस समय की मीठी निद्रा प्राणियों को लुभाने के लिये आती है अतः बुद्धिमान् पुरुषों को उस समय भूलकर भी न सोना चाहिये। कुक्कुट उस समय में उठकर बोलता है, मानो वह इस बात की सूचना देता है, कि अब सोने का समय नहीं है। जो कुक्कुट की वाणी को सुनकर भी सोता रहता है उसकी कान्ति नष्ट हो जाती है और वह कान्ति हीन हो जाता है।

कुक्कुट के बोलते ही भगवान् तुरन्त उठ पड़ते। ...
उनकी रुक्मिणी आदि प्रियतमाओं को बुरी लगती। वे ...
के वियोग का स्मरण करके तिलमिला उठतीं और उन कुक्कु
को बुरा भला कहतीं—"निपूते अभी से बोलने लगे। इन्हें
में नींद भी नहीं आती। हमारा वश चले तो द्वारका में एक
कुक्कुट को न रहने दें। जो सोने का समय होता है उसी में
'कुक्कू कू कुक्कू कू' करने लगते हैं।" कुक्कुटों के बोलते ही पारिज
आदि वृक्षों पर बैठे हुए विहंग वृन्द कलरव करते हुए कू
लगते। शुक, पिक, केकी तथा अन्यान्य पक्षिगण अपनी ...
वाणी से भगवान् का गुणगान करने लगते। मानों ...
बन्दी भगवान् की विरुदावली का बखान कर रहे हों। उस
समय अमृतवह पवन कल्प वृक्ष के सुमनों की सुन्दर सुगन्
लिये हुए बहने लगते। भ्रमरवृन्द गुन गुन करके गूँजते हु
पुष्पों के चरों ओर चक्कर काटने लगते। पक्षियों के शावक च
चहाकर शान्त वातावरण को शब्दमय बना देते। ऐसे सुख
समय को देखकर सभी सुखी होते, किन्तु यदुनन्दन की प्रियतमा
प्राणवल्लभ के पृथक् होने के भय से उस सुखद समयकी भी निन्
करने लगतीं। वे चाहती थीं भगवान् अभी न उठें, किन्तु भगवा
तो अपने नियम के बड़े पक्के थे। वे लाख बार आग्रह करने प
भी ब्राह्म मुहूर्त में शयन नहीं करते। तुरन्त उठकर प्रथम क
दर्शन करते फिर हाथ पैर धोते शीतल जल से चक्षुओं को धोते
अंगोछे से हाथ पैर मुख को पोंछते। फिर बैठकर प्रातः स्मर
करते। पृथिवी से प्रार्थना करते।

समुद्रवसने देवि! पर्वतस्तन मण्डले।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥

हे विष्णु पत्नि! यह समुद्र ही तुम्हारा नीला वस्त्र है
पर्वत ही आपके स्तन मण्डल हैं। मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ

तुम्हारे ऊपर जो मैं पैर रखूँ उसे तुम क्षमा कर देना भला।" इस प्रकार प्रातःस्मरण करके वे सावधान होकर स्वस्थ चित्त से अपने ही मायातीत, अखण्ड, स्वयं प्रकाश, अद्वितीय, अविनाशी नित्य, निर्मल, जगत् के कारणभूत, सर्व शक्तियुक्त, सदानन्द स्वरूप ब्रह्मस्वरूप का चिन्तन करते। फिर शौचादि कर्मों से निवृत्त होकर सुन्दर, स्वच्छ, सुगन्धित शीतल सलिल से सुख पूर्वक स्नान करते। फिर बहुमूल्य रेशमी पीताम्बर पहिनकर सन्ध्या वन्दनादि कर्म करते। तन्दनन्तर अग्निहोत्र करके मौन होकर वेदमाता गायत्री का जप करते, तब तक सूर्य उदय हो जाते तो उन्हें अर्ध्य देते प्रणाम करते।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! सूर्य को अर्घ्य तो सन्ध्या के समय ही दिया जाता है, अग्हिोत्र करके भगवान् पीछे गायत्री जप और सूर्य अर्घ्य क्यों देते?"

सूतजी बोले—"हाँ, महाराज विधान तो ऐसा ही है। संध्या के समय ही, उपस्थान, अर्घ्य और गायत्री आवाहन जप आदि करते हैं, तदनन्तर अग्निहोत्र करते हैं, किन्तु भगवान् कण्व शाखा के थे। इस शाखा वाले सूर्योदय काल में ही अर्घ्य देना उत्तम मानते हैं। अतः अग्निहोत्र करके भगवान् सूर्योदय तक गायत्री जप करते रहते। सूर्योदय होते ही अर्घ्य देकर प्रातः कृत्यको समाप्त करते। फिर अपने ही अंशभूत देवता, पितर तथा ऋषियों का विधिपूर्वक तर्पण करते। तदन्तर अपने माता पिता अन्यान्य गुरुजनों तथा ब्राह्मणों का सविधि पूजन करते उन्हें प्रणाम करते। जिन ब्राह्मणों की वृत्ति बँधी हुई थी, वे सब आजाते, उन्हें वस्त्राभूषणों से अलंकृत करके रेशमी वस्त्र, मृगचर्म, तिलके लड्डू तथा गौओं का दान करते। यह बात नहीं कि गौएँ बूढ़ी टेढ़ी मरखनी दे देते हों। तुरन्त की ब्यायी हुई, पहलौन अत्यंत सीधी, दूध देने वाली बछड़े के सहित देते थे। उनके सींग

सोनेसे मढ़े रहते थे। खुर चांदीसे और गले में मोतियोंकी मा
पड़ी रहती थीं। उनकी पीठपर सुन्दर रेशमी वस्त्रकी झूल
थीं। ऐसी एक वद्व कपिला गौएँ भगवान् नित्य दान करते थे

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! वद्व संख्या का क्या
होगा। कितने का एक वद्व होता है ?"

सूतजी बोले—"महाराज ! चौदह लाख के एक सौ
भाग का नाम एक वद्व है। अर्थात् चौदह लाख को एक सौ
से भाग दे दो उससे जो संख्या निकले (१३०८४) इसी को
कहते हैं। भगवान् इतनी गौएँ नित्य दान करते थे।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! इतनी गौएँ नित्य कहाँ
आती होगी, कहाँ समाती होंगी। कितने काल में भगवान् दान
करते होगे ? यह तो आश्चर्य कीसी बात है ?"

सूतजी वोले—"महाराज ! अब कलियुग आगया है, इस
लिये हमें आश्चर्य होता है। नहीं तो आश्चय की कोई बात
नहीं। जिनके पलक मारते ब्रह्माण्ड बनते और बिगड़ते रहते हैं,
उनके लिये असंभव कुछ भी नहीं। एक साथ भिन्न भिन्न गोत्रों
के ब्राह्मणों को साथ ही संकल्प पढ़कर दान कर देते थे। गौ
ब्राह्मणों की रक्षा के हेतु ही तो उनका अवतार होता है।"

शौनकजी बोले—"हाँ, सूतजी ! सत्य है। अच्छा आ
कहिये, फिर भगवान् क्या करते थे ?"

सूतजी वोले—"भगवान् ! गौ दान करनेके अनन्तर भगवान्
गौ, ब्राह्मण, देवता, कुलवृद्ध तथा अन्यान्य गुरुजनों तथा समस्त
प्राणियों को श्रद्धा सहित प्रणाम करते थे। तदनन्तर कपिला गौ
तथा अन्यान्य शुभ वस्तुओं का स्पर्श करते। फिर पूजा के वस्त्र
उतार कर पहिनने योग्य दिव्य नूतन राजसी वस्त्र पहिनते। सभी
अंगों में सुवर्ण तथा मणियों के आभूषण धारण करते। फिर
सुन्दर गौ के घृत में मुख देखकर उस घृत को दान कर देते।

सेवक दर्पण सम्मुख रखते उसमें अपने त्रिभुवन मोहन श्रीमुखको देखते। धर्म रूप शुभ्र सांडके,धेनुके,ब्राह्मण तथा देवताओंके पुनः दर्शन करते हुए अपनी रानियोंके अन्तःपुरमें जाते। वहाँ रहनेवाले दास दासियों, तथा अन्यान्य विद्योपजीवियोंको पारितोषिक देकर सन्तुष्ट करते। प्रसाद पाते, सुन्दर सुगन्धित मालाओंको धारण करते। प्रियायें सुन्दर सुन्दर लौंग, इलायची, जायफल, कत्था, चूना और सुपारी आदि डाल कर पान लगातीं। उसे सुवर्ण के पत्रमें लपेट कर लातीं। भगवान् उन पानोंको प्रथम ब्राह्मणोंको, इष्ट मित्रोंको, मन्त्रियोंको तथा अपनी प्रियाओंको अपने कर कमलोंसे देते। तदनन्तर आप भी स्वीकार करते। पान खाकर तनिक देर वायें करवटसे लेटते।

इतनेमें ही दारुक रथ सजाकर ले आता। वह रथ सुवर्णसे मढ़ा रहता था। गरुड़की ऊँची ध्वजा उसपर फहराती रहती थी, शैव सुग्रीवादि सफेद रँगके चार घोड़े उसमे जुते रहते थे। रथको खड़ा करके सारथी आकर भगवान्को प्रणाम करता। सारथीको देखकर भगवान् हँस जाते और तुरन्त पलँगसे उठकर खड़े हो जाते। तुरन्त ही सात्यकि उद्धव आदि अंग रक्षक तथा आत्मसचिव आकर उन्हें घेर लेते। आप हँसते हुए सारथीके हाथको अपने हाथसे पकड़ कर इधर उधर देखते हुए रथके समीप जाते। दासियों सहित रानियाँ उन्हें द्वार तक पहुँचाने आतीं स्त्रियाँ उन्हें लज्जाके सहित प्रणय कटाक्षों द्वारा सतृष्ण दृष्टिसे निहारतीं। उन्हे सभामें जानेके समयका वियोग असह्य हो जाता। जब तक रथ दीखता रहता, तब तक वे खड़ी रहतीं। जब रथ आँखोसे ओझल हो जाता तब उदास होकर लौट आतीं। भगवान् जाते समय हँस जाते, उनकी हँसी प्रियाओंके हृदयमे चुभ जाती जिससे वे भूलीसी खोईसी बनी श्यामसुन्दरका ही सभासे लौटते समय तक चिन्तन करती रहतीं।

समस्त यादव सुधर्मा सभाके द्वार पर खड़े भगवान्की प्रतीक्षा करते रहते। भगवान्के रथकी ध्वजाको देखते ही सब जय जयकार करने लगते। सबकी ओर कृपा भरी दृष्टिसे देखते हुए भगवान् रथसे उतरते और अपने बन्धु बान्धव समस्त यादवोंसे घिर कर उस सुधर्मा सभामें प्रवेश करते जिसमें प्रवेश करनेवालेको क्षुधा, पिपास, शोक, मोह, जरा और मृत्यु ये छै ऊर्मियाँ कष्ट नही देती थीं।

उस सभामें सबके पृथक् पृथक् आसन लगे रहते थे। एक सुन्दर सुसज्जित मणिमय राजसिंहासन पर उग्रसेनके नीचे भगवान् विराजते। उनके चारों ओर छोटे बड़ेके क्रमसे और भी असंख्यों यादव विराजते। उन सबके बीचमें भगवान् अपनी कान्तिसे दशों दिशाओंको प्रकाशित करते हुए ऐसे शोभायमान होते थे मानो नक्षत्रोंसे घिरे चन्द्रदेव प्रकाशित हो रहे हों। प्रथम कुछ राजकाजकी बातें होती, फिर कुछ मनोरंजन का भी कार्यक्रम रखा जाता। सभा सचिव उप मंत्रीगण कुछ हँसी विनोदकी बातें करते। वे हास्य रस पूर्ण बातोंसे कुशलता पूर्वक श्यामसुन्दरकी उपासना करते। सूत, मागध वन्दी जन आकर स्तुति पाठ करते। नट, नर्तकियाँ आ कर मृदङ्ग, वीणा, मुरज तथा बाँसुरी आदि बजा कर नाच कर तथा गाकर अपनी कला दिखाते। फिर वेदज्ञ ब्राह्मण ऋचाओं और सूत्रोंकी व्याख्या करते इतिहास पुराणोंकी कथा सुनते, पूर्वकालीन पवित्र कीर्ति पुण्य श्लोक राजाओंके चरित्र सुनते। इस प्रकार मध्यान्होत्तर तक सभाका कार्य क्रम चलता।

सभा समाप्त होने पर भगवान् रथमें बैठ कर पुनः अपने अन्तःपुरकी ओर चल देते। बहुत देर पहिलेसे ही ऊँचे स्थानों पर खड़ी हुई रानियाँ भगवान्के आनेकी बाट जोहती रहती जहाँ, उन्हे गरुड़के चिन्हसे चिह्नित विशाल ध्वजा दिखाई दे

वहाँ उनके मुरझाये हुए हृदय कमलकी कलियाँ स्वतः ही खिल जातीं। वे उत्सुकता पूर्वक नीचे उतर कर भगवान्के स्वागतके लिये आगे बढ़तीं। रथ पर आते हुए तो भगवान् एक ही दीखते। रथसे उतरते ही वे सबके घरोंमें उतने ही रूपोंसे साथ ही प्रवेश करते। सभी समझतीं सभासे भगवान् मेरे ही घरमें आये हैं। वहाँ वे मधुर वाणी और प्रणय कटाक्ष युक्त चितवनसे उनका स्वागत करती। भगवान् घरमें प्रवेश करते, तो उनके चरणोंको रानियाँ पखारती। भगवान् वस्त्र बदलते, तव कुछ जलपान लाकर उनके सम्मुख रखती। भगवान् बच्चोंको बाँट कर कुछ जलपान करते। फिर सायंकालीन कर्मोंसे निवृत्त होकर स्नान सन्ध्यावन्दन और सायंकालीन अग्निहोत्र करते। तव तक सायं-कालीन व्यालूका समय हो जाता। पूजा आदिसे निवृत्त होकर व्यालू करते। व्यालू करनेके अनंतर सौ पैर इधर उधर टहलते। फिर कुछ देर इतिहास पुराण सुनते। प्रियाओंसे बातें करते। फिर पूर्वकी ओर सिर करके सुन्दर सुखद मृदुल शैया पर शयन करते। सोते समय अगस्त, विष्णु, मुचुकुन्द, कपिल और आस्तीक मुनि इन पाँचो का स्मरण करते। क्योंकि ये पाँचों सुख पूर्वक सोने वाले है। सोते समय चोर न आजायँ, इस लिये वे इस मंत्रको पढ़ कर सोते थे।

> तिस्रो भार्याः कफल्लस्य दाहिनी मोहिनी सती।
> तासां स्मरण मात्रेण चौरो गच्छति निष्फलः॥
> कफल्लम्! कफल्लम्! कफल्लम्!

अर्थात् चौर विद्याके आचार्य कफल्ल मुनिकी दाहिनी मोहिनी और सती ये तीन स्त्रियाँ थीं। कफल्ल मुनि चौर विद्याका प्रचार करते थे। चोरी करनेकी शिक्षा देते थे। उनकी स्त्रियाँ उनके

इस कामसे असंतुष्ट थीं। वे मुनिको मना करती थीं, कि ग्राप मुनि होकर यह क्या चोरीकी विद्याका प्रचार करते हो।

मुनिने कहा—"मैं तो इस विद्याका ग्राचार्य ही हूँ।"

स्त्रियोंने कहा—"ग्राप भले ही ग्राचार्य हों किन्तु चोरीकी शिक्षा देकर ग्रापको लोगोंको भयभीत करना उचित नहीं।"

तब मुनिने कहा—"ग्रच्छी बात है,मैं यह नियम किये देता हूँ कि सोते समय जो तुम तीनोंका स्मरण करेगा ग्रौर तीन बार कफल्लम्, कफल्लम् कफल्लम् इन शब्दोंका उच्चारण करेगा,उसके यहाँ पहिले तो चोर ग्रावेगे ही नही। यदि ग्रावेंगे भी तो निष्फल लौट कर चले जायँगे।"

भगवान् तो कफल्लक मुनिके चेले ही थे। व्रजमें माखन मिश्री दूध दहीकी चोरी करते थे। ग्रब द्वारकामें ग्राकर उनको भी भय लग गया, कि कहीं हमारे यहाँ चोर न ग्राजायँ इसी लिये सोते समय कफल्ल मुनिकी तीनों स्त्रियों का स्मरण कर लिया करते थे।

सूतजी कहते हैं–"मुनियो! इस प्रकार हमारे श्यामसुन्दर ग्रपनी सोलह सहस्र रानियोंके साथ सुख पूर्वक रहकर समय विताते थे। बाहरसे जो लोग ग्राते, उनसे राजसभामें ही मिलते थे। ग्रन्तःपुरमें तो रानियोंका या घनिष्ट सम्बन्धियोंका ही प्रवेश होता था। भगवान् ब्रह्मण्यदेव हैं। शरणागत वत्सल हैं, यह ख्याति सर्वत्र फैल गई थी, ग्रतः दीन दुखी ग्राते ग्रपने दुःख सुनाते। सन्देश भेजते। नरकासुरके कारावासमें बन्दनी बनी राजकुमारियोंको छुड़ा कर तो भगवान्ने उन सबके

राजाओं को अपना अनन्य भक्त बनाया उस प्रसङ्ग को मैं आगे कहूँगा। आप समाहित चित्त से श्रवण करें।"

छप्पय

सिंहासन अति सुखद नृपतिके निकट विराजे।
जनु यादव नक्षत्र मध्य शशि सम हरि भ्राजे॥
इक दिन बैठे सभा माहिँ तहँ नर इक आयो।
जरासन्ध तैं दुखित नृपति सन्देश सुनायो॥
शरनागत रक्षक विभो, बन्दी हम खलने करे।
प्रभु अनाथके नाथ हैं, कारागृह महँ हम परे॥

जरासन्ध के बन्दी राजाओं का सन्देश

(११४०)

यो वै त्वया द्विनवकृत्व उदात्तचक्र–
भग्नो मृधे खलु भवन्तमनन्तवीर्यम् ।
जित्वा नृलोकनिरतं सकृदूढदर्पो–
युष्मत्प्रजा रुजति नोऽजित तद्विधेहि ॥

(श्री भा० १० स्क० ७० अ० ३० श्लोक)

छप्पय

भक्तवछल भगवान् सबनि की विपदा टारो।
फँसे फंद महँ प्रभो ! कृपा करि हमें उबारो ॥
भयो दूत कहि मौन तबहिँ नारद मुनि आये।
करि स्वागत सत्कार श्याम मुनि निकट बिठाये॥
बोले मुनि—"करुनायतन ! धर्मराज दरशन चहत।
राजसूय मख करन हित, लग्यो चित्त तिनको सतत ॥

---

* जरासन्ध के यहाँ बन्दी बने राजा दूत द्वारा भगवान् से सन्दे भेजते हुए निवेदन करते हैं—"हे उदात्तचक्र ! आपसे जिस जरास ने अठारह बार युद्ध किया था। सत्रह बार तो आपने उसके दर्प नाश किया। किन्तु एक बार नर लीला में निरत आप अनन्तवीर्य उसने जीत लिया, इससे उसका गर्व अत्यधिक बढ़ गया। अब आप प्रजा रूप जो हम सब राजा हैं, उन्हें यह अत्यन्त कष्ट देता है। अजित ! अब आप जो भी उचित समझें वही करें।

फलवान् वृक्ष के ही निकट फल की इच्छा से सब जाते हैं जिनसे सहायता की आशा होती है, उन्हीं के पास सब सहायता माँगने जाते हैं। जिस कूए में पानी होता है, पिपासित पुरुष वहीं पहुँचते हैं। जिसका सब समय पर दुख हरन तथा परोपकार में बीतता है वह ईश्वर ही है। आप्त काम भगवान् भी परोपकार करने तथा आश्रितों को अभयदान प्रदान करने नाना अवतार धारण करते हैं। भक्तों की इच्छा पूरी हो, आश्रितो के दुःख दूर हों वे बन्धन से सदा के लिये मुक्त हो जायँ यही भगवान् का व्रत है और अवतार लेकर वे ये ही सब कार्य करते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! नित्य नियम के अनुसार भगवान् सभा में आकर बैठे। ब्राह्मणों ने कुछ वेद मन्त्रों की व्याख्या की पौराणिकों ने पूर्व कालीन पवित्र कीर्ति राजाओ के चरित्र सुनाये, उसी समय दौवारिक ने प्रणाम करके कहा—"प्रभो! एक अपरिचित व्यक्ति आया है, हमने उसका परिचय पूछा, तो उसने कहा—"मैं भगवान् से ही निवेदन करूँगा, तुम मेरी सूचना श्यामसुन्दर को दे दो। उसके लिये क्या आज्ञा होती है?"

सर्वज्ञ भगवान् तो सब जानते ही थे, उन्होंने कहा—"अच्छी बात है, उसे यहाँ ले आओ।" यह सुनकर द्वारपाल प्रणाम करके चला गया, फिर एक व्यक्ति को साथ लेकर आया।

उस व्यक्ति ने आकर भगवान को प्रणाम किया। राजा के प्रति सम्मान प्रदर्शित किया और फिर कहा—"भगवन्! मैं मगध देश से आरहा हूँ। मैं एक गुप्त सन्देश लेकर आया हूँ।"

भगवान् ने कहा—"अच्छी बात है, तुम अपने सन्देश को सुना दो, यहाँ कोई अन्य व्यक्ति नहीं है।"

दूत ने कहा—"प्रभो! मगध के राजा जरासन्ध ने बीस सहस्र आठसौ राजाओं को पकड़कर वन्दी बना रखा है। उन

वन्दी राजाओं ने ही मुझे गुप्त दूत बनाकर आपकी सेवा में भेजा है।"

भगवान् ने कहा—"अच्छी बात है, उन्होंने मेरे लिये जो सन्देश भेजा हो, उसे आप मुझे निर्भय होकर सुनाइये।"

दूत बोला—"महाराज ! वन्दी बने नृपतियों ने निवेदन किया है, कि जब जरासन्ध दिग्विजय के लिये निकला था, तो जिन राजाओं ने उसकी अधीनता स्वीकार करली,जिन्होंने उसके चरणों में सिर झुका दिया,उन्हें तो उसने छोड़ दिया। हम लग भग वीस सहस्र राजाओं ने उसके सम्मुख सिर नहीं झुकाया इसलिये उसने हमें वलपूर्वक पकड़ कर अपने गिरिव्रज नामक किले में वन्द कर दिया। यह किला चारों ओर से पर्वतों से घिरा है। इसमें कोई भी शत्रु प्रवेश नहीं कर सकता। पहाड़ों पर इसने शतघ्नियाँ लगा रखी है इसके चारों ओर विशाल खाई है। इस प्रकार हम यहाँ वन्दी जीवन बिता रहे है। आपने ही इस दुष्ट के अभिमान को वढ़ा दिया है।"

भगवान् ने कहा—"मैंने भाई ! कैसे उसके दर्प को वढ़ाया है।"

दूत बोला—"भगवन् ! राजाओं ने दीनता के साथ निवेदन किया है—"हे शरणागतभय भञ्जन ! इस जरासन्ध ने आप पर अठारह बार चढाई की। आपने सत्रह बार तो इसे हरा दिया। अठारहवीं बार नर नाट्य करते हुए आप भाग खड़े हुए और मथुरा का परित्याग करके द्वारका में जा बसे। इससे इसका अभिमान अत्यधिक वढ़ गया। यह सोचने लगा—"जव मैंने श्रीकृष्णचन्द्र को भी हरा दिया, तो फिर मेरा सामना कौन कर सकता है। अव तो यह सबको कीड़ा मकोड़ा समझता है।"

भगवान् ने पूछा—"भाई ! ये इतने राजा भी तो क्षत्रिय । सब उस पर आक्रमण क्यों नहीं करते ?"

दूतने कहा—"महाराज ! आक्रमण कैसे करें, वह तो बडा ली है । अकेले उसमें ही दस सहस्र हाथियों का बल है । आप अतिरिक्त उसे कोई भी वश में नहीं कर सकता । जब से उसे यह अभिमान हो गया है, कि श्रीकृष्ण मेरे ही भय से मथुरा छोड़कर भाग गये है, तब से तो वह अपने को विश्व विजयी माने बैठा है । किसी भी राजा का उसके विरुद्ध सिर उठाने का साहस नही होता । हे अमेयात्मन् ! राजाओ ने परमबलवान् कलस्वरूप सर्वान्तर्यामी आपके पाद पद्मों मे पुनः पुन: प्रणाम निवेदन किया है और कहा है—"अपका अवतार सत्पुरुषों की रक्षा और दुष्टों के दमन के ही निमित्त होता है । आप से वलवान् हमें संसार में कोई दिखाई नही देता, जिसकी शरण में जायँ । आपके रहते हुए भी जो इतना कष्ट हो रहा है, इसका कारण हम नहीं जानते । हम कैसे भी है, हैं तो आपके सेवक ही । हमने आपको ही अपना सर्वस्व समझ रखा है । इतने पर भी वह हमें दुःख दे रहा है तो या तो हमारा दुर्भाग्य है, या वह आपकी इच्छा के विरुद्ध बर्ताव कर रहा है । हे सर्व समर्थ ! यदि हमारा दुर्भाग्य है तो उसे मेंट दीजिये । यदि जरासन्ध ही आपकी आज्ञा का उल्लंघन कर रहा है, तो उसे उचित दंड देकर हम शरणागतों की रक्षा कीजिये ।

आप कह सकते है, तुम जगत् को मिथ्या मान कर वही मेरा चिन्तन करो । सो,तो सत्य ही है, किन्तु प्रभो ! हम आपकी माया मे फँसकर मोह में पड़े हुए है प्रारब्ध कर्मो ने हमें विवश सा बना दिया है । स्वप्न के समान अनित्य राजसुख को पाने की अभी हमारी इच्छा बनी हुई है । अभी हमें अपने बन्धु बान्धवों, स्त्री तथा बच्चों से मिलने की आशा लगी हुई है, किन्तु जरासन्ध

के वन्धन में बदी रहने से अपनी इच्छा की पूर्ति कर नहीं स
आप शरणागतों के दुःख को दूर करने वाले हैं, अतः आप
इस जरासन्ध को मारकर हमें उसके फन्दे से छुड़ाइये।
ही हमे इस वन्धन से सदा के लिये मुक्त कर सकते है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इतना कह कर दूत ने अंत
अपनी ओर से प्रार्थना की—"हे प्रभो! उन दीन दुखी राजाओं
जिनको मगधराज जरासन्ध ने बन्दी बना रखा है, उन
सन्देश को मैंने आपके चरणों में निवेदन किया, वे प्रति
आपके पधारने की बाट जोह रहे हैं, आपके दर्शनों के लि
अत्यंत ही उत्सुक हो रहे है। अब आप जैसा भी उचित सम
करें। मेरी तो बार बार श्रीचरणों में यही प्रार्थना है, कि
शरण में आये दीन दुखियों के दुख को दूर करके उन पर दय
दरसाइये। उन्हें दीन जानकर अपनाइये और अपने देवदुर्ल
दर्शन देकर सब को कृतार्थ कीजिये।"

इस प्रकार निवेदन करके दूत बैठा ही था, कि 'राम कृष्ण
हरि जय जय राम कृष्ण हरि' की ध्वनि के साथ हो वीणा की
झंकार सुनाई दी। सब ने चौंककर देखा, कि रामनामी दुपट्टा
ओढ़े, वीणा बजाते हुए, हरिगुन गाते हुए नारद जी वहाँ आ
पहुँचे। उनकी पिङ्गल वर्ण की जटायें इधर उधर छिटक रही थी
मुख मण्डल पर परम तेज विराजमान था। वे सूर्य के समान
प्रकाशित हो रहे थे। सहसा नारदजी को प्रकटित होते देखकर
सबको परम विस्मय हुआ। सबके मन में कुतूहल हुआ कि
नाना लोकों की विचित्र बातें सुनने को मिलेंगी।

देवर्षि नारद को देखकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र समस्त
यादवों के सहित उठकर खड़े हो गये। सभा के समस्त सभासद
ने राज्य कर्मचारियों ने तथा अन्यान्य अनुचरों ने सिर झुकाकर
देवर्षि नारद के चरणों में प्रणाम किया। भगवान्ने बैठने के

लिये एक सुन्दर सुवर्ण मंडित आसन उन्हे दिया। अर्घ्य आस-
ादि. से विधिवत् पूजा करने के अनन्तर भगवान्‌ने कहा—
'कहिये ! नारदजी महाराज ! कहाँ कहाँ से आना हुआ। अबके
ो बहुत दिनों में आप पधारे। हम सब तो आपके आगमन की
तीक्षा ही करते रहते हैं।"

नारदजी ने कहा—"महाराज ! मेरी भी इच्छा सदा आपके
र्शन के लिये बनी ही रहती है, किन्तु जब भाग्य उदय होते है,
भी दर्शन हो सकते हैं।"

हँसते हुए भगवान् बोले—"हमें दर्शनों का जो लाभ है, सो
ो है ही। हमें तो सबसे बड़ा लाभ यह है, कि आपके पधारने
त्रिभुवन का समाचार सरलता से सत्य सत्य मिल जाता है।
ापकी सर्वत्र अव्याहत गति है, आप अपनी इच्छानुसार तीनों
ोकों में पर्यटन करते रहते हैं। भगवान् के निर्मित तीनो लोकों
ें ऐसी कोई बात नही है, जो आपको विदित न हो। अच्छा,
ह तो बताइये, इस समय आप अभी कहाँ से पधार रहे है ?"

नारदजी ने सरलता के साथ कहा—"महाराज ! इस समय
ो मैं इन्द्रप्रस्थ से आ रहा हूँ।"

भगवान् प्रसन्नता प्रकट करते हुए बोले—"अच्छा, बड़ी
च्छी बात है। इन्द्रप्रस्थ का ही समाचार सुनने को हम सब
त्सुक थे। हमारे भाई पांडव अच्छे तो है ? धर्मराज की राज्य
यवस्था उत्तम हो गयी है न ? इस समय वे क्या करना चाहते
ं, उनके सब समाचार हमें सुनाइये।"

यह सुनकर हँसते हुए नारदजी बोले—"प्रभो ! ऐसे भोले
ाले बालक के समान प्रश्न आप किसी अज्ञानी से किया करें,
ो आपको जानता न हो। मुझे तो आपकी सब करतूतों का पता
ै। आपकी कृपा से ही मुझे भी ज्ञात हुआ है। कि आप महा-
ायावी हैं। जब जैसा चाहें तब तैसा रूप रख लेते हैं। एक बार

नहीं अनेकों वार मैंने आपकी मायाको देखा है । आप सर्वगत सम्पूर्ण विश्व मे उसी प्रकार व्याप्त हैं जिस प्रकार काष्ठि अग्नि व्याप्त है, तथा वायु और आकाश व्याप्त हैं जब आप सर्वगत सर्वान्तर्यामी हैं, तो फिर यह प्रश्न करना, कि अमुक स्थान मे क्या हो रहा है, अमुक व्यक्ति क्या करना चाहता है। यह केवल नर नाट्य दिखाना है । यह आपके लिये कोई नई बात भी नहो । आप नित्य ही ऐसे खेल किया करते हैं ।"

भगवान् बोले--"नारदजी ! आप वात कहते हैं तनिक सी भूमिका बांधते हैं, बड़ी लम्बी चौड़ी, हमारी इच्छा तो पांडवों का समाचार जानने की है ।"

हँसकर नारदजी बोले—"अजी, महाराज ! आप क्या करना चाहते हो, इसे कौन जान सकता है ? आप इस दृश्य प्रपञ्च को जो मिथ्या होने पर भी सत्य सा प्रतीत होता है- अपनी इच्छा से ही क्षण भर में बना देते हो, जब चाहें तब प्रलय कर देते हो आप सब कुछ जानते है, किन्तु आपको यथार्थ रूप से कोई नही जानता । ऐसे अचिन्त्य मूर्ति आप सर्वेश्वर को डंडौत है । जिन आपने जीव को मुक्त करने के निमित्त अनेकों अवतार धारण किये है, उनकी महिमा को समझ ही कौन सकता है । जीवों की तो देह गेह में आत्म बुद्धि हो गयी है । जीव अनर्थ प्रवर्तक शरीर से मुक्त होने के उपाय से अनभिज्ञ है, इसी-लिये जन्म मरण रूप संसार चक्र में भ्रमता रहता है । इसे मुक्तिका मार्ग दिखायी नही देता । आप अवतार ग्रहण करके नाना भाँति की विचित्र विचित्र लीलायें करते हैं, उनका सुयश दिग्दिगान्तों में व्याप्त हो जाता है, उस सुयश रूप दीप को लेकर सुनकर जो आगे वढते हैं । वह सुयश ही प्राणियों को आप तक पहुँचा देता है, अतः आप के पाद पद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है ।"

आप अब कोई नयी लीला करना चाहते है, तभी तो उसे मेरे मुख से कहलाना चाहते हैं, नहीं तो भला संसार की ऐसी कौन सी बात है, जो आपसे अविदित हो। किन्तु अब आप नर नाट्य कर रहे हैं, मनुष्य लीला का अनुकरण करते हुए मुझ से पूछ रहे हैं, तो मैं बताता हूँ। इन्द्रप्रस्थ में आपकी फूआ के पुत्र पांडव कुशल पूर्वक हैं। धर्मराज आज कल एक बड़ी भारी चिन्ता में मग्न हैं।

उत्सुकता प्रकट करते हुए भगवान् ने कहा—"धर्मराज को आजकल कौन सी चिन्ता व्याप्त हो गयी? मुनिवर आप कुन्ती-नन्दन धर्मराज की चिन्ता का कारण मुझे बताइये।"

नारदजी बोले—"महाराज ! पाण्डुनन्दन धर्मराज महाराज युधिष्ठिर की बड़ी इच्छा है, कि मैं राजसूय यज्ञ करके भगवान् वासुदेव का यजन करूँ। किन्तु इसमें एक बडी कठिनाई है।"

भगवान् ने कहा—"इसमें कठिनाई क्या है ? करें राज-सूय यज्ञ।"

नारदजी ने कहा—"महाराज ! आपकी कृपा हुई,तो करने को तो वे करेंगे ही, किन्तु कठिनाई यह है, कि राजसूय यज्ञ वही राजा कर सकता है, जिसने समस्त राजाओं को जीत कर अपने वश में कर लिया हो। जिसने सम्राट पद प्राप्त कर लिया हो। पृथिवी के सब राजाओंने जिसकी अधीनता स्वीकार करली हो। धर्मराज की अधीनता सभी राजाओंने तो स्वीकार की नहीं। जरासन्ध आदि कई राजा अपने को ही विश्वविजयी चक्रवर्ती कहते हैं। ऐसी दशा में जब तक आप कृपा न करेंगे, आप उनके संकल्प का अनुमोदन न करेगे, तब तक राजसूय यज्ञ होना संभव नहीं। अतः सर्व प्रथम आपको इन्द्रप्रस्थ पधारना चाहिये।"

भगवान् ने कहा—"मुनिवर ! मेरे ही चलने से वहाँ क्या होगा।"

नारदजी ने प्रेमाश्रु विमोचन करते हुए गद्गद् वाणी से कहना आरम्भ किया—"प्रभो ! आपके ही पधारने से तो वहाँ सब कुछ होगा। आपके बिना तो वहाँ कुछ हो ही नहीं सकता। आप वहाँ पधारेंगे, तो आपके दर्शनों के निमित्त वहाँ स्वर्गादि लोकों से बड़े बड़े देवता पधारेंगे, पृथिवीके कोने कोने से यशस्वी राजा गण अन्यान्य प्रजा जन तथा देवर्षि, राजर्षि और ब्रह्मर्षि आदि पधारेंगे। आपके तो केवल नाम संकीर्तन मात्र से तथा गुणादि श्रवण मात्र से ही चाण्डाल पर्यन्त पतित पावन हो जाते है, फिर जिनको आपका साक्षात् दर्शन हो जाय, स्पर्श प्राप्त हो जाय उनके सम्बन्ध में तो फिर कहना ही क्या है। हे विभो ! आप का निर्मल यश तीनों भुवनों में व्याप्त है। दसों दिशायें उस सुयश से परिपूर्ण हो रहीं हैं। आपके अमल विमल चरण कमलों के धोवन से जो जल निकला वही तीनों लोकों को पवित्र करने मे समर्थ है और वह स्वर्ग में मन्दाकिनी के नाम से पृथिवी में गंगाके नाम से और पाताल में भोगवती के नाम से प्रवाहित होकर अब तक प्राणियों को पावन बना ही रहा है। आपके पधारने से ही धर्मराज का यज्ञ परिपूर्ण हो जायगा, इसमें कोई सन्देह नहीं। अतः आपको अविलम्ब इन्द्रप्रस्थ की ओर प्रस्थान करना चाहिये।"

यह सुनकर भगवान् ने कहा—"इस समय तो बड़ा धर्म संकट उपस्थित हुआ। एक ओर तो जरासन्ध के द्वारा बन्दी बनाये हुए भूपतियों की प्रार्थना है। शरणागतों की रक्षा का धर्म है. दूसरी ओर पांडव हमारे सुहृद् है, सम्बन्धी हैं, माननीय हैं, उनकी सहायता और इच्छा पूर्ति का प्रश्न है। इन दोनों कामों

में से सर्व प्रथम हमें किसे करना चाहिये। नारदजी का आग्रह है, मैं सर्व प्रथम इन्द्रप्रस्थ चलूँ। वन्दी राजाओं का आग्रह है, मैं प्रथम जरासन्ध को जीतकर उन्हें बन्धन से मुक्त करूँ। अब कौन सा काम प्रथम करना चाहिये।"

भगवान् की यह बात सुनकर ग्रावेश में भरे हुए युवक यादव बोल उठे-"महाराज! सर्व प्रथम जरासन्ध पर ही चढ़ाई करनी चाहिये। युद्ध के आये अवसर को खो देना क्षात्र धर्म के विरुद्ध है। युद्ध करने को हमारे हाथ खुजा रहे हैं। शरण में आये हुए की रक्षा सर्व प्रथम होनी चाहिये। ये यज्ञ यागादि तो होते ही रहते हैं। हम सब की तो सम्मति है, पहिले मगध पर ही धावा बोला जाय। जरासन्ध को ही जीता जाय।"

यह सुनकर भगवान् गम्भीर हो गये और फिर नारद जी से बोले—"कहिये, नारदजी! आप क्या कहते हैं।"

नारदजी ने कहा—"महाराज! मैं क्या कह सकता हूँ। करेंगे तो वही जो आपको करना होगा। आप यों पूछकर सबको बड़ाई दे रहे हैं। मैं तो पहिले ही निवेदन कर चुका। भक्तों की इच्छा पहिले रखनी चाहिये। पांडव ग्रापके अनन्य भक्त है। उनको एक मात्र आपका ही आश्रय है। उनकी इच्छा पूर्ति करना आपका सर्वप्रथम कर्तव्य है। फिर आगे जैसी आपकी इच्छा हो।"

यह सुनकर भगवान् अपने आप ही कहने लगे—"सब यादव युवक युद्ध के लिये उत्सुक हैं, उनका आग्रह है, पहिले जरासन्ध को जीतना चाहिये। नारदजी कहते हैं, पहिले धर्मराज के यज्ञ में चलकर सहायता करनी चाहिये। मेरी बुद्धि तो काम देती नहीं। मैं तो दुविधा में पड़ गया। अच्छा इस विषय

में उद्धवजी हमारे पञ्च हैं, ये जो निर्णय करें, वह हम सब बिना वाद विवाद के स्वीकार कर लेना चाहिये।" ऐसा कह भगवान् उद्धवजी से कहने लगे—'उद्धव ! तुम हमारे मंत्री हो सर्वस्व हो, जब हम दुविधा में पड़कर पथभ्रष्ट होने लगते है, तो तुम ज्ञानालोक दिखाकर हमें सुमार्ग पर ले आते हो। तुम पदार्थों के यथावत् प्रकाशक होने के कारण ह... चक्षु हो। तुम शुभ सम्मति देने में कुशल हो। अब तुम ही निर्णय कर दो, हमें क्या करना चाहिये। प्रथम इन्द्रप्रस्थ जाना चाहिये या जरासन्ध के दुर्ग मे बन्दी बने राजाओं के छुड़ाने के लिये मगध पर चढ़ाई करनी चाहिये। तुम जैसी सम्मति दोगे, उसे ही हम बिना ननु नच किये स्वीकार कर लेंगे। तुम अपना निर्णय सुना दो।" इस समय तुम्हारी सम्मति के अतिरिक्त हमें दूसरा कोईऔर मार्ग सूझता ही नहीं। तुम पर सभी का विश्वास है। हम यादवों में तुम सबसे अधिक बुद्धिमान हो सभी कुल वाले आपका आदर करते हैं। नारदजी भी आप को मानते हैं। आपका निर्णय सर्व सम्मत स्वीकृत होगा।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! भगवान् के मुख से अपनी इतनी प्रशंसा सुनकर उद्धवजी अत्यंत ही लज्जित हुए। सर्वज्ञ भगवान् भोले बालक की भाँति अज्ञ पुरुष की भाँति बड़ी सरलता से पूछ रहे थे। पहिले तो उद्धव जी ने सोचा—"मैं कुछ उत्तर ही न दूँ। सर्वज्ञ के सम्मुख अपनी सम्मति देना अपना वाचालपना ही प्रकट करना है। फिर उन्होने सोचा—"यह सेवक धर्म के विरुद्ध है। स्वामी जिस बात के लिये भी आज्ञा दे, उसे पूरा करना सेवक का प्रधान कर्तव्य है। अतः भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य करके वे उत्तर देने को प्रस्तुत हुए। उद्धवजी ने जैसे उत्तर दिया, उस प्रसङ्ग को मैं आगे कहता हूँ।"

छप्पय

इत शरणागत काज, सुहृद मख इच्छा जानो।
बोले श्री घनश्याम मधुर मायायुत बानी॥
दुविधा महँ परि गये प्रथम हम कितकूँ जावें।
यादव रनकूँ कहें मुख्य मुनि मखहिं बतावें॥
उद्धवजी अब पञ्च हैं, ये ही दुविधा हरिङ्गे।
ये निर्णय जैसो करें, तैसो हम सब करिङ्गे॥

उद्धवजी की शुभ सम्मति

(११४१)

इत्युदीरितमाकर्ण्य देवर्षेरुद्धवोऽब्रवीत्।
सभ्यानां मतमाज्ञाय कृष्णस्य च महामतिः॥*

(श्रीभा० १० स्क० ७१ अ० १ श्लो०)

छप्पय

उद्धव सुनि हरि वचन सकुचिकें बोले बानी।
हैं स्वामी सरबज्ञ कहूँ का हौं अज्ञानी॥
परि आयसु सिर धारि कहूँ, मुनि बचन निभाओ।
इन्द्रप्रस्थ महँ प्रथम युधिष्ठिर मख हित जाओ॥
शरणागत रक्षा परम, धर्म कह्यो मख मुख्य अति।
तहाँ काज दोनों बनें, कहूँ सुनो हे जगत्पति॥

सेवक और स्वामी कहनेको दो होते हैं, वास्तवमें तो वे एक ही हैं। सेवा करते करते सेवक स्वामीके ही अनुरूप बन जाता है। वह स्वामीके मनोगत भावोंसे सब प्रकारसे परिचित हो जाता है। इस समय स्वामी क्या करना चाहते हैं उनके मनमें क्या है

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! महामति उद्धवजी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीके वचन सुनकर तथा देवर्षि नारद और यादव सभासदगणोंके पृथक् पृथक् भाव समझ कर वे इस प्रकार कहने लगे।"

ा करनेसे स्वामी संतुष्ट होंगे इस विषयमें स्वामीका अभिमत
ा है, यह सेवक को प्रथम ही विदित हो जाता है। और
नुरूप ही वह वर्ताव करता है। सेवकका सर्वश्रेष्ठ मुख्य
र्तव्य यही है, कि स्वामीके रुखको देख कर व्यवहार करना।
से वह सत्य समझे, उपादेय समझे उसे स्वामीके पूछने पर
ष्ट बता दे। स्वामी ऊपर विठावें ऊपर बैठ जाय, नीचे विठावें
चे बैठे जाय। सेवक धर्ममें अपनापन रहता ही नहीं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब भगवान्‌ने "प्रथम धर्मराजके
में जायँ या प्रथम जरासंधके कारावासमें पड़े बन्दी राजाओंको
ाने जायँ" इस विषयका निर्णय करनेके लिये उद्धवजीको
व बना दिया, तो दोनों पक्षका पृथक् पृथक् भाव जानकर
द्धवजी कुछ देर तक तो सोचते रहे। उन्होंने सोचा—"ये
वक यादव गण जो जरासन्धसे युद्ध करनेके लिये व्यग्रता
खा रहे हैं यह इनका ऊपरी आवेश मात्र है। भावुकतामें भर
र ये लड़नेके लिये उतावले बने हुए है। जरासन्धसे भिड़ेंगे तब
हें अपने बलका पता लगेगा। नारदजीजो कह रहे हैं, वह
रदर्शिताकी बात कह रहे है। वे बहुत दूर तककी सोचते हैं।
र्यके आवेगमें भर कर त्वरा नहीं करते।"

इसी प्रकार दोनों ओरका बलाबल देख कर उद्धवजी हाथ
ोड़ कर गम्भीरताके साथ बोले—"भगवन्! यदि मुझसे मत
छा जाता है, तो मेरी तो यही सम्मति है, कि आपको देवर्षि
ारदजीके कथनानुसार राजसूय यज्ञ की इच्छा रखने वाले
पने फूआके लड़के धर्मराजकी सहायता करनी चाहिए उनके ही
ासमें जाना चाहिए।"

भगवान्‌ने कहा—"उद्धवजी! करेंगे तो हम वही जो आपका
िर्णय होगा, किन्तु हम यह जानना चाहते है कि शास्त्रकारोंने
रणागतकी रक्षा करनेको परम धर्म बताया है। जो सामर्थ्य

रहते हुए भी शरणागतकी रक्षा नहीं करता, उसका पतन करता है, तो वह घोर रौरवादि नरकोंको जाता है। आप शरणागतके सर्वोत्कृष्ट धर्मको छोड़ कर यज्ञमें जानेकी सम्मति क्यों देते हैं। यज्ञ तो अभी आरम्भ भी नहीं हुआ है केवल धर्मराजका विचार मात्र है। वह दस दिनके पश्चात् भी हो सकता है। आपने राजाओं को छुड़ानेकी बात को प्राथमिकता क्यों नहीं दी?"

इस पर उद्धवजीने कहा—"भगवन्! आपने मनुष्य दृष्टिसे मुझसे प्रश्न किया है। उसी दृष्टिसे मैं विचार कर रहा हूँ। वैसे तो आप सर्व समर्थ हैं। अपने संकल्प मात्रसे ही सब कुछ कर सकते हैं। इस बात को मैं मानता हूँ, कि शरणागतों की रक्षा करना सर्व श्रेष्ठ धर्म है। किन्तु भगवन्! जरासन्धके दुर्गसे वन्दी राजाओंको निकालना यह गुड़का पूआ नहीं है जो गलेसे खा गये उस राजाको जीतना टेढ़ी खीर है। जीवित सिंहके मुखको फाड़ कर उसके दाँतोंके बीच रक्षित जीभ को निकाल लेना साधारण काम नहीं है। ये यादव युवक तो अभी अनुभव शून्य है। ये आवेशमें आकर कह रहे हैं, युद्धके लिये चलो, युद्धके लिये चलो। उससे युद्ध करना हँसी खेल नहीं है। अकेले जरासंधमें दस सहस्र हाथियोंका बल है। उसके पास सेना भी इतनी है, कि सहस्रों राजा मिल कर भी उसे नहीं जीत सकते। इस लिये उस पर चढ़ाई करनेकी बात सोचना तो लड़कपन है।"

भगवान्ने कहा—"तब तो शरणागतोंकी रक्षा हो ही न सकेगी।"

उद्धवजी ने कहा—"हो क्यों न सकेगी महाराज! इन्द्रप्रस्थ जानेसे दोनों काम होस केंगे। वन्दी राजा भी छुट जायँगे और यज्ञ कार्य भी सम्पन्न हो जायगा।"

भगवान् ने कहा—"सो कैसे ?"

उद्धवजी ने कहा—"वह इस प्रकार होगा कि राजसूय यज्ञ तो साधारण राजा तो कर ही नहीं सकते। सुनते हैं चन्द्रदेव, वरुणदेव तथा हरिश्चन्द्र आदि कुछ इने गिने राजाओंने ही राजसूय यज्ञ किये है। जो राजा दिग्विजय करके सब राजाओंको अपने वशमें करले। चारों दिशाओंमें जिसकी आज्ञा मानी जाय, जो सम्राट चक्रवर्ती हो वही राजसूय यज्ञ कर सकता है। यज्ञके पहिले चारों दिशाओंके राजाओं को जीतना होगा। उसमें जरासधको भी जीतना आवश्यक होगा। जरासंधको जीत लेने पर वन्दी राजाओंको सरलतासे वहीं तुरन्त मुक्त किया जा सकता है। इस प्रकार यज्ञमें जानेसे दोनों कार्य एक साथ हो जायँगे एक पन्थ दो काज, साँप मरे न लाठी टूटे। तर्पण भी हो जाय वृक्ष भी सिंच जायँ।"

इस पर शौनकजीने पूछा—"सूतजी! तर्पण भी होजाय, वृक्ष भी सिंच जायँ! यह क्या बात हुई? इसका हमें अर्थ समुझाइये।"

सूतजी बोले—"महाराज! गयाजीके समीप एक मुनि रहते थे। उनका आश्रम बड़ा था। मुनिको वृक्ष लगानेका व्यसन था। वे नये नये आमके वृक्ष लगाते थे। वृक्षोंको सींचना भी आवश्यक था और नित्य सन्ध्या तर्पण भी आवश्यक था। तीनो काल सन्ध्या करते थे। इसलिये घड़ा भरकर जल लेआते वृक्षोंके थालोंमें कुशासे जल भी डालते जाते साथ ही तर्पण भी करते जाते। एक पन्थ दो काज होते जाते। यही बात उद्धवजीने कही, कि इन्द्रप्रस्थ जानेसे यज्ञकर्म भी सम्पन्न हो जायगा और शरणागतों की रक्षा भी हो जायगी।"

शौनकजीने पूछा—"हाँ, तो सूतजी! फिर क्या हुआ?"

सूतजी बोले—"महाराज! उद्धवजी की बात सुनकर भगवान्

बोले—"उद्धवजी ! आपने बात तो युक्तियुक्त कही, आप तो कह चुके हैं, कि जरासन्धके पास अगणित सेना है युद्ध करके कोई उसे जीत ही नहीं सकता । जब वह जीता न जायगा, तब न तो यज्ञही होगा न शरणागतोंकी रक्षा ही होगी तब तो इन्द्रप्रस्थ जाना व्यर्थ ही है ।"

उद्धवजीने कहा—"हाँ, महाराज ! इसे तो मैं अब भी कहता हूँ । आप चाहे तो सब कुछ कर सकते हैं, किन्तु मनुष्य दृष्टि से उसे कोई भी लड़कर युद्धमें नहीं जीत सकता । वह तो छल बलसे जीता जा सकेगा । उसे जीतने की एक युक्ति है ।"

भगवान् ने पूछा—"वह क्या युक्ति है ?"

उद्धवजी बोले—"मैंने बड़ोंके मुखसे ऐसा सुना है कि जरासन्धकी मृत्यु भीमसेनके हाथ से होगी । भीमसेनमें भी दस सहस्र हाथियोका बल है । बलमें तो जरासन्ध और भीम बराबर ही हैं, किन्तु कला कौशलमें और बुद्धिमानीमें जरासन्ध भीमसे बढ़कर है । इसलिये अकेले भीमसेन द्वंदयुद्धमें उसे नहीं जीत सकते । हाँ, आपकी बुद्धि और भीमका बल दोनों एकत्रित हो जायँ तो, वह निश्चय ही जीता जा सकता है । आप सेना लेकर न जायँ । आप लोग अकेले जाकर छल पूर्वक उससे द्वंद युद्धकी याचना करें ।"

भगवान्ने कहा—"वह हमसे द्वंद युद्ध करने के लिये सहमत क्यों होगा ?"

उद्धवजीने कहा—"वैसे थोड़े ही सहमत होगा । आपको उसके साथ छल करना होगा । आप, अर्जुन और भीमसेन बनावटी ब्राह्मणका वेष बना कर उसके यहाँ जायँ । वह बड़ा ब्राह्मण भक्त है । ब्राह्मण जो माँगते हैं वही वह उन्हें देता है । भीमसेन ब्राह्मण बनकर उससे द्वंदयुद्धकी भीख माँगें । ब्राह्मण को वह कभी मना न करेगा । जब वह स्वीकार कर लेगा तो भीमसेन

आपकी सहायतासे द्वंद युद्धमें उसे अवश्य ही मार डालेंगे। इसमें सन्देह करनेका स्थान ही नही। आप ही इस जगत्के स्वामी हैं। आप से ही यह जगत् उत्पन्न होता है। ब्रह्माजी शिवजी केवल निमित्त मात्र हैं ऐसे ही मारेंगे तो उसे आप ही, किन्तु भीमसेन इसमें निमित्त होंगे।

जरासन्धके मरते ही सभी राजा बन्धन मुक्त हो जायेंगे। आपका यश दिग्दिगान्तोंमें व्याप्त हो जायगा। जो राजा छूट कर अपने अपने नगरोंमें जायेंगे, उनकी स्त्रियाँ अपने बच्चोंसे कहा करेंगी—"तुम्हारे पिताकी भगवान्ने रक्षाकी। उन्होंने ही इन्हें बन्धनसे छुड़ाया। नहीं तो हम सब अनाथ हो गयीं थीं। दुष्ट जरासन्ध तुम्हारे पिताजीको पकड़ लेगया था। भक्तभयहारी भगवान् ने उस दुष्टको मार कर उसके कारावाससे सब राजाओंको छुड़ाया।"

इस प्रकार सर्वत्र आपके गुणका उसी प्रकार गान हुआ करेगा जैसे व्रजमंडल में होता रहता है। व्रजमें आपने व्रजवासियों की अनेक अवसर पर रक्षाकी थी। शंखचूड़ दैत्य गोपिकाओंको उठा लेगया था, उनकी रक्षा आपने उस दुष्ट दैत्यको मार कर की थी, जब गजको ग्राहने ग्रस लिया था, तो उसकी रक्षा आपने हरिरूप से ग्राहका मुख काटकर की थी, जब सीताजीको दुष्ट रावण हर ले गया था, तब रामावतार में लंकामें जाकर राक्षसोंको मारकर आपने उन जनकनन्दिनीकी रक्षा की थी। हम यादव गण जब कंसके अत्याचारोंसे अत्यंत दुखी थे देवकी वसुदेवजी अत्यंत व्याकुल थे, तब आपने व्रजसे आकर कंसको मारकर हम सबकी रक्षा की थी। इन सब बातोंका जैसे ऋषि मुनि तथा विज्ञजन गान करते हैं। कथा वाचकगण इन प्रसङ्गोंकी कथा कहते हैं वैसे ही जरासन्धके मारे जाने के कारण राजाओंकी मुक्तिकी कथा घर घर व्याप्त

जायगी। सर्वत्र आपके यशका गान होने लगेगा। एक जरासंध-के मारे जाने से आपके शरणागतों की रक्षा हो जायगी, महाराज युधिष्ठिरकी अभिलाषा पूरी हो जायगी, राजसूय यज्ञका महोत्सव हो जायगा, आपके यशका विस्तार हो जायगा। लोगोंको आपके गुण गान करके वाणीको पवित्र करनेका अवसर प्राप्त हो जायगा। सुननेवालोंके श्रोत्र सफल हो जायँगे और देवताओंको हवि आदि मिल जायगी। इस प्रकार अनेक लाभ होंगे। इसलिये मेरी प्रार्थना है। आप अवश्य ही प्रथम इन्द्रप्रस्थ पधारें। धर्मराजको प्रसन्न करें। शरणागतोंकी रक्षा तो यज्ञसे पूर्व सभी दशाओंमें हो ही जायगी।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! उद्धवजीकी इन तर्कपूर्ण युक्तियुक्त बातो का देवर्षि नारदजीने, उग्रसेनजी, वसुदेव जी, अक्रूरजी तथा अन्यान्य वयोवृद्ध यादवोंने हृदय से समर्थन किया सबकी सम्मति समझकर भगवान्ने बड़े बूढ़ों तथा गुरुजनो से अनुमति ली और फिर सेवकोंको इन्द्रप्रस्थ चलनेकी तैयारियाँ करने के लिये अनुमति प्रदानकी। अब वे जैसे इन्द्रप्रस्थको प्रस्थान करेंगे, उस प्रसङ्ग को मैं आगे कहूँगा।"

छप्पय

जरासंध अति वली ताहिको रन महँ मारे।
बिना दिग्विजय राजसूय व्रत कूँ को धारे॥
प्रथम पहुँचि मख माँहि भीम अरजुन सँग लावें।
विप्र वेष धरि द्वंद युद्ध की भीख मँगावें॥
यह खल छल ही तैं मरे, प्रभुने तो वहु छल करे।
उद्धव सम्मति सुनि सकल, साधु साधु कहि हँसि परे॥

भगवान्‌का इन्द्रप्रस्थके लिये प्रस्थान

(११४२)

अथो मुनिर्यदुपतिना सभाजितः ।
प्रणम्य तं हृदि विदधद्विहायसा
निशम्य तद्व्यवसितमाहृतार्हणो
मुकुन्दसन्दर्शन निर्वृतेन्द्रियः । *

(श्री भा० १० स्क० ७१ अ० १८ श्लो०)

छप्पय

इन्द्रप्रस्थ कूँ प्रथम चलें निश्चय करि हरि तब ।
आयसु सब कूँ दई चले हरपित ह्वै के सब ।।
रानी सोलह सहस पाइ पति अनुमति आई ।
सजिबजि शिविकनि चढीं अधिक मनमाँहि सिहाई ।।
चले संग नट नर्तकी, पथ महँ नित नाटक करत ।
सेवक सैनिक अश्व गज रथ चढ़ि कछु पैदल चलत ।।

ध्यान चिन्तन एकान्तमें एकाकी करनेसे ही सुख होता है । प्रेमालाप दोके साथ हृदय खोलकर होता है और यात्रा अधिक अनुकूल साथियोंके साथ सुखप्रद होती है । साथ में अनुकूल साथी हों, यात्रा सम्बन्धी सब वस्तुएँ साथ हों, हँसी विनोद

---

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! इसके अनन्तर जब नारदजी ने यह जान लिया कि भगवान्‌का राजसूय यज्ञमे इन्द्रप्रस्थ जानेका दृढ निश्चय है, तो वे भगवान् के दर्शनो से परम प्रमुदित होकर तथा उनके द्वारा पूजित और सम्मानित होकर उन्हींका चिन्तन करते हुए आकाश मार्गसे चले गये ।"

मनोरंजन का प्रबन्ध हो तो वह यात्रा बड़ी सुखप्रद होती है। उस यात्रा की मधुर स्मृति सदाके लिये हृदय पर अङ्कित हो जाती है यात्रा की असुविधायें भी सुखद प्रतीत होती हैं। अपने घर के बाल बच्चे, स्त्रियाँ तथा अन्यान्य दास दासी भी साथ मे हों तब तो वह यात्रा अत्यंत सरस बन जाती है। ऐसी यात्रा का अवसर भाग्यशाली पुरुषों को ही प्राप्त होता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! देवर्षि नारदजी भगवान् के इन्द्रप्रस्थ जाने का संकल्प जानकर प्रसन्नता पूर्वक जब चले गये और वन्दी राजाओं का दूत भी भगवान् की आज्ञासे मगध देशको चला गया, तब भगवान् राजसभा से अपने अन्तःपुर में आये रुक्मिणीजी ने सुन लिया था, भगवान् इन्द्रप्रस्थ जाने वाले हैं, इस लिये उन्होंने पूछा—"महाराज ! इन्द्रप्रस्थ कब पधारेंगे ? सत्यभामा तो साथ जायँगी ही।"

भगवान् ने कहा—"सत्यभामा जायँगी और तुम न चलोगी क्या ?"

बनावटी शिष्टाचार के सहित रुक्मिणीजी ने कहा—"अजी ! महाराज ! हमें कौन पूछता है। जिसे आप युद्ध में भी साथ ले जाना नहीं भूलते जो स्वर्ग में साथ जाती है, जिनके आँगन में आपने कल्पवृक्ष लगा दिया है, वे ही इन्द्रप्रस्थ जायँगी। उससे आपने मेरे लिये आज्ञा लेली है क्या ?"

यह सुनकर भगवान् खिल खिलाकर हँस पड़े और हँसते हँसते बोले—"लड़ाई झगड़े में तुम्हारा क्या काम। तुम तो सबसे बड़ी पटरानी हो न। तुम्हें तो प्रधान कामों में साथ लिया जाता है, यज्ञ आदि की दीक्षा लेनी हो, तो केवल तुम ही तो गाँठ बाँधकर मेरे बराबर बैठ सकती हो। दूसरी रानियों को यह अधिकार कहाँ है। इन्द्रप्रस्थ में तो तुम्हारे बिना काम चलेगा ही नहीं। वहाँ की रेख देख का काम तुम्हें ही तो करना होगा। चाबियों का गुच्छा

बाँधे इधर से उधर घूमना सब पर आज्ञा चलाना। सब तुम्हें ही पूछ पूछ कर काम करेंगी।"

अपनी प्रसन्नता को भीतर ही भीतर रोक कर रुक्मिणीजी बोलीं—"रहने भी दो। तुम्हें दूसरों को बनाना बहुत आता है।"

भगवान् ने गम्भीरता के साथ कहा—"हँसी की बात नहीं। इन्द्रप्रस्थ तुम्हें चलना ही है।"

अब क्या था, अंधे को क्या चाहिये दो आँख, रुक्मिणीजी तो यह चाहती ही थीं। वे तुरन्त भीतर गयीं। दासियोंको डाँटने फटकारने लगीं। नये नये वस्त्रों को पेटियों में भरने लगी। आभूषणों की पिटारियों को खोलकर रखने लगीं। सिंदूर की डिबिया, काजर, वेंदी, तेल फुलेल, आरसी, कंघी, चोटी मिहदी महावर, मिस्सी, रोरी चंदन अंगराग तथा अन्यान्य जितनी सौभाग्यकी वस्तुएँ हैं उन सबको पेटियों में भरने के लिये दासियों को आदेश देने लगीं। बात की बात मे यह समाचार सर्वत्र फैल गया। सत्याजाम्बवती, कालिन्दी तथा नाग्नजिती आदि पूछने लगीं—"क्यों महाराज! बड़ी बड़ी रानियाँ ही इन्द्रप्रस्थ जा सकतीं हैं, या छोटियों के लिये भी कहीं स्थान है?"

भगवान् ने कहा—"अरे कैसी छोटी बड़ी। हाथ की सभी उँगलियाँ एक ही समान प्यारी होती है चाहें कोई देखनेमें छोटी हो या मोटी। पूछना क्या है चलो।"

यह सुनकर वे सब भी तैयारियाँ करने लगीं।

आठों रानियों को तैयारी करती देखकर सोलह सहस्र एक सौ रानियों ने कहा—"महाराज! यज्ञ में रानियाँ ही जा सकती हैं या दासियों के लिये भी स्थान है।"

भगवान् बोले—"तुम अपनी जितनी दासियों को चाहो साथ ले चलो।"

वे सब बोली—"अजी, महाराज ! हम तो स्वयं ही दासियाँ हैं। हमें यदि यज्ञ देखने का अवसर प्राप्त हो जाय, तो इसीमें अपना अहोभाग्य समझेंगी।"

भगवान् ने कहा—"तुम तो सर्वश्रेष्ठ रानी हो ठाठ बाठ से चलो।"

अब क्या था,सर्वत्र यात्रा की धूम-धाम मच गई। पालकियाँ और रथों से द्वार भर गये। बड़े बड़े लड़के रथों पर बैठ गये। उनके साथ उनके संरक्षक और सेवक भी बैठे थे। छोटे छोटे दूध पीने वाले बच्चे अपनी माताओं के साथ पालकियों पर बैठे। रक्षकों से घिरी हुई पालकियों को तथा बाल बच्चों के रथों को सेना सहित भगवान् ने आगे चलने की आज्ञा दी। सबके प्रस्थान करने पर भगवान्ने अपना यात्रा का स्वस्त्ययन कराया। इतनेमें ही गरुड़ध्वज रथ सजाकर दारुक सारथी ले आया। भगवान् ने वृद्ध ब्राह्मणों को प्रणाम किया, अपने पिता वसुदेवजी बलदेवजी तथा अन्यान्य वृद्ध यादवों से आज्ञा लेकर भगवान् रथ पर बैठे। चारों ओर मृदङ्ग, भेरी,आनक, पणव, शङ्ख, घंटा, गोमुख तथा अन्यान्य मङ्गल, वाद्यों की ध्वनि हो रही थी। वाद्यों के सुमधुर घोष से दसों दिशायें प्रघोषित सी प्रतीत होती थीं। रथ, हाथी, अश्व तथा पैदलों की भयङ्कर सेना से श्यामसुन्दर घिरे थे, आगे चलकर सेनापति ने सेना को रोक दिया पालकियाँ मार्ग के एक ओर रख दी गयीं। आगे आगे श्यामसुन्दर चलेंगे तब पीछे से शिविकायें तथा सैनिक चलेंगे।

सबको पंक्तिबद्ध खड़े देखकर दारुक ने रथ को सबसे आगे कर दिया, भगवान् का रथ आगे आगे चल रहा था। उसके चारों ओर बड़े-बड़े ऊँचे और मोटे घोड़ों पर चढ़े हुए घुड़सवार भालों में झंडियाँ लगाये चल रहे थे। भगवान् के पीछे अपने बालकों के साथ सुवर्णमण्डित शिविकाओं में बैठी हुई वस्त्र,

आभूषण, चन्दन तथा सुगन्धित मालाओंसे आलंकृत हुई भगवान् की पति परायणा पत्नियाँ चल रही थी। उनकी शिविकाओके चारों ओर ढाल तलवारसे सुसज्जित सैनिक चल रहे थे।

उनके पीछे सूत, मागध, बन्दी, नट नर्तक तथा अन्यान्य कला जीवी सपरिवार चल रहे थे। सेवक सेविकाओंकी टोलियाँ अपने अपने समानको छकड़ों पर लादे चल रही थी। सबके ऊनी सूती तंबू बैल गाडियोंमें लदे थे नट, नर्तक नर्तकी तथा अन्यान्य नाटक करने वाले गाने बजानेकी सामग्री सहित साथ थे। उनकी स्त्रियां नथ पहिने रथों और बैल गाड़ियोमें गाती हुई चल रही थीं। बड़े बूढ़े घोड़ों और ऊँटो पर चढ़े हुए थे, नौबत और नगाड़े ऊँटों तथा घोडोंपर बजते जाते थे, गधे, खच्चर, ऊँट बैल तथा छकड़े सामानसे लदे हुए चल रहे थे। सैनिक उत्साहके साथ घोड़ोंको नचाते हुए तथा रथो को भगाते हुए चल रहे थे। घोड़ों पर ध्वजा पताका लिये हुए सैनिक तथा छत्र चंवर और अस्त्रशस्त्रोंसे सुसज्जित राजकुमार उस सेनाकी शोभा बढ़ा रहे थे। आभूषण, किरीट, मुकुट, कवच तथा उत्तम अस्त्र शस्त्रोंसे सुसज्जित सेनाके लोग उसी प्रकार सुशोभित हुए जिस प्रकार तूफान आने पर समुद्र सुशोभित होता है और उसके बीचमें रग बिरंगी मछली, मकर तथा अन्यान्य जल जन्तु तरलतरंगों पर तैरते हुए दिखाई देते है।

भगवान्‌को इन्द्रप्रस्थकी ओर प्रस्थान करते देख बन्दी राजाओंका दूत दौड़कर फिर भगवान्‌के पास आया और हाथ जोड़कर भगवान्‌से बोला—"प्रभो! मै उन बन्दी राजाओंसे क्या कह दूँ? आप तो इन्द्रप्रस्थ पधार रहे हैं "

यह सुन कर भगवान् बोले—"अरे, भाई! तुमसे कह तो दिया, इन्द्रप्रस्थ भी जा रहे हैं, तो हम उन लोगोके ही कामसे जा रहे है। वे लोग डरे नहीं निर्भय होकर रहे। जैसे इतने दिन

दुःखसे काटे है वैसे ही और थोड़े दिन काटें। मैं अविलम्ब ही जरासन्धका वध कराने आऊँगा और फिर उन्हें बन्धनसे छुड़ाऊँगा। समय आने पर मैं सब कुछ करूँगा। सब काम समयसे ही होता है। असमयमें कोई भी काम नहीं होता।"

दूतने कहा—"बहुत अच्छा प्रभो! आपने जैसी आज्ञाकी है उसे ही मैं जाकर उन सबसे निवेदन कर दूँगा।"

इस प्रकार कह कर और वह पुनः पुनः प्रभुके पाद पद्मोंमें प्रणाम करके मगध देशकी ओर चल दिया। वहाँ आकर उसने चुपकेसे एकान्तमें सब राजाओंसे कहा—"भगवानने आपका सब वृत्तान्त जान लिया है। उन्होंने आज्ञाकी है, मैं शीघ्र ही आकर जरासन्धको मारकर तुमको बन्धनसे छुड़ाऊँगा तुम्हारे दुःख दूर करूँगा। तुम लोग अब निश्चिन्त हो जाओ।"

भगवान्‌का सन्देश पाकर सभी बन्दी नृपतिगण परम प्रमुदित हुए और वे अत्यंत ही उत्कंठाके साथ बन्धन मुक्त होनेकी इच्छासे तथा अपने जीवनको धन्य बनानेकी कामनासे भगवान्‌के आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इधर भगवान् मार्गमें स्थान स्थान पर विश्राम करते हुए इन्द्रप्रस्थकी ओर बढ़ रहे थे जहाँ भी पड़ाव पड़ता वहींके राजा आकर भगवान्‌का स्वागत सत्कार करते। भगवान्‌की पूजा करते और उनसे अपनी राजधानीमें पधारनेकी प्रार्थना करते। समीप राजधानी होती, तो भगवान् चले जाते नहीं तो फिर कभी आवेंगे, ऐसा आश्वासन देकर आगे बढ़ते। इस प्रकार वे आनर्त, सौवीर, मरुप्रदेश, मत्स्य, पांचाल तथा कुरुक्षेत्रके समृद्धि शाली देशों, नद, नदी, पर्वत, पुर ग्राम, व्रज, खेट, खर्वट तथा वनोंको लांघते हुए, सरस्वती नदीको पार

करके इन्द्रप्रस्थ के समीप पहुँच गये। अब जिस प्रकार पांडवों ने भगवान्का स्वागत सत्कार किया, उस प्रसङ्गको मैं आगे कहूँगा।"

छप्पय

करे पार आनर्त, मत्स्य, मरु देश सुघर वर।
नाघि, नदी, नद, नगर निकट पहुँचे पांडवपुर॥
सुन्यो स्याम आगमन पांडुसुत अति हरषाये।
करिवे स्वागत सकल नगर तैं बाहर आये॥
धरमराज पग परन हित, इति हरि दौरे ललकि कें।
हिय चिपटाये युधिष्ठिर, बाहु पाश महँ जकरि कें॥

पांडवों द्वारा श्यामसुन्दरका स्वागत सत्कार

(११४३)

दोर्भ्यां परिष्वज्य रमामलालयम,
मुकुन्दगात्रं नृपतिर्हताशुभः ।
लेभे परां निर्वृतिमश्रुलोचनो—
हृष्यत्तनुर्विस्मृतलोकविभ्रमः ॥*

(श्रीभा० १० स्क० ७१ अ० २६ श्लो०)

छप्पय

नयननि नीर बहाइ न्हवाये वस्त्र भिगोये ।
तनु पुलकित चित मुदित भर्‌यो हिय पुनि पुनि रोये ॥
पुनि प्रभु सब तें मिले प्रेम अतिशय प्रकटायो ।
अति विह्वल सब भये मनुज तनुको फल पायो ॥
करि स्वागत सम्मान अति, चली सवारी श्यामकी ।
चढ़ि छज्जनि नारी लखें, शोभा-शोभाधामकी ॥

---

* श्रीशुकदेवजी कहते है–"राजन्! धर्मराज युधिष्ठिरने भगवान् मदन मोहनके उस दिव्य मङ्गलमय विग्रहका दोनो भुजाओंमें आलिङ्गन किया जो लक्ष्मीजीका परम पवित्र आश्रय है । भगवान्‌के आलिङ्गनसे उनके समस्त अशुभ नष्ट हो गये और उन्हें परमानन्द प्राप्त हुआ । उनके नयनोंमें नेह का नीर भर आया, शरीर पुलकित हो गया और वे प्रेममें समस्त प्रपञ्चको भूल गये ।"

जो हमारे अत्यंत प्रिय होते है, उनके आगमनकी बात सुन--कर रोम रोम खिल जाता है। हृदय की एक विचित्र दशा होती है, आंखे चाहती हैं, उन्हें पी जावें। रसना चाहती है इन्हें चाटलें और हृदय चाहता है उन्हें अपनेमें मिलाकर एक करलें। उन्हें देखकर इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती है और मनकी दशा विचित्र हो जाती है। प्रेमीके आगमनकी सूचना सुनकर, उसे देखकर उससे मिलकर हृदयकी क्या दशा होती है यह कहनेका विषय नहीं हृदयहीन उसे कभी समझ ही नहीं सकते। केवल सहृदय उसका अनुभव ही कर सकते हैं। व्यक्त करनेकी सामर्थ्य उनमें भी नहीं होती।

सूतजी कहते है–"मुनियो! भगवान् अनेक देशोंको लाँघते हुए बहुत सी नदियोंको पार करते हुए इन्द्रप्रस्थके समीप पहुँचे। धर्मराजके सेवक तो लगे ही हुए थे, उन्होने दौड़कर सूचना दी कि भगवान् दल बलके सहित नगरके बाहर आगये।"

जिन जगन्मोहन भगवान् वासुदेवका दर्शन दुरात्माओं के लिये अत्यंत ही दुर्लभ है आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रके आगमन का शुभ समाचार सुनकर अजातशत्रु महाराज युधिष्ठिर अत्यंत ही प्रसन्न हुए। तुरन्त ही वे स्वागत सत्कारकी सुन्दर सामग्रियों के सहित, पुरोहितको आगे करके, वन्धु बान्धवोंसे घिरे हुए भगवान्की अगमानी करने चले। आगे आगे वीणा, पणव, भेरी तथा अन्यान्य मङ्गल वाद्य वजते जाते थे। वेदज्ञ ब्राह्मण वेद घोष करते जाते थे। उनका हृदय प्रेमके कारण बाँसो उछल रहा था उन्हें श्यामसुन्दरसे मिलनेकी चटपटी लगी हुई थी। इन्द्रियाँ जिस प्रकार मुख्य प्राणोंके आजानेसे चैतन्य होकर प्रसन्न हो जाती हैं, उसी प्रकार सभी लोग प्रसन्न होकर श्यामसुन्दर के आजानेसे प्रमुदित होकर उनको ओर बढ़ रहे थे।

दूरसे ही धर्मराजने देखा विशाल गरुड़की ध्वजा वाले सुवर्ण

मण्डित रथ पर पीताम्बर ओढ़े घनश्याम उसी प्रकार शोभित होते है, जिस प्रकार चन्द्रके रथ पर बिजलीसे लिपटा नूतन जल
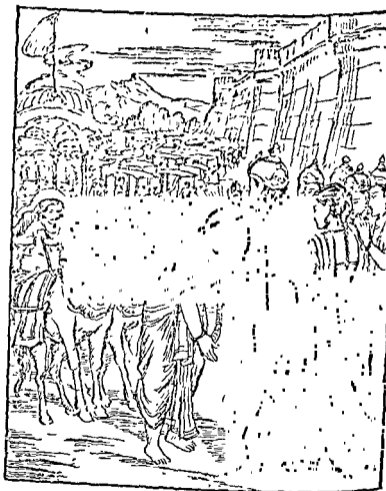
धर बैठा हो। उनके दर्शन् मात्र से ही धर्मराज अधीर हो उठे, उनका चित्त गद्‌गद् हो गया वे श्यामसुन्दर से मिलने को व्यग्र

होकर रथ से कूद पड़े और उपाध्याय के पीछे नंगे पैरों पैदल ही चले।

दूरसे ही श्यामसुन्दरकी दृष्टि पैदल आते हुए धर्मराजके ऊपर पड़ी। तुरन्त वे रथसे उछल पड़े और पूरी शक्ति लगाकर दौड़े। अपनी ओर श्यामसुन्दरको दौड़ते देखकर धर्मराजके नेत्रोंसे नेहके नीरकी दो अविरल धारायें बहने लगीं। इतनेमें ही घनश्याम पहुँच ही तो गये। वे दौड़कर ज्योंही धर्मराज के चरणोंको पकड़ना ही चाहते थे, कि त्योंही बीचमें ही उन्होंने प्रभुको पकड़कर कसकर छातीसे चिपटा लिया।

जिस हृदयमें लक्ष्मी लिपटी रहती है, जिसमें निरन्तर कौस्तुभमणि दमकती रहती है, जिसमें सुनहला श्रीवत्सका शुभ लक्षण युक्त अद्भुत चिन्ह है। उस हृदयको अपने हृदयसे सटा कर दोनों बाहुओंसे कसकर जकड़कर धर्मराज विह्वल हो गये। भगवान्‌का आलिङ्गन पाकर उन्होने अनुभव किया, मानों मेरे आज समस्त अशुभ नष्ट हो गये। उन्हें इतना अपूर्व आनन्द हो रहा था, कि वह हृदयमें समाता नहीं था। वाणी रुक गयी थी, नयनोंसे नेहके नीरकी निरन्तर झड़ीसी लग रही थी। शरीर रोमाञ्चित हो रहा था। उनकी भाव समाधि लग गयी थी। वे बाह्य जगत्‌को सर्वथा भूल गये थे, यही नही वे अपने आपको भी भूल गये थे। जैसे तैसे भगवान् उनके बाहु पाशसे पृथक् हुए। फिर प्रेमार्द्र चित्तसे वृकोदर भीमसेनने श्यामसुन्दरको हृदय से लगाया। अर्जुनकी दशा बुरी थी, वे एक वृक्षके नीचे मुख ढके हुए रो रहे थे। भगवान्‌ने स्वयं आकर उन्हें छाती से लगाया और प्रेमाश्रुओंसे उनके मुकुटके नीचे दबे बालोंको भिगो दिया। फिर नकुल सहदेव रोते रोते आकर भगवान्‌के पैरोंमें पड़ गये। भगवान्‌ने उन्हें उठाकर छातीसे लगाया उनकी धूलि झाड़ी और प्यार किया।

भगवान्‌ने इन्द्रप्रस्थसे आये हुए वेदज्ञ ब्राह्मणों को तथा अन्यान्य कुल वृद्धोंको प्रणाम किया। फिर कुरु, सृञ्जय, केकय तथा अन्यान्य देशके राजा तथा राजवंशके लोगोंने भगवान्‌ के प्रति सम्मान प्रकट किया। भगवान्‌ने भी उन सबका आदर किया और उनसे कुशल पूछी। इस प्रकार सबसे कुशल प्रश्न पूछ कर अब भगवान्‌की सवारी नगर की ओर बढ़ी। सूत, मागध, गन्धर्व, वन्दीजन तथा उपासक गण भगवान्‌के यशका गान करते हुये आगे चल रहे थे। विप्रगण वेद घोष करते हुए भगवान्‌का स्वागत कर रहे थे। शङ्ख, पणव, वीणा, वेणु, मृदङ्ग तथा गोमुख आदि बाजे एक ताल स्वरमें बजकर एक विचित्र स्वर लहरीका सृजन कर रहे थे। सभी गाकर नाचकर तथा विविध बाजे बजाकर वासुदेवकी विरुदावलीका बखान कर रहे थे।

शनैः शनैः सवारी इन्द्रप्रस्थकी ओर चली। नगरकी समस्त सड़कें झाड़ बुहार कर स्वच्छ की गई थी। उनपर सुगन्धित जल का छिड़काव किया गया था। किन्तु मदमाते हाथियोंके मदसे उस सड़कमें कीच हो रही थी। पथोंके दोनों ओर रंग बिरंगी झंडियाँ लगी हुई थी। ध्वजा पताकाओं से बड़े बड़े भवन सुशोभित हो रहे थे। चारों ओर स्नान करके सुगंधित चंदन लगाकर माला तथा स्वच्छ वस्त्र और उत्तम आभूषण धारण करके अत्यंत उत्सुकता के साथ नगर निवासी इधरसे उधर घूम रहे थे। स्त्रियाँ अटा अटारियों पर चढ़कर श्यामसुन्दरके दर्शनोंके लिये व्याकुल बनी उसी ओर अपने बड़े बड़े नयनोंसे निहार रही थी। उसी पुण्य पथसे प्रभुने नगरमें प्रवेश किया।

आज प्रभुके पधारनेके उपलक्ष्यमें नगर निवासियोंने दीपावली मनाई थी। घरोंके छज्जोंपर असंख्यों दीपक अपने ज्योतिर्को छिटकाते हुए जगमग जगमग कर रहे थे। घरोंके ओला मोला और झरोखामोंमें से कर्पूर अगुरु आदिके धूपका धूम निकल कर

वायुमंडलको सुवासित बना रहा था। भवनोंके ऊपर दमकते हुए सुवर्ण कलश अपनी उच्चताकी न्यूनताका विशाल पताकाओं की ओर निहारते हुए अनुभव कर रहे थे। श्यामसुन्दरके आगमनसे आज नगरके घर घरमें हलचल मची हुई थी। बच्चे घरमें रहना ही नहीं चाहते थे। वे अभिभावकोंके साथ बाहर चलनेको हठ कर रहे थे। स्त्रियाँ आज अपने घर गृहस्थीके आवश्यक कार्योंको भी भूल गयीं। जो रोटी कर रही थी, वह रोटी को जलती हुई ही छोड़कर छज्जे पर भाग गयी। किसीका पति पलंग पर पड़ा था, उसे पड़ा ही छोड़कर बिना पान दिये ही वह छत पर चढ़ गयी। सबका चित्त चंचल हो रहा था, सब वासुदेवके दर्शनोंको व्यग्र बनी हुई थीं। शीघ्रतामें उनके केशपाश खुल गये थे, वेणीमें गुँथीं मालाओंके पुष्प झड़ रहे थे। वस्त्रोंके बन्धन ढ़ीले पड़ गये थे। उनके नूपुर, कङ्कण तथा अन्यान्य आभूषण हिल रहे थे। दूर से ही विशाल हाथी पर लगा झंडा दिखाई दिया। सभीकी आँख उधर ही चिपकसी गयीं। इतनेमे ही खुले रथ पर बैठे हुए श्यामसुन्दर दिखाई दिये। उनके चारों ओर घुड़सवार पंक्तिबद्ध चल रहे थे। पीछे उनके सोलह सहस्र रानियाँ शिविकाओंमें आरही थीं। शिविकाओंके द्वारों पर अत्यंत क्षीण वस्त्र पड़े थे, जिनमें से बाहरका सब दृश्य दिखायी देता था। शिविकाओंके पीछे बड़े डील डौल वाले हाथी चल रहे थे उनके पीछे पंक्तिबद्ध रथोंकी शृंखला बन्धी हुई थी।

श्यामसुन्दरकी मनोहर मूर्तिको निहार कर अटा अटारियों पर चढ़ी नगरकी नारियाँ अत्यंतही प्रसन्न हुईं। उन्होंने भगवान्के ऊपर सुमनोंकी वर्षा की। उनके फेंके हुए पुष्पोंसे श्यामसुन्दर ढकसे गये। भगवान्की मनोमयी मूर्तिका मानसिक आलिङ्गन करके उन्होंने परमानन्द सुखका अनुभव किया। वे बारम्बार अपनी उत्कृष्ट मनोहर मंद मुस्कानमयी चितवनसे श्यामसुन्दर-

का स्वागत कर रही थीं।

भगवान्‌की स्त्रियाँ अपनी बड़ी बड़ी आंखोंसे शिविका के छिद्रों द्वारा अटा अटारियों पर बैठी नगरकी नारियों को देख रहीं थीं। उन ऊपर बैठी हुई नागरियों को भी उनकी आँखें खिले हुए ताराओंके समान दिखाई देतीं। कभी कभी उनका मनोहर मुख भी दीख जाता। भगवान् ऐसे लगते थे मानों आगे आगे चन्द्रमा चल रहा हो और पीछे ताराओं के झुंड उनका अनुगमन कर रहे हों।

श्रीकृष्ण की सोलह सहस्र पत्नियोंके ऐसे सौभाग्यको देखकर नगर की नारियाँ परस्परमें कहने लगीं—"सखियो ! स्त्री होनेके परम फलतो इन श्रीकृष्ण की पत्नियोंने ही पूर्णतया प्राप्त किया है न जाने इन सौभाग्य शालिनी महिलाओने ऐसे कौनसे अवर्ण नीय धर्म पुण्य तथा नियम व्रतादि किये हैं, जिनके फलस्वरु इन्हें पुरुषोत्तम पति प्राप्त हुए हैं, जो नित्यही अपनी उदार हँसी मनमोहिनी मधुर लीलामयी चितवनके लेशसे इनके उत्फुल्ल नलि नीके सदृश आंखोंको अनवरत आनन्द प्रदान करते रहते है।"

नगरकी स्त्रियाँ इस प्रकार प्रभुपत्नियोंके भाग्यकी प्रशंसा करते जातीं थी श्यामसुन्दर सुन लेते तो हंस पड़ते। बहुतसे लोग उनकी आरती उतारते। बहुतसे सवारीको खड़ी करके उनको उपहा अर्पण करते और बहुत चंदन फूल माला तथा अन्यान्य सामग्रिये से उनका स्वागत सत्कार करते। इस प्रकार शनैः शनैः सवारी राजभवनके द्वार पर पहुँच गयी। वहाँ पहुँच कर भगवान् रथसे उतर पड़े। वे पाडवोंसे घिरे हुए सर्व प्रथम कुन्तीजी से मिलने अन्तःपुर की ओर चले। बाजोंकी ध्वनि सुनते ही कुन्तीजी अपने बहू द्रौपदीके साथ द्वार पर खड़ी हुई थीं। भगवान्‌ने आगे ब कर अपनी बुआके पैर छुए। अपने भाई वसुदेवजीके पुत्र त्रिलो कीनाथ भगवान् वासुदेवको अपने पैर छूते देखकर कुन्तीजी क

हृदय भर आया। उन्होंने स्नेह भरित हृदयसे श्यामसुन्दरको उठा कर छातीसे चिपटा लिया और प्रेम पूर्वक उनका सिर सूँघा। द्रौपदी और सुभद्राने आकर भगवान्‌को प्रणाम किया। दोनों के सिर पर भगवान्‌ने हाथ रखकर कहा—"अच्छी हो ?" यह सुनते ही दोनोंके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु झरने लगे।

भीतर जाकर धर्मराज युधिष्ठिरने भगवान्‌की पूजा की। वे प्रेममें इतने विह्वल हो गये कि आनन्दोद्रेकके कारण पूजाका क्रम-ही भूल गये। भगवान्‌ने अन्तःपुरकी बड़ी बूढी स्त्रियोंको विप्र पत्नियोंको प्रणाम किया। रानियोंकी शिविकायें बाहर लगी थीं। कुन्तीजी को सहसा पालकियाँ दीख गयी। वे द्रौपदी सुभद्रा से बोली—"बहुओ ! तुम यहाँ खड़ी खड़ी क्या कर रही हो। जाओ, अपनी भाभियों को उतार कर लाओ भीतर।"

हंसकर सुभद्राजी बोली—"माताजी ! हमारी एक दो भाभी थोड़े ही है। इतनी है कि आपके सब घरोंमें न अटेंगी। पूरी सोलह सहस्र एकसौ आठ हैं।"

स्नेहके साथ कुन्तीजी ने कहा—"तो क्या हुआ, यह तो बड़े भाग्यकी बात हैं। वहाँ महलोंमें रहती होंगी, यहाँ बाहर ही दिन काट लेंगी। वहाँ चुपड़ी खाती होंगी यहाँ रूखी सूखीसे ही निर्वाह कर लेंगी। तुम जाकर उन्हें अर्घ्य तो दो। शिविकाओंसे उतारो तो सही।"

यह सुनकर द्रौपदी और सुभद्रा गयीं जाकर पालकियोंके पास कहने लगीं—"भाभियों ! अब उतरो ! यहाँ कोई पुरुष नहीं है घूँघट खोल दो।"

यह सुनकर रुक्मिणी आदि सब रानियाँ उतर पड़ीं। वे अपनी ननदोंसे परस्परमें मिली भेंटी।"

रुक्मिणीजी ने सुभद्राजी से कहा—"बीबी ! तुम तो बड़ी दुबली हो गई हो। यहाँ कोई कष्ट है क्या ?"

सुभद्राने आँसू पोंछते हुए कहा—"यहाँ मेरी भाभियाँ नहीं हैं यही सबसे बड़ा कष्ट है। अब इतना स्नेह करने वाली भाभियाँ आगयी है। अब शीघ्रही मोटी हो जाऊँगी।" इस प्रकार आपस में स्नेहके प्रेमकी बातें होती रही फिर द्रौपदीजी रुक्मिणी, सत्यभामा, भद्रा, जाम्बवती, कालिन्दी, मित्रविन्दा, लक्ष्मणा, सत्या तथा अन्यान्य सभी श्रीकृष्ण पत्नियोंको लेकर अपनी सासके पास गयी। सबने जाकर कुन्तीजी के पैर छुए। कुन्तीजीने कहा—"बेटियो! तुम अपने पति की प्यारी हो, जैसे तुम सहस्र हो ऐसेही तुम्हारे सहस्र सहस्र पुत्र हों।"

यह सुनकर सभी पांडव तथा अन्यान्य लोग हँसने लगे। अर्जुनने कहा—"माताजी! प्रत्येक स्त्रीके लिये एक-एक गाँव बसवा दो। तभी तो इन सबके पुत्र रह सकेंगे, नहीं तो इतने लड़के रहेंगे कहाँ?"

कुन्तीजी ने कहा—"भैया, सबका भाग्य सबके साथ रहता है।" ऐसा कह कर कुन्तीजी ने द्रौपदी को संकेत किया। द्रौपदी जीने सुभद्रा आदिकी सहायतासे भगवान्‌की
वस्त्र, माला, और आभूपणादिसे पूजा की।
स्वागत सत्कार करके उन्हें रहनेके लिये स्थानादि दिये।

धर्मराज युधिष्ठिरने भी भगवान्‌के सैनिक, सेवक, सचिव तथा अन्यान्य अनुचर वर्गोंके ठहरने आदिकी समुचित व्यवस्था की। वे सबके सब इन्द्रप्रस्थमें उसी प्रकार सुखसे रहने लगे, जैसे देवता स्वर्गमें सुखसे रहते हैं। भगवान् भी इन्द्रप्रस्थमें आकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। यहाँ प्रसन्नता का प्रधान कारण अर्जुनका सहवास था। अर्जुनको भगवान् प्राणोंसे भी अधिक प्यार करते थे। वे उन्हें साथ लेकर मृगयाके निमित्त दूर तक जाते, तथा नाना प्रकार की क्रीड़ायें किया करते।

भगवान्‌की वे सोलह सहस्र रानियाँ नित्य नये वस्त्राभूपण

पहिन कर छम्म छम्म करती हुयी इधरसे उधर घूमतीं । धर्मराज और भीमसेन आते तो वे तुरन्त घूँघट मार लेतीं । अर्जुन को भी देखकर घूँघट मारतीं, एक दिन उन्होने कहा—"घूँघट तो जेठोंसे मारा जाता है, मैं तो श्रीकृष्णचन्द्रसे छोटा हूँ, मुझसे घूँघट मारने का क्या काम ?"

इस पर हँसकर धर्मराज बोले—"भैया ! हमही सिंह व्याघ्र हैं, कहो तो हम भीतर आया ही न करें । वास्तवमें तो श्रीकृष्णचन्द्र जगतके पिता है, इन सौभाग्य शालिनी देवियोंको तो किसी से घूँघट मारना ही न चाहिये । सभी इनकी सन्तान ही है ।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार अपनी पत्नियों के सहित भगवान् इन्द्रप्रस्थमें रहकर नित्य नूतन सत्कार पाते हुए सुख पूर्वक निवास करने लगे । कई महीनों तक तो धर्मराजने राजसूय यज्ञ की चर्चा ही नहीं की । जब कुछ दिन हो गये, तब उन्होंने एक दिन अवसर पाकर बड़े संकोचसे राजसूय यज्ञ का भगवान्के सम्मुख प्रस्ताव रखा । इस प्रसङ्ग का वर्णन मैं आगे करूँगा ।"

छप्पय

महलनि पहुँचे श्याम पैर कुन्तीके पकरत ।
लीये हिये लगाय सुभद्रा कृष्णा रोवत ॥
सबकी पूछी कुशल शिशुनि कूँ आशिष दीन्ही ।
प्रभु पत्निनि गृह लाइ द्रौपदी पूजा कीन्ही ॥
यों अति ई सम्मान युत, इन्द्रप्रस्थ महँ प्रभु रहत ।
अरजुनके संग सरस शुभ, सुखप्रद नित कीड़ा करत ॥

—*—

राजसूय यज्ञ का प्रस्ताव

(११४४)

मतुराजेन गोविन्द राजसूयेन पावनीः।
यक्ष्ये विभूतीर्भवतस्तत्सम्पादय नः प्रभो॥
(श्रीभा० १० स्क० ७२ अ० ३ श्लोक)

छप्पय

धरमराज इक दिवस सभा महँ बैठे सब सँग।
शोभा लखि घनश्याम होहिँ पुलकित सब अँग अँग॥
बोले-"हम हरि! राजसूय मख करिकैं तुम कूँ।
पूज्यो चाहैं विश्वनाथ! अपनावें हम कूँ॥
अति प्रसन्न सुनि हरि भये, बोले-'यह संकल्प वर।
राजसूयमें तृप्त सब, होहिँ विप्र, सुर, पितर, नर॥

अपने स्वामीको अनुकूल देखकर अपनी हार्दिक इच्छा व्यक्त करनेकी अभिलाषा उत्पन्न होती है। विनयके साथ उनके चरणोंमें निवेदन करते है। यदि हमारी इच्छा का वे भी प्रसन्नता पूर्वक समर्थन करें, तो हमें अत्यंत आनन्द होता है और उस समय ऐसा

---

*श्रीशुकदेवजी कह रहे हैं—"राजन्! अवसर पाकर एक दिन धर्मराज युधिष्ठिर ने भगवान्से प्रार्थनाकी-"हे गोविन्द! मैं यज्ञोंमें श्रेष्ठ राजसूययज्ञ द्वारा आपकी परम पावनी विभूति रूप इन्द्रादि देवोंका यजन करना चाहता हूँ, सो हे प्रभो! इसकी आप व्यवस्था करदें। मेरी इच्छाको पूर्ण करा दें।"

अनुभव होता है, मानों हमारी इच्छा पूर्ण हो गयी हमारा संकल्प मूर्तिमान् होकर हमारे सम्मुख उपस्थित हो गया। स्वामीके अनुकूल होने पर ऐसी कौन सी इच्छा रहती है जो पूर्ण न हो।

सूतजी कहते है—"मुनियो! इन्द्रप्रस्थमें रह कर भगवान् सभी को सुख देने लगे। एक दिन सभा लगी हुई थी। सभामें बड़े बड़े ऋषि मुनि, विद्वान् ब्राह्मण,क्षत्रिय, वैश्य, पुरोहित, कुलवृद्ध तथा पाँचों पांडव बैठे थे। राजसिंहासन पर धर्मराज युधिष्ठिर विद्यमान् थे। उनके समीप ही सुवर्णके सुन्दर सिंहासन पर श्यामसुन्दर सुख पूर्वक बैठे हुए थे। भगवान् आज अत्यंत प्रसन्न थे। वे अत्यंत स्नेहके साथ हँस हँस कर बातें कर रहे थे। आज भगवान्‌को अत्यत अनुकूल देख कर धर्मराजको आज कुछ कहने का साहस हुआ। वे सबके सम्मुख सबको सुनाते हुए भगवान्‌से बोले—"प्रभो! मैं एक निवेदन करना चाहता हूँ, आज्ञा हो तो करूँ?"

भगवान्‌ने कहा—"महाराज! आप कैसी बात कह रहे हैं। मैं तो आपका सेवक हूँ। आज्ञा कीजिये।"

आँखोंमें आँसू भर कर धमराज बोले—"क्यों न हो- प्रभो! आप तो अपने आश्रितोंके अधीन ही है उनकी समस्त इच्छाओं को आप पूर्ण करने वाले है। मेरी एक हार्दिक इच्छा है, कि आपके जो ये अंशभूत इन्द्र, वरुण, कुबेर तथा अन्यान्य देवता हैं, उनका, यज्ञोंमें सर्वश्रेष्ठ राजसूययज्ञ द्वारा मैं यजन करना चाहता हूँ। मेरी चिरकालकी यह अभिलाषा है। इसे पूर्ण करना आपके ही अधीन है।

अत्यंत प्रसन्नता प्रकट करते हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले—"हे शत्रुकर्षन! हे पांडुनन्दन! आपके लिये राजसूय यज्ञ करना कौन सी बड़ी बात है। आपका विचार अति उत्तम है। आपको राजसूय यज्ञ अवश्य करना चाहिये। इससे आपकी

मङ्गलमयी कीर्ति समस्त लोकोंमें सर्वत्र फैल जायगी।"

गद्‌गद कठसे महाराज युधिष्ठिरने कहा—"प्रभो! मैं तो यन्त्र हूँ, कराने वाले यन्त्री तो आप हैं। कठपुतलियोंको नचानेवाले की प्रशंसा होती है। काठकी कठपुतलियोंकी कोई प्रशंसा नही करता। हम आपके भक्त हैं अनुरक्त हैं आपकी परम पावन चरण पादुकाओंका सेवन करने वाले हैं आपकी पापनाशिनी पुण्यमयी कथा की निरन्तर श्रवण करने वाले हैं, तथा आपको मनमोहिनी मधुर मूर्तिका निरन्तर ध्यान करने वाले हैं। इसका जो भी श्रेय होगा वह तो आपको ही प्राप्त होगा। आप कह सकते हैं, कि जब हमें ही कराना है, तो फिर हम तुम्हारे ही द्वारा क्यो करावें। सो हे यदुनन्दन! आप इस यज्ञको हमारे द्वारा कराके संसारके सम्मुख एक उत्तम आदर्श उपस्थित करेंगे। कुरुवंशी, सृञ्जयवंशी तथा अन्यान्य भूमण्डलके राजा यह बात प्रत्यक्ष देखेंगे, कि आप अपने आश्रितोंकी समस्त इच्छाओंको पूर्ण करते है, यदि वे भोग चाहते है, तो उन्हें संसारके दुर्लभसे दुर्लभ उत्तमसे उत्तम भोग प्राप्त होते हैं और अतमें वे संसार सागरसे मुक्त भी हो जाते हैं। हमारे द्वारा राजसूय यज्ञ सम्पन्न कराके आप इस बातको दिखा देंगे कि आपके चरण कमलोंकी सेवाका प्रभाव क्या होता है और जो आपकी सेवा नही करते इनकी दशा क्या होती है।

हँसकर भगवान् बोले—"महाराज! मेरी तो न किसीसे शत्रुता है न मित्रता। कौरव कहें तो मैं उनकी भी सहायता करूँगा। आप कहें तो मैं आपकी सेवा करूँगा। मेरे तो सभी सुहृद है,सभी समान रूपसे सम्बन्धी हैं।"

शीघ्रताके साथ धर्मराजने कहा—"नहीं नहीं भगवन्! मेरा यह अभिप्राय नही है, कि हम आपके प्रिय हैं तो आप हमारे इष्टकार्य करेंगे और दूसरे आपके शत्रु हैं, तो आप उनका

अ।नष्ट करेंगे। आप तो समदर्शी हैं, सर्वात्मा हैं, सर्वेश्वर हैं तथा आत्मानुभवस्वरूप परब्रह्म है। यह मेरा है यह पराया है, इस प्रकारका भेदभाव आपमें है ही नही। आपके विना जिसकी स्थिति हो वह पराया हो भी सकता है। सभी तो आपकी माया का वैभव है। फिर आपमें अपने परायेका भेद भाव कैसे हो सकता है। फिर भी प्रभो! गंगाजी सबके लिये सुलभ हैं,वे किसी को अपने समीप आनेको, जलपान करने तथा नहानेको आनेके लिये मना नही करतीं। तो भी सभी उनके समीप नहीं आ सक्ते जो आता है वह यथेष्ट जलपान स्नानादि करके पापोंसे छूट जाता है। अग्निके समीप जो आता है उसीका शीत दूर हो जाता है, सबके लिये वह सुलभ है किन्तु जो उसके समीप आवेगा ही नही उसका शीत अग्नि कैसे दूर करेंगे। कल्पवृक्षके नीचे जो भी जाता है उसी की वह इच्छा पूर्ण करता है। इसी प्रकार यद्यपि आपके लिये सब समान है। सर्व भूतोंके आप सखा है सुहृद् है तथापि जैसे कल्पवृक्षकी सेवा करने वाले और न करने वालेको उनकी भावनाके अनुसार न्यूनाधिक फल मिलता है, उसी प्रकार भक्तोंको और अभक्तोंको उनकी भावनाके अनु-सार न्यूनाधिक फल मिलता है। इससे आपके समदर्शीपने में अन्तर नहीं आता। न आपका इससे भेदभाव ही प्रकट होता है।"

यह सुनकर भगवान् बोले—"हाँ, राजन्! आपका विचार अति उत्तम है। राजसूय यज्ञसे कल्याण ही कल्याण है। यह यज्ञ सभी यज्ञोंमें श्रेष्ठ है। इस यज्ञमें देवताओंका पूजन होगा,पितरोंका श्राद्धतर्पण होगा, ऋषि मुनियोंका स्वागत सत्कार होगा, ब्राह्मणों को विपुल दक्षिणा मिलेगी, राजाओंका समागम होगा हम परि-वार वालोंको मालटाल मिलेगा। इसमें सभी का कल्याण ही कल्याण तो है।"

धर्मराजने कहा—"तब, यदुनन्दन ! यह यज्ञ हो कैसे ?"

भगवान्‌ने बात पर बल देकर कहा—"इसमें न होने की कौन सी बात है। आपके चारों भाई बली हैं शूरवीर हैं, गुणज्ञ हैं, आज्ञाकारी हैं और आपमें भक्ति रखते हैं इन्हें दिग्विजयके लिये चारो दिशाओंमें भेजिये। भूमण्डलके सब राजाओंको जीत कर समुद्रान्त पृथिवीको अपने वशमें करलें। तब यज्ञकी समस्त सामग्रियोंको एकत्रित करलें। होने लगे स्वाहा स्वाहा इसमें देर *करने की कौन सी बात है ?"*

धर्मराजने कहा—"केशव ! भूमण्डलके समस्त राजाओंको जीत लेना तो कठिन है।"

हँस कर भगवान् बोले—"कठिन क्या है राजन् ! जब आपने मुझे जीत लिया, तो फिर इन तुच्छ राजाओंको जीत लेना तो कोई बात ही नहीं। आपके ये चारों भाई लोकपालोंके अशोंसे उत्पन्न हुए हैं। आप तो साक्षात् धर्म ही हैं। आप सब तेजस्वी है, मनस्वी है, इसीलिये आपने मुझे जीत लिया है। जो इन्द्रियों सहित मनको जीत लेता है, उसके वशमें मैं भी हो जाता हूँ, जो अजितेन्द्रिय है, इन्द्रियोंके अधीन हैं, उनसे तो मैं कभी जीता ही नहीं जा सकता। मेरे भक्तके लिये संसारमें कुछ भी दुर्लभ नहीं। बड़े बड़े सर्वसमर्थ चक्रवर्ती अथवा देवता भी मेरे भक्तका तेज, यश लक्ष्मी अथवा विभूति द्वारा तिरस्कार करना चाहें तो नहीं कर सकते। फिर इन साधारण राजाओंकी तो बात ही क्या है। इस लिये आप निर्भय होकर राजसूय यज्ञकी तैयारियाँ कीजिये। अपने भाइयोंको दिग्विजयके निमित्त भेजिये।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! भगवान्‌की यह बात सुन कर धर्मराज युधिष्ठिरको बड़ा हर्ष हुआ। प्रसन्नताके कारण उनका मुखारविन्द खिल उठा। उन्होंने अपने भाइयोंसे पूछा—"कहो, भाई। तुम लोगोंकी क्या सम्मति है ?"

चारों भाइयों ने कहा–"महाराज ! हम तो आपके आधीन हैं, हमें तो आप जैसी आज्ञा देंगे, वैसा ही करेंगे। आप सम्राट् पद के सर्वथा योग्य है, हम चारों आपके सेवक हैं और हम सबके रक्षक पालक और सर्वस्व सर्वेश्वर श्रीकृष्ण हैं, फिर हमें किस बात का भय है, आप हमें दिग्विजय के लिये आज्ञा दें। हम सब श्रीकृष्ण के तेज के प्रभाव से सब कुछ करने में समर्थ हैं।"

अपने भाइयों की ऐसी उत्साह वर्धक बातें सुनकर धर्मराज के हर्षका ठिकाना नही रहा। उन्होने भगवान् के तेजसे बढ़े हुए अपने चारों भाइयों को चारों दिशाओं में दिग्विजय के निमित्त भेजा। भीमसेन को मद्रदेशीय बीरों के साथ पूर्व दिशाके राजाओं को जीतने के निमित्त भेजा। पश्चिम में मत्स्यदेशीय राजाओं के साथ नकुल को भेजा, उत्तर में केकय देशीय राजाओं के साथ अर्जुन को तथा दक्षिण में सृञ्जय देशीय वीरों के साथ सहदेवजी को भेजा। ये सभी सैन्य सजाकर सब राजाओं को वश में करने के निमित्त चले। सब लोग शूरवीर थे, बली थे उत्साही थे, उन्होंने सभी देशों के राजाओं को अपने बाहुबल से जीत लिया। उनसे यज्ञ के निमित्त बहुत सा धन ले आये। वह सब राजाओं से प्राप्त धन उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिर को दिया।

सभी ने आकर अपनी अपनी दिशाओं के राजाओं के आकर नाम गिनाये, कि हमने अमुक अमुक राजाओं को अपने वश में करके उनसे कर रूपमें धन प्राप्त किया। उसी अवसर पर भीमसेनने आकर कहा—"महाराज ! मैंने और सब राजाओंको तो जीत लिया है, केवल जरासन्ध नही जीता गया। उसका बल अजेय है। शिशुपाल उसका सेनापति है तथा और भी बहुत से राजा उसकी सेवामें सदा संलग्न रहते हैं। अतः उसे जीतना बहुत कठिन है।"

यह सुन कर धर्मराजने जिज्ञासा भरी दृष्टिसे श्यामसुन्दरकी ओर निहारा। धर्मराजके अभिप्राय को समझ कर भगवान् वासुदेव कहने लगे—"मैंने तो पहिले ही कहा था, एक जरासन्ध ही हमारे लिये राजसूयमें कंटक है। शिशुपाल उसका सेनापति बन गया है दन्तवक्र,मेघवाहन और करभ ये राजा भी उसके अनुयायी हैं। पौंड्रक जो अपने को वासुदेव कहता था,उसे तो मैंने मार ही दिया। कंस भी श्वसुर के नाते से उसमें भक्ति रखता था,उसे भी मैंने मार डाला। इसके हंस और डिम्भक दो राजा प्रधान सहायक और सेनापति थे इन दोनों को ब्रह्माजी से वर भी प्राप्त था। उन दोनों को भी मैंने छल से यमुनाजी में डुबाकर परलोक पठा दिया। अब यही एक कंटक बचा है। मुझ से उद्धवजी ने कहा है—"यह सेना द्वारा किसी प्रकार नहीं जीता जा सकता। इसके जीतने का एक ही उपाय है ?"

उत्सुकता के साथ धर्मराज ने पूछा—"वह कौन सा उपाय है, वासुदेव !"

भगवान् बोले—"आप अर्जुन और भीम को मुझे दे दें सब काम बन जायगा। हम तीनों भाई जाकर उसे जीत लावेंगे।"

आँखों में आँसू भर कर धर्मराज ने कहा—"वासुदेव ! यह आप कैसी बातें कह रहे हैं। मेरा राजपाट, परिवार सब भाई तथा मेरा शरीर सभी आपका है। हम सबका जीवन आपके अधीन है। आप जो चाहें सो करें। देना क्या ? हम सब तो आपके यन्त्र हैं, जैसा चाहें वैसे उपयोग करें। किन्तु मैं जानना चाहता हूँ आप तीनों जाकर उसे कैसे जीत लेंगे। सेना साथ में आप क्यों नहीं लेजाना चाहते ?"

भगवान् ने कहा—"सेना तो उसके पास इतनी है, कि सैकड़ों वर्षों तक वह युद्ध कर सकता है। हम लोग भी उसके डर से ही

मथुरा पुरी छोड़कर द्वारका में भाग आये।" इसलिये सेना लेकर जाना तो व्यर्थ है। हम उसे छल से जीतेंगे। आप से ब्योरा क्या बतावें हम जैसे होगा उसे मारकर आवेंगे।"

आँसू पोंछते हुए धर्मराज ने कहा—"श्यामसुन्दर! अर्जुन और भीम मेरी दोनो आँखों के समान है और आप अन्तःकरण है। आपका कुछ अनिष्ट हुआ तो मैं जीवित नहीं रह सकता। आप कहते हैं—"हम उसी के भय से मथुरा छोड़कर भाग आये।" तो उसे जीतने में सन्देह है। सन्देह वाली बात क्यों की जाय! आपको सन्देह में डालकर मैं सम्राट् बनना नही चाहता। राजसूय यज्ञ न करके मैं कोई और क्षत्रियोचित यज्ञ करलूँगा।"

भगवान् ने अपनी बातपर बल देते हुए कहा—"राजन्! आप मेरे ऊपर विश्वास करें। सन्देह की कोई बात नही। आप भीमसेन और अर्जुन को मेरे साथ कर दे हम तीनों अवश्य ही उसे मारकर बन्दी राजाओ को उसके बन्धन से मुक्त करेंगे। वे सबके सब आपके यज्ञ में नाना भाँति की भेंट लेकर आवेंगे।"

यह सुनकर गद्गद् वाणी से धर्मराज ने कहा—"प्रभो! जब आप आज्ञा ही दे रहे हैं, तब मुझे सन्देह ही क्या हो सकता है, आप जैसा उचित समझें वैसा करें।"

सूतजी कहते है—"मुनियो! धर्मराज की अनुमति पाकर भगवान् परम प्रसन्न हुए। उन्होंने भीमसेन और अर्जुन से कहा—"भैया! अब देर करने का काम नहीं है। आप लोग शीघ्र ही जरासन्ध की राजधानी मगधदेश के लिये प्रस्थान करें। वहाँ से हम उसका अन्त करके ही लौटेंगे। भगवान् की आज्ञा पाकर दोनों भाई तुरन्त तैयार हो गये। ब्राह्मणों ने तीनों का स्वस्त्ययन किया और वे तीनों ही मगध देश की ओर चल दिये। अब जैसा जाकर वे जरासन्ध से कपट व्यवहार करेंगे उसका वर्णन मैं आगे करूँगा।"

छप्पय

अच्युत अनुमति पाइ बन्धु दिगविजय करन हित।
पठये चारिहु दिशनि गये सेना सँग उत इत ॥
सब नृप जीते किन्तु न जीत्यो जरासन्ध जब।
उद्धवजीकी युक्ति बताई वासुदेव तब ॥
हरि बहु विधि समुझाइकें, धरमराज सहमत किये।
सग भीम अरजुन लिये, गिरिव्रज कूँ सब चलि दिये,॥

भीम अर्जुन सहित भगवान्‌का मगध में प्रवेश

(११४५)

भीमसेनोऽर्जुनः कृष्णो ब्रह्मलिङ्गधरास्त्रयः।
जग्मुर्गिरिव्रजं तात बृहद्रथसुतो यतः ॥*
(श्रीभा० १० स्क० ७२ अ० १६ श्लो०)

छप्पय

माला चन्दन धारि कपट द्विज वेष बनायो।
मगध देश महँ पहुँचि अलख नृपद्वार जगायो॥
जरासन्ध अति विप्र-भक्त सेवक अतिथिनिको।
अतिथि योग्य अति समुझि कियो बहु आदर इनिको॥
छलिया कपटी कृष्णने, मगधेश्वर कूँ ठगि लयो।
द्वन्दयुद्धको वर लह्यो, तब अपनो परिचय दयो॥

संसारमें सब काम केवल बलके भरोसे ही नहीं हो सकते। बल हो और बुद्धि तथा नीति न हो. तो उस बलसे विशेष लाभ

*श्रीशुकदेवजी कहते है—"राजन् ! ब्राह्मणोकासा वेष बनाकर भीमसेन, अर्जुन और श्रीकृष्ण ये तीनों ही उस गिरिव्रज नामक दुर्गमें गये, जहाँ राजा बृहद्रथ का पुत्र जरासन्ध रहता था।"

नहीं। नीतिज्ञ पुरुष बलशालीको बुद्धिमानीसे वशमें कर सकते है। मनुष्य अपनी नीतिके ही बलसे बड़े बड़े सिंहोंको बड़े बड़े मदोन्मत्त हाथियोंको अपने वशमें कर लेता है। नीतिज्ञ पुरुष बल के सहारे सब कुछ कर सकता है, किन्तु केवल बल और नीतिसे भी तब तक काम नहीं चलता जब तक भाग्यमें 'जय' न हो। दुर्योधन बली भी था, बुद्धिमान नीतिज्ञ भी था, किन्तु उसके भाग्यमें जय नही थी। जहाँ जाता था, वही पराजित होता था। गन्धर्व उसे पकड़ ले गये, धर्मराजने उसे छुड़ाया। महाराज विराट्की गैयोंको हरने जब भीष्म, कर्ण तथा द्रोणादि वीरोको लेकर उनकी राजधानीमें घुस गये और जब वृहन्नला वेपधारी अर्जुनसे लड़ाई हुई तो वहां भी दुर्योधनकी पराजय ही हुई। महाभारत युद्धमें दुर्योधनके पास ग्यारह अक्षोहिणी सेना थी। विश्वविजयी भीष्म, द्रोण, कर्ण तथा शल्य ऐसे विख्यात वीर सेनापति थे किन्तु भाग्यमें जय न होनेसे उसकी पराजय ही हुई। इसके विपरीत अर्जुनके भाग्यमें 'जय' थी। वे जहाँ भी जाते विजय प्राप्त करके आते। यहाँ तक कि जिन निवात कवचोको देवता तथा देवताओंके राजा इन्द्र भी न जीत सके उन्हें अकेले अर्जुनने जाकर जीत लिया। यह सब भगवान्की कृपा थी। भीमसेनमें बल तो विपुल था किन्तु बुद्धि और नीति की उनमें कमी थी। जो अधिक भोजन भट्ट होते है, उनमें प्रायः बुद्धिकी न्यूनता रहती है। हमारे इन टेढ़ी टाँगवाले श्रीकृष्ण-चन्द्रमें बल कितना है इसका तो किसीको पता नही किन्तु नीतिमें तो ये ऐसे निपुण हैं कि अच्छे अच्छोके कान काटते हैं। छल कपट करनेमें ये ऐसे सिद्धहस्त हैं कि ससारमे इनकी बराबरी करने वाला ढूँढ़ने पर भी न मिलेगा। सबसे बड़े मायावी हैं। जिस कामको सहस्रो बली नही कर सकते उसे ये ऐसी युक्तिसे कर लेते है कि न सांप मरे न लाठी टूटे। काम भी बन जाय और

अपने ऊपर आंच भी न आवे। जालन्धरको कैसे छलसे मरवा दिया, कालयवनको कैसी युक्तिसे भस्म करा दिया। भस्मासुरको कैसी उलटी पट्टी पढाकर उसीके हाथोंसे उसका अन्त करा दिया। महाभारतमें पग पग पर इन्होंने छल कपट किया। किसी भी प्रकार युद्धमें न मरने वाले भीष्म, द्रोण और कर्णको किस प्रकार छलसे मरवा दिया। इसलिये ससारमें इनसे बड़ा छलिया-कूट नीतिज्ञ कोई नहीं। जरासन्ध न केवल बलसे मारा जा सकता था न केवल छलसे। उसके लिये छल, बल और विजय तीनोंकी आवश्यकता थी। पांडवोंमें बल भी था, विजय भी थी किन्तु नीतिकी कमी थी। सो इसके भंडार ये चोर जार शिखामणि श्रीकृष्णचन्द्र आ गये। तीनों जब एक स्थानमें मिलगये, तब तो किसी भी कार्यके सिद्ध होनेमें सन्देह नही।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! धर्मराज युधिष्ठिरकी अनुमति पाकर भगवान् वासुदेव भीम और अर्जुनको साथ लेकर मगध देशकी ओर चल दिये। उन्होंने अपने साथ कोई भी अस्त्र शस्त्र नहीं रखा। तीनों ही ने ब्राह्मणोंका सा कपट वेष बना लिया। तीनों ही तिलक छापे लगाकर रामनामी दुपट्टा ओढ़कर भिक्षुक ब्राह्मण बन गये। मुनियो! यह ब्राह्मणका वेष ऐसा है कि इसमें सभीका समावेष हो जाता है। जहाँ अस्त्र शस्त्र कुंठित हो जाते हैं वहाँ इसी वेषसे काम निकाला जाता है। असुरराज बलिको जब किसीभी प्रकार न जीत सके तो भगवान्‌ने भी बौंने वामनका वेष बनाया था। भगवान्‌को जब भी काम पड़ता है, वृद्ध ब्राह्मणका वेष बनाकर पहुँच जाते हैं। पहले तो अपने ही बनते थे। अबके अर्जुन और भीमको भी बनावटी ब्राह्मण बना दिया। तीनों ही कुरु जांगल देशसे चलकर गङ्गा, यमुना, सरयू, शोण आदि पवित्र नदियोंको लाँघकर पांचाल, कान्यकुब्ज, मत्स्य, कोशल, करुप, काशी, मिथिला तथा अन्यान्य राज्योंमें होकर मगध राज्यकी

सीमामें पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक छोटेसे गोरथ नामक पर्वतको देखा जो मगध देशमे फैला हुआ है। उस पर चढ़कर भगवान्ने भीमसेन तथा अर्जुनको नाना वृक्षोसे सुशोभित तथा बहुतसे फलवान वृक्षोंसे युक्त मगध देशकी राजधानी को दिखाया।

मगध देश एक बहु जलपूर्ण समृद्धशाली देश है, उसमें धान बहुत उत्पन्न होते हैं। ऊँचेपर चढ़कर धानोंकी फली फूली खेती को देखकर ऐसा लगता है मानो पृथिवीको किसीने हरे रँगसे रँग दिया हो। गिरिव्रजके किलेको पाँच छोटी छोटी पहाड़ियोने घेर रखा है। जिसके ऊपर जंगली लतायें छायी रहती हैं। यह देश शत्रुओंसे सदा सुरक्षित रहता है। उस समृद्धिशाली देशमे ही जरासंध राज्य करता था और उसी चारों ओरसे पहाड़ोसे घिरे किलेमें उसने राजाओंको वन्दी बना रखा था।

भीम अर्जुन और भगवान् तीनों पहाड़ पर चढकर मगध देशकी राजधानीकी नयनाभिराम शोभाको निहारते रहे। उसके भीतर उष्ण जल तथा शीतजलके बहुतसे स्रोत भी थे। भगवान्ने भीम अर्जुनसे कहा—"देखो, भाई! हम जरासंधके यहाँ शत्रुभावसे चल रहे है। मित्र भावसे चलते तब तो प्रधान द्वारसे जाना उचित था। शत्रुको सीधे मार्गसे न जाना चाहिए। किलेकी दिवाल को तोड़कर विपरीत मार्गसे जाना चाहिए।"

दोनों भाइयोंने कहा—"जैसी आप आज्ञा दें। हम तो आपके आधीन है। यह सुनकर भगवान् उन दोनो भाइयोंके साथ पीछेसे चैत्यक पर्वतके ऊपर चढ़ गये। उसके ऊपर तीन बड़े बड़े नगाड़े रखे थे। जरासंधके पिता वृहद्रथने एक वृषासुर असुरको मारकर उसके चर्मसे उन्हें मढ़ाया था। वे नगाड़े शुभ समझे जाते थे, जरासंध उनकी पूजा किया करता था। सबसे पहिले इन तीनोंने जाकर उन तीनों नगाड़ोंको फोड़ दिया। इन्हें तो किसी प्रकार शत्रुता प्रकट करनी थी। फिर इन्होंने पर्वतके ऊपर

बने हुऐ परकोटे को तोड़ डाला और उसे तोड़कर उसी मार्ग से नगर मे घुसे। दुर्भाग्य से या सौभाग्यसे एक माली सम्मुख मिल गया। छीनने झपटने का तो इन श्यामसुन्दर को अभ्यास ही है। तुरन्त ही उससे माला बलपूर्वक छीन ली और तीनों ने उन्हें धारण कर लिया। इस प्रकार सुन्दर माला पहिने हुए बिना अस्त्र शस्त्र लिये ब्राह्मणका बनावटी वेष बनाये ये तीनो के तीनों जरासन्धके समीप पहुँचे। द्वारपालोने ब्राह्मण समझकर इनको रोका नही। ये सीधे भोजन के समय जरासन्ध के समीप पहुँचे।

जरासन्ध तो बड़ा ब्राह्मण भक्त था। उसने ज्यों ही इन तेजस्वी बनावटी ब्राह्मणो को आते देखा, तो वह तुरन्त उठकर खड़ा हो गया। उसने विधिवत् तीनो को अर्घ्य दिया अतिथि सत्कार किया किन्तु ये लोग आतिथ्य सत्कार स्वीकार करने तो आये ही नही थे। ये तो लड़ने आये थे, छल करने आये थे। इनके सरदार महाछली श्रीकृष्णचन्द्र थे। इन्होने पहिले ही दोनों भाइयोंको समझा दिया था,तुम एक शब्द भी मुखसे मत बोलना। मैं सब बातें कर लूँगा।"ये दोनों तो भगवान् के संकेत पर काम करने वाले थे, इसलिये चुप चाप बैठे रहे। जरासंधकी पूजा का इन्होंने कुछ भी उत्तर नही दिया। जब जरासन्ध ने इनसे कुशल प्रश्न किया, तब ये ही छलियो के शिरोमणि बोले—"ये दोनों स्नातक ब्रह्मचारी मौनी है। इन्होंने मौन व्रत ले रखा है। आधी रात्रिके समय इनका मौन व्रत खुलता है, तब ये आपसे बातें कर सकते है।"

जरासन्ध ने कहा—"बहुत अच्छा, आप मेरी अग्निहोत्र-शाला में सुखपूर्वक निवास करें। इस समय आप भोजन क्या करेंगे ?"

ये छलिया देवता बोले—"इस समय तो हमें भोजन करना नहीं है, रात्रिमें ही सब बातें होंगी।"

यह सुनकर उसने तीनोंके ठहरनेका प्रबन्ध यज्ञशालाके समीप अतिथिशालामें कर दिया। वह सब प्रबन्ध करके अन्तः-

पुरमें चला गया। उसे इनतीनों ब्राह्मणोंके व्यवहार पर आश्चर्य हो रहा था,उनकी बातों पर सन्देह भी हो रहा था, फिर भी वह

तो ब्राह्मण भक्त था। आधी रात्रिके समय अकेला ही इन तीनोंसे मिलने वह आया।

राजाको आया देखकर ये तीनों छद्मवेषी ब्राह्मण उठकर खड़े हो गये। राजाने इन तीनोंको प्रणाम किया, इन्होंने भी उसे आशीर्वाद दिया। जब सब सुखपूर्वक बैठ गये, तो जरासन्धने पूछा—"आप कौन हैं? कहाँसे आये हैं? मुझसे आप क्या चाहते हैं?"

यह सुनकर ये ही ठगिया देवता बोले—"राजन्! आपका मङ्गल हो, कल्याण हो। हम आपके अतिथि हैं। हम बड़ी दूरसे आपके दानकी प्रशंसा सुनकर आये है। हम आपसे कुछ याचना करने आये है, आशा है आप हमारी इष्ट वस्तुको देंगे।"

जरासन्धने कहा—"आप लोग क्या चाहते है, पहिले मुझे बतावें, तब मैं उसपर विचार करूँगा कि वह वस्तु देने योग्य है या नहीं।"

यह सुनकर श्रीकृष्ण खिलखिलाकर हँस पड़े और हँसते हँसते बोले—"राजन्! हमने तो आपके दानकी आपके साहस-की बड़ी प्रशंसा सुनी थी। दानी दान देते समय आगेकी नहीं सोचता। वह तो सम्मुख आये हुए याचककी सभी इच्छाओंकी पूर्ति करता है। उसे अपने दान मानसे पूर्ण सन्तुष्ट कर देता है। जिस प्रकार तितिक्षु पुरुष सभी प्रकारके दुःखोंको सदा सहनेके लिये तत्पर रहते है, जिस प्रकार दुष्ट लोग सभी प्रकारके पाप बिना विचारे करते रहते हैं, उसी प्रकार उदार पुरुष अपना सर्वस्व समर्पित करनेमें कभी हिचकते नहीं। आप हमसे व्यवहार करना चाहते हैं यह तो व्यापारियोंकी बात है कि पहिले सुनेंगे सोचेंगे, सम्मति करेंगे, हानि लाभका विचार करेंगे, तब उत्तर देंगे।"

जरासन्धने कहा—"हाँ, यह तो आपका कथन सत्य है, फिर भी मैं राजा हूँ, मेरे पुत्र पौत्र हैं, मंत्री पुरोहित हैं शत्रुमित्र

हैं। सब समझ बूझकर काम करना होता है।"

भगवान् व्यंगकी हँसी हँसते हुए बोले—"अजी, राजन्! आप ये कैसी बातें कह रहे हैं। हे नरेन्द्र! जो समदर्शी हैं, दानी हैं, उदार हैं उनके लिए अपने पराये का भेदभाव नहीं होता उनके लिये तो सम्पूर्ण वसुधा ही अपना कुटुम्ब है। राजन्! यह शरीर नाशवान है और सुयश अविनाशी है। जो इस नाशवान् शरीरसे सत्पुरुषों द्वारा गान करने योग्य अपनी विशुद्ध कीर्तिको नहीं कमा लेता उसका मनुष्य जन्म लेना वृथा है। राज्य पाट, धन, वैभवको क्या कोई साथ ले जायगा। ये सब तो यहाँके यहीं रह जायँगे। केवल यश अपयश ही रह जाता है। जो रात्रि दिन दूसरोंका रक्त चूस चूसकर अपने मांसको बढ़ाते हैं, क्या वे उस मोटे शरीरको साथ ले जाते है? उनका अपयश शेष रह जाता है और जो परोपकार करते करते शरीरको सुखा देते हैं, शरीर तो उनका भी यही रह जाता है किन्तु उनकी कीर्ति सदा बनी रहती है देखिये, महाराज हरिश्चन्द्र दान देकर ही अजर अमर हो गये।"

इसपर जरासन्धने पूछा—"ब्राह्मणदेव! हरिश्चन्द्रकी कीर्ति अभी तक किस पुण्य प्रभावसे अब तक विद्यमान् है?"

भगवान् बोले—"राजन्! विश्वामित्रजीके माँगने पर सूर्यवंशी महाराज हरिश्चन्द्रने अपना सर्वस्व दान कर दिया था। वे एक वस्त्रसे अपनी स्त्री और छोटे बच्चेके साथ घरसे निकल पड़े। विश्वामित्रजीने उनसे दानकी सांगता देनेका आग्रह किया। इसके लिये उन्होंने अपनी स्त्रीको बच्चेको बेचा। स्वयं चांडालके हाथ बिक गये। उनकी इस दान निष्ठासे ब्रह्मदेव, इन्द्र, धर्म आदि देव प्रसन्न हुए। उन्हें प्रजा सहित स्वर्ग ले गये। दानके प्रभावसे ही उनकी कीर्ति अबतक जगमें विद्यमान् है। इसी प्रकार महाराज रन्तिदेवने भी अतिथि सत्कार करके समस्त पुण्यलोकोंको

जीव लिया और संसारमें अब तक उनकी कीर्तिका बड़े आदर के साथ गायन किया जाता है ।

जरासन्धने पूछा—"महाराज रन्तिदेवने किसका आतिथ्य सत्कार किया था और उनकी अबतक इतनी भारी ख्याति क्यों है।"

भगवान् बोले—"राजन् ! चन्द्रवंशी महाराज रन्तिदेवके बडे भाई गुरु राजा थे । वे उन्हें नियमित वृत्ति देते थे ये बिना किसीसे मांगे जो भी मिलता उसी पर निर्वाह करते । एक बार अड़तालीस दिनों तक राजाको कुछ नही मिला । उनचासवें दिन सुन्दर घृतयुक्त खीर, हलुआ तथा जल मिला, वे परिवार सहित उन वस्तुओंको खाने ही को बेठे थे कि क्रमशः तीनों देव पारी पारीसे ब्राह्मण, शूद्र तथा चांडाल बनकर आये और उन्होंने तीनों बार अपने सामनेकी सब वस्तुएँ स्वयं न खाकर प्रसन्नता पूर्वक उन्हें दे दी । अपने लिये एक बूँद जल भी न रखा । वे अपने इस अमोघ दानके प्रभावसे अजर अमर बन गये । उनकी विमल कीर्ति अब तक संसारमें व्याप्त है । इसी प्रकार एक शिलोञ्छ वृत्ति मुद्गल मुनि भी अन्नदानके प्रभावसे स्वर्गीय देवताओं के पूजनीय बन गये ।"

जरासन्धने पूछा—"विप्रवर ! मुद्गल मुनिने किसको कितना अन्न दिया था, जिससे अबतक ससारमे उनकी इतनी ख्याति है ?"

भगवान् बोले—"राजन् ! कुरुक्षेत्रमें एक मुद्गल नामक मुनि रहते थे । वे पक्षियोंकी भाँति खेतमें पड़े हुए अन्नके कणोंको बीनकर लाते थे । वे नित्य बीन बीनकर पन्द्रह दिनके लिये अन्न एकत्रित करते । पन्द्रह दिनमें जितना एकत्रित हो जाता उसीसे वे एक पक्षका काम चलाते । परिवार सहित स्वयं भी खाते अतिथियोंका भी पूजन करते और उसीसे हवन श्राद्धादि भी करते ।

यदि उस पक्षमें कुछ घट जाता तो उतने दिन भूखे रहते।

एक बार जब उन्होंने पन्द्रह दिनका अन्न एकत्रित कर लिया तो उसी दिन उन्मत्त वेषमें दुर्वासा मुनि उनके अतिथि हुए। महामुनि मुद्गलने उनका प्रेम पूर्वक स्वागत किया, भोजन कराया। उनके यहाँ जितना भी अन्न था, सभीको दुर्वासा खा गये। वे एक पक्ष भूखे रहे। दूसरे पक्षमे ज्यों ही बनाकर वे प्रसाद पाने बैठे त्यों ही फिर दुर्वासा आकर सब उड़ा गये। इस प्रकार छः बार दुर्वासा मुनि इसी प्रकार आ आकर मुनिके सब अन्नको खा जाते इस पर भी मुनिके मनमें तनिक भी उद्वेग नही हुआ। वे पूर्ववत् मुनिका स्वागत करते रहे। इसी दानके प्रभावसे उन्होंने मृत्युको जीत लिया और संसारमें अब तक बड़े गौरवसे उनकी कीर्ति गाई जाती है। महाराज शिविने कपोत बने धर्मके लिये अपने शरीरका मांस दे दिया। विरोचनके पुत्र बलिने जान बूझकर अपना सर्वस्व वामन बने छलिया उपेन्द्रको दे दिया। ये सब तो मनुष्य थे राजा थे पक्षी होकर कपोत तो अतिथि व्याधके लिये अपना शरीर देकर स्वयं अमर बना और व्याधको भी बना दिया।

जरासन्धने पूछा—"विप्रवर! कपोतने अपना शरीर क्यों दिया? व्याध कैसे अमर होगया?"

यह सुनकर भगवान् बोले—"राजन्! सुनिये मैं आतिथ्य-का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण सुनाता हूँ। एक बहेलिया जाड़ेके दिनोमें पक्षी पकडने जङ्गलमें गया। उस दिन बहुत जाड़ा पड रहा था। जाड़े से ठिठुरता हुआ वह एक पेड़के नीचे गया वहाँ उसे जाडोमें काँपती हुई एक कबूतरी मिली। उसे उसने पकड़कर पिंजड़ेमें डाल लिया। सायंकाल हो गयी थी, वह उसी सघन वृक्षकी छायामें सो गया, जिसपर उस कबूतरीका पति कबूतर रहता था। उसने पिंजड़ेमें पड़ी अपनी प्रियाको पहिचान लिया। दोनों रोते

रहे। बहेलिया उठा और शीतके कारण काँपने लगा। कबूतरने सोचा—"यह मेरा अतिथि है, इसकी सेवा करनी चाहिये, इस लिये वह उड़कर गया और लुहार के यहांसे एक जलती हुई अग्नि अपनी चोंच में ले आया। सूखी लकड़ियों की कमी तो थी नहीं तोड़ तोड़कर उसने नीचे फेंक दी। बहेलिये ने आग जलायी तापने से उसकी शीत भाग गयी। उसे बड़ी भारी भूख लगी हुई थी। उसने कबूतर से कहा—"भैया! मुझे बड़ी भूख लगी है, कुछ खाने को हो तो दो।"

कबूतर ने कहा—हम तो एक प्रकार के वनवासी हैं हम अन्न संग्रह नहीं करते। कण कण चुगकर खाते हैं और अपरिग्रही होकर वृक्ष पर निवास करते हैं। मेरे पास तुम्हें देने के लिये कुछ भी नहीं है।" यह सुनकर बहेलिया निराश हुआ।

अब तो कबूतर को अपने वचनों पर दुःख हुआ। उसने सोचा—"हाय! मैंने इस भूखे बहेलिया से यह बात क्यों कही इसकी आशाको क्यों भंग किया? मेरा शरीर तो है, इस क्षण-भंगुर शरीर से यदि किसी का उपकार हो जाय,तो इससे बढ़कर इसका और क्या सदुपयोग है। यह सोचकर वह जलती हुई अग्नि में कूद पड़ा और कहता गया"—लो, मेरे शरीर को खाकर अपनी क्षुधा शान्त करो।"

कबूतर अग्नि में गिरते ही जलकर मर गया। इसके इस भारी त्यागसे बहेलियेको बड़ा वैराग्य हुआ। उसने सोचा 'हाय'! मैं कैसा पापी हूँ। पक्षी होकर इसने परोपकार के लिए अपना शरीर जला दिया, एक मैं भी हूँ, जो इस पापी के पेट के लिए निरन्तर पाप ही करता रहता हूँ, अब मैं भी तप करके इसी गति को प्राप्त करूँगा।" यह सोचकर उसने जाल, लोहा, पिंजड़ा तथा अपनी अन्यान्य सभी वस्तुएँ फेंक दीं। कबूतर को भी नहीं खाया,कबूतरी को छोड़ दिया और वनमें जाकर घोर तप

करके स्वर्ग गामी हुआ । इधर कबूतरी भी पति के साथ अग्निमें जलकर सती होगयी । सो राजन् ! जब पक्षी होकर कबूतर ने अपना शरीर अतिथि सेवा में जला दिया, तो तुम राजा होकर तिस पर भी चक्रवर्ती राजा होकर अतिथि सत्कार में क्यों हिचकते हो । हृदय खोलकर कह दो "तुम जो माँगोगे वही मैं दूँगा ।"

यह सुनकर जरासन्ध का उत्साह बढा । उसने कहा—"भाई ! तुम बड़े विद्वान नीतिज्ञ हो । किन्तु मुझे तुम्हारे ब्राह्मण होने में तो सन्देह हो रहा है । एक तो मुझे तुम तीनोकी आकृतियाँ परिचित सी प्रतीत होती हैं । यदि मैं भूल नही कर रहा हूँ, मेरी स्मरणशक्ति मुझे छल नहीं रही है तो मुझे ऐसा लगता है, तुम तीनोंको ही मैंने कहीं स्वयंवरोंमे क्षत्रिय रूपमें देखा है । तुम्हारी वाणी भी परिचित सी ही प्रतीत होती है । तुम्हारे हाथोंमें धनुष बाण चलाने की ठेकें भी पड़ी हुई हैं । तुम लोगों का शरीर भी ब्राह्मणों की भाँति नही है । क्षत्रियों की भाँति तुम्हारा गठीला शरीर है । इन सब बातों से मैं अनुमान करता हूँ, तुम कोई क्षत्रिय हो । तुमने भयवश या लोभवश यह ब्राह्मणोंका सा बनावटी वेष बना रखा है । तुम मुझे अपना यथार्थ परिचय दो ।"

भगवान् ने कहा—"हम कोई भी हों, तुम्हारे सामने तो याचक बनकर आये है न ? तुम्हें देना हो दे दो, न देना हो मना कर दो । हम निराश होकर लौट जायँगे । तुमसे आग्रह तो कर ही नहीं रहे है । 'हाँ' अथवा 'ना' इनमें से एक बात कह दो ।"

यह सुनकर जरासन्ध ने सोचा—"यदि मैंने आज इनसे नाही कर दी, तो मेरी सब कीर्ति नष्ट हो जायगी । संसारमें मेरा अपयश फैल जायगा । ये कोई भी हों, मेरे यहाँ तो याचक ब्राह्मण के रूपमें आये है, इनकी इच्छापूर्ति मुझे अवश्य करनी चाहिये । असुरराज बलिके द्वार पर उसकी राज्य लक्ष्मीको हरने

की इच्छासे ब्राह्मण वेष बनाकर विष्णु गये थे। बलिके कुलगुरु शुक्राचार्यने बार-बार समझाया भी कि यह विप्रवेष धारण करने वाला छलिया विष्णु ही है। फिर भी उसने गुरुकी बात नहीं मानी। याचक बने विष्णुको उसने अपना सर्वस्व दे ही तो डाला। वामनने छल पूर्वक उसे वैभव हीन कर दिया था। यद्यपि उसका राज्य चला गया किन्तु उसकी निर्मल पवित्र कीर्ति तो दसों दिशाओंमें अभी तक फैली हुई है। उसके पवित्र यश-से यह आकाश मंडल अभी तक भरा हुआ है। धन ऐश्वर्य साथ थोड़े ही जाता है, यश अपयश ही शेष रह जाता है। क्षत्रियोंका एक मात्र धर्म है,ब्राह्मणको सन्तुष्ट रखना। जिस क्षत्रियसे ब्राह्मण सन्तुष्ट नहीं, उस क्षत्रियको बारम्बार धिक्कार है। जिसने इस अनित्य क्षण भगुर शरीरसे महान् यश प्राप्त नही किया, उसका शरीर लेना व्यर्थ है। ये चाहें ब्राह्मण हों, क्षत्रिय हो अथवा वैश्य या शूद्र ही क्यों न हों। जब ये भिक्षुक बनकर मेरे समीप याचना करने आये हैं, तो इन्हें निराश करना उचित नहीं। ये जो भी कुछ मांगे वही मुझे इन्हें देना चाहिए।" इन्ही सब बातों को मन ही मन सोचकर जरासन्ध इन तीनों बनावटी ब्राह्मणोंसे बोला—"विप्रगण ! अच्छा, आप जो भी चाहते हों, वही मुझसे बिना संकोच के माँग लें। मैं वचन देता हूँ आपकी इच्छा पूर्ण करूँगा।"

भगवान्ने वातको पक्की करनेके निमित्त कहा—"राजन् ! भली प्रकार सोच समझ लें, ऐसा न हो, पीछे आप मुकुर जाय।"

दृढ़ताके स्वरमें जरासन्धने कहा—"द्विजवर ! आप कैसी बात कह रहे है। जिस प्रकार कन्याका दान एक ही वार दिया जाता है उसी प्रकार सज्जन लोग एक ही बार वचन देते हैं।

आप मेरा राज्यपाट, सर्वस्व यहाँ तक कि सिर भी माँगेंगे, तो मैं दूँगा।"

यह सुनकर भगवान्‌ने कहा—"राजन् ! हम आपसे द्वंद युद्ध माँगते हैं।"

आश्चर्यके साथ जरासन्धने कहा—"ब्राह्मण मे युद्ध जान बूझकर कौन करेगा। ब्राह्मणोंका काम तो युद्ध करना नहीं है। उनका तो क्षमा ही अस्त्र है। युद्ध तो सम्मान ऐश्वर्य और राज्यकी इच्छा वाले क्षत्रिय करते रहते हैं।"

भगवान्‌ने कहा—"राजन् ! आप हमें क्षत्रिय ही समझें। हम मुट्ठी भर अन्न माँगने वाले ब्राह्मण नहीं हैं।"

चौंककर जरासन्धने कहा—"तुम कौन क्षत्रिय हो भाई। इस पृथिवी पर तो कोई ऐसा क्षत्रिय है नहीं जिसे मैंने जीता न हो, जो मेरे सम्मुख युद्धमें खड़ा हो सके। तुम अपना यथार्थ परिचय तो दो।"

यह सुनकर भगवान् बोले—"सुनिये राजन् ! ये महाराज पांडुके पुत्र भीमसेन हैं। ये दूसरे इनसे इनके छोटे भाई गांडीव धनुपको धारण करने वाले अर्जुन हैं।"

जरासन्धने पूछा—"इतनी देरसे जो तुम्हारी कतरनीकी भाँति चिविर चिबिर जीभ चल रही है ऐसे वाचाल शिरोमणी तुम कौन हो।"

हँसकर भगवान् बोले—"अजी, राजन् ! आप मुझे भूल गये क्या ? आप मुझे भले ही भूल जायँ, मैं तो आपको कभी भूल नहीं सकता। आप तो मेरे मामाजीके ससुर हैं न ? मेरी आपकी तो सत्रह बार लड़ाई हो चुकी है। मैं इनके मामाका पुत्र वासुदेव हूँ। कृष्ण भी मुझे कहते हैं और तुम्हारा पुराना शत्रु हूँ।"

इतना सुनते ही जरासन्ध ठहाका मारकर हँसने लगा।

हँसते हँसते उसने कहा—"धत्तेरे भगोड़े की। कैसा वेष बनाकर आया। मुंह पर जाने क्या पोत लाया है। वाणी भी कैसी बदल ली है। तू कितना भी छिपे, फिर भी तेरी आकृति छिपती नहीं। मैं तभी से सोच रहा था, इसे मैंने कही देखा है। ठगिया कहीं का। तुझमें मुझसे लड़नेका साहस है?"

हँसकर भगवान्ने कहा—"साहस न होता, तो तुझ शत्रुके घरमें-तेरे परकोटेको तोड़कर-आते ही क्यों? हम तीनों में से तुम जिसके साथ चाहो युद्ध कर सकते हो। अब तुमने हमें वचन दे दिया है, तुम मुकर नही सकते।"

जरासन्धने हँसकर कहा—"अरे, मुकरनेकी कौनसी बात है भैया! मैं तो युद्ध करनेके लिये उधार खाये बैठा रहता हूँ। मुझसे कोई युद्ध करने वाला वीर मिले भी तो।"

भगवान्ने कहा—"हम तीनों ही तुम्हें चुनौती दे रहे हैं।"

जरासन्धने हँसकर कहा—"तुम निर्बलोंसे लड़कर मैं अपना अपयश कराना नही चाहता। बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये अपनेसे छोटे पुरुषोंके साथ कभी भी न भिड़े। छोटेको जीत लिया, तब तो कोई प्रशंसा नहीं। हार गये तो बड़ा भारी अपयश होता है। अब तुझ नपुंसक से मैं क्या लड़ूँ। तू तो भगोड़ा है, डरपोक है। तू तो मेरे डरके मारे अपनी जन्मभूमि को छोड़कर समुद्रके बीचमें छिपकर रहता है। तुझमें तो इतना साहस भी नही था कि अपनी पैतृक राजधानीमें रहता। तू भीरु और अस्थिर चित्तवाला है। तुझे तो मैंने हरा ही दिया। अब तुझसे तो मैं लड़ नहीं सकता।"

हँसकर भगवान् बोले—"अच्छा, मुझसे मत लड़ो, अर्जुन से लड़ लो। इसे तो तुमने कभी नही हराया।"

अवहेलनाके स्वरमें जरासन्धने कहा—"इस छोकड़ेसे मैं क्या द्वन्द युद्ध करूँगा। इसकी मैंने प्रशंसा सुनी है। [illegible]

यह भले ही अच्छी प्रकार चलाले। लक्ष्यवेधमें यह भले ही निपुण हो किन्तु इसमें मेरे बराबर बल नही है। अवस्थाकी तो कोई बात नहीं, दश पाँच वर्षकी छुटाई बड़ाई बराबर ही मानी जाती है किन्तु बल बराबर होनेसे ही जोड़ प्रशंसनीय माना जाता है। इसलिये यह भी मेरी जोड़ीका नहीं है।"

भगवान् बोले—अच्छा तो भीमसेन से ही लड़िये !"

कुछ ठहर ठहर कर जरासन्ध कहने लगा—"हाँ, इसकी तो मैंने प्रशसा सुनी है। सुना गया है इसमे दश सहस्र हाथियों का बल है। शरीर भी इसका मेरे समान ही हृष्ट पुष्ट है। हाँ, इससे तो मैं लड़ सकता हूँ। हमारी इसकी जोड़ी तो उचित है।"

भगवान्ने कहा—"अच्छी बात है, इन्ही से लड़ो। तुम किसी से लड़नेको तैयार भी तो हो। किसी से लड़ो, हम तुम्हें मारकर तब यहाँसे जायँगे। तुमने बहुतसे राजाओंको बन्दी बना रखा है। राजाओंका अपमान करनेसे तुम वध्य हो।

जरासन्धने कहा—"इसे तो समय बतावेगा कि तुम मुझे मारते हो या तुम मरते हो। अभीसे बड़बड़ानेसे क्या लाभ? अब अधिक बात बढ़ानेकी आवश्यकता नही। कलसे हमारा और भीमका द्वन्द युद्ध होगा। धर्म पूर्वक लड़ाई होनी चाहिये।"

भगवान्ने कहा—"धर्मात्मा तो तुम ही हो, हम तो काम निकालने वाले हैं। अच्छा आप अपने बन्धु बांधवोंसे मिल भेंट लें।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! यह सुनकर जरासन्ध उठकर चला गया। भगवान् भीमसेन और अर्जुनसे हँस हँसकर बातें

करते रहे। अब जरासन्ध और भीमसेनका जिस प्रकार युद्ध होगा, उसका वर्णन मैं आगे करूँगा।"

छप्पय

बोले श्री भगवान्-'भीम नृप ! इनकूँ जानों।
दूसर इनके बन्धु वीर अरजुन लघु मानों॥
हे मामाके ससुर ! और का बात बताऊँ ?।
मैं तुमरो हूँ शत्रु कृष्ण कंसारि कहाऊँ॥
नृप हँसि बोल्यो भगोड़े ! द्वन्द युद्ध का करेगो।
इन निरबल छोरनि सहित, बिना मीति तू मरेगो॥

जरासन्ध और भीमसेन का द्वंद युद्ध

(११४६)

ततः समे खले वीरौ संयुक्ताविततरेतरौ ।
जघ्नतुर्वज्रकल्पाभ्यां गदाभ्यां रणदुर्मदौ ॥*
(श्रीभा० १० स्क० ७२ अ० ३४ श्लो०)

छप्पय

है तू तो अति भीरु हीन बल अरजुन छोटो ।
भीम संग लड़ि लेहुँ तुल्य बल मम सम मोटो ॥
हरि बोले—"अव भूप ! होहि रन देर न लाओ ।
सम्बन्धिनि ढिंग जाइ भेंट अन्तिम करि आओ ॥
जरासन्ध सुनि मुदित मन, गदा युद्ध हित कर लई ।
पुर वाहर रन थल वन्यो, एक भीम हू कूँ दई ॥

द्वन्द युद्ध एक अत्यंत सुन्दर कला है, इसमें करने वालोको भी आनन्द आता है और दर्शकों का भी मनोरंजन होता है। दो बलवान चाहें तो निहत्थे होकर हाथ पैरों से ही युद्ध करें या लाठी, गदा, पटा आदि के युद्ध करें। इसमें तीसरा बीच में नहीं आ सकता। दो मल्ल ही आपस में लड़ेंगे। मल्ल युद्ध की

*श्रीशुकदेव जी कहते हैं—'राजन् ! इसके अनन्तर जरासन्ध और भीम दोनों ही युद्धोन्मत्त वीर एक सुन्दर समान भूमि पर लड़ने लगे। वे अपनी वज्र के समान कठोर गदाओं से परस्पर में एक दूसरे पर प्रहार करने लगे।"

प्राचीन काल में बहुत प्रथा थी वल का क्षय होने से यह विद्या अब नष्ट प्रायः सी हो गयी। लोगोंको शुद्ध आहार नहीं मिलता शरीर में पहिले जैसा बल उत्साह नहीं। फिर लड़ेंगे क्या?

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भीम के साथ जरासन्ध का द्वन्द युद्ध होगा, यह बात निश्चित होगयी। जरासन्ध ने इन तीनों के साथ अत्यंत ही मित्रता पूर्ण व्यवहार किया। उसने अपने मंत्रियों से कहा—"आज ही नगर के बाहर सुन्दर युद्ध स्थली बनवा दो। उसमें ऐसा प्रबन्ध करो कि सभी वर्ण के लोग हमारे और भीमसेन के युद्ध को सुख पूर्वक देख सकें।"

मंत्रियों ने राजा की आज्ञा का तुरन्त पालन किया। एक सम भूमि भाग में युद्ध स्थली बनायी गयी। उसके चारों। ओर बाड़ा बना कर दर्शकों को बैठने का प्रबन्ध किया गया। नियत समय पर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र, भीम और अर्जुन के साथ रथ में बैठ कर जरासन्ध युद्ध स्थली पर पहुँचा। उसने प्रथम युद्ध-स्थली का निरीक्षण किया, फिर वह अपने पुरोहित के समीप गया। पुरोहित ने उसका स्वस्त्ययन किया, मूर्छा दूर करनेवाली ओषधियाँ सुँघाई तथा और भी मङ्गल कृत्य किये। इधर भगवान् ने भी भीमसेन का स्वस्त्ययन किया। फिर हँसते हुए जरासन्ध ने दो सुन्दर सुन्दर गदायें लाकर रखी और बोला—"भीम! भाई तुम इन दो गदाओं में एक छाँटलो! पीछे तुम कहो हमारे साथ पक्षपात किया।"

हँसकर भीमसेन ने कहा—"नहीं, राजन्! हमें आपके ऊपर विश्वास है। आप हमें कोई भी एक गदा दे दें।"

यह सुनकर जरासन्ध ने कहा—"ये दोनों गदायें एक सी ही हैं। लीजिये, इसे आप लें, इसे मैं लिये लेता हूँ। यह बड़े सौभाग्य की बात है, कि आज मेरा तुम्हारा युद्ध होगा। मेरी भी तुम से बहुत दिनों से युद्ध करने की इच्छा थी।" यह कहकर

उसने एक गदा भीमसेनको दे दी, एक स्वयं लेली। अब उसने अपने बहुमूल्य वस्त्र उतार दिये थे। माथेका किरीट मुकुट भी उतार दिया था, लँगोट कसकर ऊपर से जाँघिया पहिन कर वह सिंहके समान युद्धस्थली में आ गया। इधर भीमसेन भी लँगोट कस कर और अर्जुन तथा श्रीकृष्ण से मिल भेंट कर उसके सामने आ गये। प्रथम दोनों ने एक दूसरे के पैर छुए हाथ मिलाये। अखाड़े की मिट्टी माथे पर लगायी और फिर दोनों ही भिड़ गये दोनों के ही हृदय उत्साह से भरे हुए थे। दोनों ही परम बली थे, दोनो ही अपनी वज्र सदृश कठोर गदाओं से परस्पर में प्रहार कररहे थे। दोनों ही दायें बायें घूम घूम कर भाँति भाँतिके पैतरे बदल रहे थे। दोनों ही लँगोट बाँधे लाल लाल जाँघियाँ पहिने दो नटों के समान युद्ध के दाव पेच दिखा रहे थे। दोनों की ही "दायें सुदृढ़ थीं। दोनों ही एक दूसरे को आहत करने को भूल से गदा चलाते। दोनो ही अपने अपने प्रति द्वन्दी के प्रहारो को रोकने का पूरा प्रबन्ध करते। दोनों ही अपने शत्रु को परास्त करने के लिये दाव पेच चलाते। दोनों की ही गदायें जब परस्पर में लड़ जाती तो चट चट शब्द होने लगता। वे दोनों ही मदोन्मत्त हाथियों के समान सिंहों के समान तथा साँड़ोके समान लड़ रहे थे। दोनो ही जब क्रोध मे भरकर दाँत कट कटाते, तो ऐसा शब्द होता मानों बिजली तड़तड़ा रही हो। वे निर्दय होकर एक दूसरे के अङ्गों मे गदा मारते। दोनों के ही शरीर वज्र के समान थे। वे परस्पर में कन्धा, कमर, चरण, हाथ, जङ्घ तथा भुजाओं के पृष्ठों में प्रहार करते। पत्थर पर लोहा मारने से जैसे चिनगारियाँ निकलती हैं, उसी प्रकार आपसमे गदाओं के टकराने से तथा अङ्गो मे आघात करने से उनमें से चिनगारियाँ निकल रही थीं लड़ते लड़ते गदाओं के उसी प्रकार टुकड़े टुकड़े हो गये, जिस प्रकार दो साड़ों के लड़ने से उनके खुरों से छोटे छोटे पेड़ों

के टुकड़े टुकड़े हो जाते हैं।

गदाओंके चूर्ण हो जाने पर अब वे दोनों बाहुयुद्ध करने लगे। मल्लयुद्ध में जरासन्ध बड़ा निपुण था, भीमसेन भी कुछ कम नहीं थे। दोनों एक दूसरे को ललकारने लगे, ताल ठोकने लगे उनके ताल ठोकने के शब्द से आकाशमंडल भर गया, जब वे एक दूसरे पर उछल कर प्रहार करते, तब पृथिवी डगमगाने लगती। वे परस्पर मे एक दूसरे से भिड़ जाते,कभी वे आपस में कसकर एक दूसरे को पकड़ लेते। मुट्ठी पकड़ लेना, कांखों में भुजा डाल कर बांध लेना, एक दूसरे को बाहुपाश मे जकड़ लेना। अंटे बांधकर नीचे डाल लेना। ऊपर चढ़कर रगड़ देना। इस प्रकार के वे अनेक दाव पेच चलाने लगे। दोनों ही समर विजयी थे, शिक्षित थे, मल्लविद्या में निष्णात थे। तनिक देर में वे पर्वताकार हो जाते आवश्यकता पड़ने पर वे अपने शरीर को सिकोड़ लेते। उनके दावपेचों और युद्ध चातुरी को देखकर दर्शक अत्यंत ही प्रसन्न होते और साधु साधु कह कह कर तालियां बजाते। एक दूसरे को उत्साहित करते। श्रीकृष्ण बार बार कहते—"हाँ भैया! शाबास! देखो यह राजा जीवित न रहने पावे! धन्य है, यह तुमने बड़ा सुन्दर दाव चलाया।" इन बातों से भीमसेन का उत्साह और भी बढ़ता। वे और भी पूरी शक्ति लगाकर लड़ते।

दोनों ही युद्ध के लिये उत्सुक थे, एक दूसरे को पराजित करने का प्रयत्न कर रहे थे। शिक्षा, बल और उत्साह में वे समान ही थे। अपने प्रतिद्वन्दीको परास्त करनेको वे अतिव्यग्र थे परन्तु कोई किसीको पराजित न कर सका। भगवान सूर्य अस्ताचल को प्रस्थान कर गये। भगवान ने कहा—"भाई! अब संध्या हो गया युद्ध बन्द कर दो।" यह सुनकर दोनों प्रेम से मिले उस दिन का युद्ध बन्द हुआ।

फिर सब लोग धर्मराज युधिष्ठिर को

राजमहल में आये। सबने परस्पर में मित्रभाव से एक दूसरे की कुशल पूछी। सगे सम्बन्धियों के समान साथ साथ बैठकर भोजन किया और सुख पूर्वक सो गये। प्रातःकाल नित्य कर्मसे निवृत्त होकर फिर युद्ध स्थली में आ गये और फिर द्वन्द युद्ध करने लगे। इस प्रकार वे दोनों सत्ताईस दिनों तक लड़ते रहे। कोई किसी को पराजित न कर सका। दिन भर बिना कुछ खाये पीये शत्रु भाव से युद्ध करते। रात्रि के समय मित्र भाव से रहते। हसते खेलते और साथ ही खाते पीते।

एक दिन रात्रि में भीमसेन ने निराशा के स्वर में श्रीकृष्णचन्द्र से कहा—"माधव! मुझे ऐसा प्रतीत होता है, कि मैं इसे रण में जीत न सकूँगा। यह राजा बड़ा बली है। मेरा तो उत्साह ढीला पड़ गया।"

यह सुनकर भगवान् बड़े हँसे और भीमसेन को चिढ़ाते हुए बोले—"अरे भीमसेन! हमने तो सुना था, तुम बड़े बली हो, तुम तो भोजन भट्ट ही निकले। जो लोग पेटू होते हैं, उनसे कुछ काम नही होता। खाते तो तुम पाँच आदमियों के बराबर हो और लड़ने में कायरता दिखाते हो?"

लज्जित होकर भीमसेनने कहा—"वासुदेव! क्या बताऊँ, मुझे तो इस मगधेश्वर के बल की ही थाह नही मिलती। न जाने इसमें कितना बल है। यह कैसे मारा जायगा?"

हँसकर भगवान् बोले—"अरे, भैया! बल पूर्वक इसे कोई भी नही जीत सकता। यह तो युक्ति से ही मारा जा सकता है।"

भीमसेन ने कहा—"यदुनन्दन! तुम तो युक्तियों के सागर ही हो, इसके मारने की युक्ति आप ही बताइये। उसी युक्ति से मैं इसे मार डालूँ।"

भगवान् बोले—"पहिले तुम इसकी उत्पत्ति की कथा सुनलो, तब फिर मैं तुम्हें इसे मारने की युक्ति बताऊँगा। इस जरा-

सन्ध के पिता बृहद्रथ बडे ही धर्मात्मा तथा सत्यवादी राजा थे। वे इस मगध देश में दूसरे इन्द्र के समान सुशोभित होते थे। महाराज काशी नरेश की दो जुडंली कन्यायें थी। वे माता के उदर से साथ ही उत्पन्न हुई थी। सुन्दरता में दोनों ही अनुपम थी। महाराज बृहद्रथ ने उनके साथ यह कहकर विवाह किया, कि मैं इन दोनों के साथ एक सा ही व्यवहार करूँगा, किसी भी प्रकार का भेद भाव न रखूँगा।" काशीराज यह सुनकर प्रसन्न हुए और उन्होंने सहर्ष अपनी दोनों प्यारी कन्याओ का विवाह राज. के साथ कर दिया। मगधेश्वर ने अपनी प्रतिज्ञा को जीवन भर निभाया। उन्होंने उन दोनों में कभी किसी प्रकार का भेद भाव नहीं किया।

उन दोनों रानियो के साथ गृहस्थ सुख भोगते भोगते राजा की युवावस्था समाप्त हो गयी, वे वृद्ध हो गये, किन्तु उन दोनों में से किसी के भी सतान नहीं हुई। इससे राजा रानी दुखी रहते थे। उन्हें सभी ससार सूना सूना दिखाई देता था।

एक दिन राजा ने सुना कि "महर्षि कक्षीवान गौतम के सुत परम तपस्वी चंड कौशिक मुनि मेरी नगरी के बाहर आये हुए हैं।" यह सुनते ही राजा मंत्री पुरोहित तथा अन्यान्य सचिवो के सहित पूजा की सामग्री लेकर मुनि के समीप गये। वहाँ जाकर राजा ने देखा मुनिवर एक आम्र के पेड़ के नीचे आनन्द पूर्वक विराजमान् है। राजा ने जाकर मुनि के चरणो मे साष्टाङ्ग प्रणाम की, विधिवत् उनकी पूजा करके कुशल पूछी। मुनिने भी राजा की पूजा को विधिवत् स्वीकार करके उनकी कुशल पूछी और कोई वर मांगने को कहा।

राजा ने खिन्न मन से कहा—"मुनिवर! अब मैं वर लेकर क्या करूँगा। अब तो मै बूढ़ा हो चला हूँ मेरे कोई सन्तान भी

नहीं। अतः राज्य पाट छोड़कर मैं वन में जाने का विचार कर रहा हूँ।"

यह सुनकर मुनि को राजा की दयनीय दशा पर दया आ गयी। उनकी इच्छा राजा को पुत्र देने की हुई। उनकी इच्छा होते ही जिस आम के पेड़ के नीचे वे बैठे थे उस पर के एक आम का फल अपने आप ही टूट कर उनकी गोदी में गिर गया। मुनि ने इसे शुभ शकुन समझा। उसी फल को उन्होंने मंत्रों द्वारा अभिमन्त्रित करके राजा को दिया और कह दिया—"इसे अपनी रानी को देना इसे खाने से आपके अवश्य पुत्र होगा।" मुनि को प्रणाम करके राजा महलों में आये। उन्होंने दोनों रानियों को फल दिया। दोनों ने आधा आधा काट कर उस फल को खा लिया। फल के खाने से दोनों एक साथ गर्भवती हुईं। दशवें महीने में दोनों के गर्भ से एक साथ ही आधा आधा बालक हुआ, किन्तु वे दोनों आधे आधे अङ्ग जीवित थे। रानियों ने सोचा ये आधे मांस के लोथड़े किस काम के हैं। दासी से उन्हें फेंक आने को कहा। दासी उन्हें एक पात्र में रखकर वस्त्र से ढककर बाहर ले गयी। वहाँ एक जरा राक्षसी मानवी स्त्री का रूप रखकर घूम रही थी। उसने उन दोनों भागों को एक में जोड़ दिया। जोड़ते ही वह बालक रोने लगा। वे हिस्से अपने आप जुड़ गये। बालक का रुदन सुनकर राजा रानी दास दासी तथा अन्यान्य अन्तःपुर के लोग दौड़े आये। जीवित बालक को देखकर राजा को बड़ा विस्मय तथा हर्ष हुआ। उन्होंने उस 'जरा' राक्षसी के नाम पर ही बालक नाम 'जरासन्ध' रखा। जब वह बड़ा हुआ तो महाराज बृहद्रथ उसे राज्य देकर तपस्या करने वन में चले।"

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भीमसेन से कह रहे हैं—"हे वृकोदर! यह वही जरा राक्षसी द्वारा जोड़ा हुआ जरासन्ध है। टूटो

फूटी वस्तु को कितना भी जोड़ दिया जाय, जोड़ के स्थान पर वह निर्बल हो ही जाती है। इस राजा के अन्य अङ्ग तो सभी सुदृढ़ हैं, वे तोड़े नहीं जा सकते किन्तु बीच से यह जुड़ा हुआ है। तुम इसकी टाँग पकड़ कर चीर दो तो बीच में से इसके फिर दो टुकड़े हो जायँगे। इसके अतिरिक्त उसके मरने का अन्य कोई उपाय नहीं है।"

भीमसेन यह सुनकर अत्यंत ही प्रसन्न हुए। वे बोले—"यदुनन्दन ! अब आप कोई चिन्ता न करें, अब आप जरासन्ध को मृतक ही समझें। कल मैं उसे इसी उपाय से ..वश्य मार दूँगा। उसके बीच से पुनः दो टुकड़े कर दूँगा।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार निश्चय करके सब लोग सुख पूर्वक सो गये। प्रातःकाल नित्य कर्म से निवृत होकर फिर नियमानुसार लड़ने गये। अब जिस प्रकार भीमसेन जरासन्ध को मारेंगे उसका वर्णन मैं आगे करूँगा।"

छप्पय

भिड़ैं मेष तैं मेष साँड़ तैं साँड़ लड़ैं ज्यों।
द्वै द्विप ह्वै मदमत्त लड़ैंवर वीर उभय त्यों॥
दाव पेच करि उभय प्रकरषन अरु अनुकरषन।
आकरषन करि लड़ैं करैं पुनि प्रबल विकरषन॥
यों सत्ताइस दिन लड़े, कहे भीम हे कृपानिधि।
हौं हताश यह रिपु प्रबल, जीत्यो जावे कवन विधि॥

जरासन्ध वध

(११४७)

एकं पादं पदाक्रम्य दोर्भ्यामन्यं प्रगृह्य सः।
गुदतः पाटयामास शाखामिव महागजः ॥*

(श्रीभा० १० स्क० ७२ अ० ४५ श्लो०)

छप्पय

कहै कृष्ण यह जुरचो मध्य तें जाकूँ फारौ।
पैर पकरिकें चीरि बीच तें रिपुकूँ डारौ॥
गये लड़न पुनि भीम कृष्ण की बात भुलाई।
छलियाने तृन फारि भीम कूँ सुरति कराई॥
तुरत भीमबल भीमने, पकरि शत्रु को पग लयो।
एक दबायो पग पकरि, एक करनि तें कसि लयो॥

प्राणी मात्र में कुछ न कुछ दुर्बलता होती ही है। किसी की दुर्बलता को अन्य कोई चाहे न भी जाने, किन्तु भगवान् तो सब

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! भीमसेन ने जरासन्ध के एक पैर को अपने पैर से दबाकर दूसरे को दोनो हाथों से पकड़ कर उसे मलद्वार के ओर से बीच से उसी प्रकार चीर डाला जिस प्रकार महा-गजराज वृक्ष की शाखा को चीर डालता है।"

की दुर्बलता जानते है, उनसे कोई कुछ छिपा नहीं सकता। भगवान् जिसकी दुर्बलता को अपने सम्मुख निकलवा देते हैं, फिर वह संसार बन्धन से सदा के लिये मुक्त हो जाता है। जन्म मरण, जरा व्याधि आदि ये सब तो दुर्बल संस्कारों के ही परिणाम हैं। जिनके संस्कार प्रबल हो जाते हैं, वे तो सब झंझटों से छूट ही जाते हैं। भगवान् जिसका भव बन्धन छुड़ाना चाहते हैं, स्वयं उसके घर जाकर उसका बन्धन छुड़ा देते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! भगवान् से जरासन्ध के जन्म की कथा सुनकर भीमसेन सो गये। प्रातःकाल उठकर नित्य नियम के अनुसार दोनों में फिर युद्ध होने लगा। आज जरासन्ध ने अपने पूरे पैंतरे दिखाये उसने भीमसेन को पराजित करने की बहुत चेष्टा की, किन्तु वे उसके सब दाव पेचों को काटते गये, उस हड़बड़ाहट में वे भगवान् के बताये हुए उपाय को भूल गये, सायंकाल होने को आया, भगवान् समझ गये कि यह भूल गया है। इसलिये वहीं से उन्होंने ललकार कर कहा—"भीम ! अरे, तुझ मे जो दश सहस्र हाथियों का बल है, वायु के समान वेग है वह किस काम आवेगा। तू ऐसा ढीला क्यों हो रहा है। देख, वीरता के साथ लड़।" भगवान् ने भीमसेन का ध्यान आकर्षित करने को ये बातें कहीं। मुख से तो ऐसी बनावटी वीरता की बातें बोलते जाते थे और हाथ से एक वृक्ष की शाखा को चीरते जीते थे।

शाखा को चीरते देखकर महाबली भीमसेन को रात्रिवाली बात याद आ गयी। तुरन्त उन्होंने सम्पूर्ण शक्ति लगाकर जरासन्ध को उठा लिया और चारों ओर घुमाकर उसे पृथिवी पर धड़ाम से दे मारा। उसके पड़ते ही पृथिवी हिलने लगी। सम्हल कर वह ज्यों ही उठना चाहता था, त्यों ही कूदकर प्रहार करने वालों में श्रेष्ठ पांडुनन्दन भीम ने उसके एक पैर को अपने दो

पैरों से दृढ़ता के साथ दवा लिया और दूसरे पैर को पकड़कर उन्होंने उसे बीच में से उसी प्रकार फाड़ दिया जिस प्रकार वस्त्र विक्रेता वस्त्र को फाड़ देता है। चटाई बनाने वाले सरपत को फाड़ देते है। अथवा ऊर्वारुक (खरवूजे) को लोग बीच से फाड़ देते हैं। फटते समय उसने ऐसा भयंकर शब्द किया, कि वह शब्द दसों दिशाओं में भर गया। जिस प्रकार वह आधा आधा उत्पन्न हुआ था उसी प्रकार उसकी दो फांके हो गयीं। सबने देखा मगधेश्वर के सुन्दर सुदृढ शरीर के एक एक चरण, जङ्घा,कोश, पीठ, स्तन, कन्धा, भुजा, नेत्र, कान, नथुने, दांत, ओठ, भृकुटि तथा मस्तक सबके दो बीच से दो भाग हो गये।

जरासन्ध के मरते ही वहाँ बड़ा हा हा कार मच गया। कोई कहता था-'बुरा हुआ।' कोई कहता था-'अच्छा हुआ।' मगधेश्वर के शरीर के दो भाग इधर उधर पड़े हुए थे। दौड़कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी ने और अर्जुन ने भीमसेन का आलिङ्गन किया। हृदय से चिपटा कर उनके वल की भूरि भूरि प्रशंसा की। जरासन्ध के मरने पर उसके पुत्र ने आकर भगवान् वासुदेव के रोते रोते चरण पकड़े। भगवान्ने उसे उठाकर छाती से लगाया और कहा-"वेटा! देखो,शोक करने की कोई बात नहीं है तुम्हारे पिता ने सहस्रों राजाओं को वन्दी बना रखा था। उन सबके हितार्थ भीम ने इन्हे मारा है। अब तुम से तो हमारा कोई वैर-भाव नहीं। तुम्हारी हम सव प्रकार से रक्षा करेंगे। तुम्हें जिस वस्तु की आवश्यकता होगी उसकी पूर्ति करेंगे। अब तुम विधिवत् मगध के राज्य सिंहासन पर अपना अभिषेक कराओ और अपने मृतक पिता की अन्त्येष्टि आदि कर्मों को कराओ।"

सहदेव ने कहा—"प्रभो! आप सर्व समर्थ है, आप जिसे चाहें राज्य सिंहासन पर विठावें जव मेरे पिता ही न रहे तव मैं राज्य लेकर क्या करूंगा।"

भगवान् ने कहा—"अरे, भैया ! सबके पिता सदा थोड़े ही जीवित रहते है । जीवन मरण तो लगा ही रहता है । कौन किसे मार सकता है । सबकी मृत्यु निश्चित होती है, जिस की जिसके होथों मृत्यु लिखी रहती है, उसकी उसके हाथों अवश्य ही हो जाती है । तुम शोक को छोड़ो और आगे का कार्य करो ।"

सूतजी कहते है—"मुनियो ! इस प्रकार अमेयात्मा भूत-भावन् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी ने जरासन्ध के पुत्र सहदेव को भली प्रकार समझा बुझाकर तथा सान्त्वना देकर मगध देश के राज्य पर उसका अभिषेक कराया । तदनन्तर उसने अपने मृतक पिता के अन्त्येष्टि संस्कार कराये ।

जरासंध को मारकर अब भगवान् को अपने मुख्य कार्य की स्मृति आयी । भगवान् तो जरासंध के कारावास में बन्दी बने राजाओं की मुक्ति के ही निमित्त पधारे थे । आते ही भगवान् ने जरासन्ध से कहा था—"तू बन्द राजाओं को छोड़ दे, हम तुझ से युद्ध न करेंगे ।" उसने गर्व के साथ कह दिया—"मैं डर कर अथवा किसी के कहने से बन्दी राजाओं को नहीं छोड़ सकता । युद्ध करने को मैं सर्वथा प्रस्तुत हूँ । मैं तुम तीनों से एक साथ युद्ध कर सकता हूँ या तुम सेना सजाकर आ जाओ तो उसमें भी युद्ध कर सकता हूँ ।" जब उसने ऐसा गर्व पूर्ण उत्तर दिया और किसी भी प्रकार राजाओं को छोड़ने को उद्यत न हुआ, तब भगवान् ने उसे भीमसेन के द्वारा मरवा दिया । उसे मारकर वे बीस सहस्र आठ सौ राजाओं को छुड़ाने के लिये जरासन्ध के ही सुन्दर पताकायुक्त रथ पर चढ़ कर चले । अब वहाँ जाकर भगवान् जैसे उनकी मुक्ति करेंगे । वह कथा प्रसङ्ग मैं आगे कहूँगा । आप सब समाहित चित्त से श्रवण करें ।"

छप्पय

दयो बीच तें फारि करे टुकड़ा द्वै कीये।
तुरत दौरिकें श्याम पकरि कुन्ती सुत लीये॥
लीये हिये लगाइ बधाई भाई दीन्हीं।
कहें कृतारथ कोखि मातु कुन्ती की कीन्ही॥
जरासन्धसुत आइकें, प्रभु पैरनि महँ परि गयो।
करचो प्यार सन्तोप दै, राजतिलक ताको कियो॥

बन्दी राजाओं को भगवान् के दर्शन

(११४७)

कृष्णसन्दर्शनाह्लाद ध्वस्तसंरोधनक्लमाः ।
प्रशशंसुर्हृषीकेशं गीर्भिः प्राञ्जलयो नृपाः ॥

(श्रीभा० १० स्क० ७३ अ० ७ श्लो०)

छप्पय

मगधेश्वर सहदेव करचो पितु काज कराये ।
चढ़ि रथ कारावास माँहिं बन्दिनि ढिंग आये ॥
बन्दी भूपति दुखित सतत प्रभु पन्थ निहारें ।
कब भयभञ्जन श्याम आइकें हमहिँ उबारें ॥
तब हीं निरखे भयहरन, कमलनयन प्रभु मनहरत ।
कमल सरिस पग, कर वदन, शीश मुकुट झिलिमिलि करत ॥

जो भगवान् की कृपा पर भरोसा रखकर उनकी निरन्तर प्रतीक्षा करते रहते है, उनको भगवान् अवश्य दर्शन देते है। यह संभव नहीं भगवान् अपने भक्तोंकी सुधि न लें। भगवान् के यहाँ देर भले ही हो जाय अंधेर नहीं होता। देर होने में भी हमारी शिथिलता है। लगन और विश्वासकी कमी है। प्रतीक्षा

---

* शुकदेवजी कहते है—"राजन् ! जरासन्ध के कारावास में बन्दी बने उन राजाओं ने जिनका कि भगवद्दर्शन के आह्लाद से कारावासका सम्पूर्ण क्लेश नष्ट हो गया है, दोनों हाथोंकी अञ्जली बाँधकर भगवान् हृषीकेश की स्तुति की।"

कराके भगवान् उस कमीको पूरी कर लेते है। तदनंतर वे दर्शन देते हैं। भगवान् के दर्शन होनेपर फिर बन्धन नहीं रहता। जब तक प्रारब्ध कर्म हैं, उनका अभिमान शून्य होकर भोग करते हैं, भोगशेष होने पर परम पदकी प्राप्ति होनी है। भगवान् का मन से सतत चिन्तन होता रहे। वाणी से उनकी स्तुति होती रहे और काया उनके कैंकर्य में लगी रहे तो इससे बढकर सुख क्या हो सकता है। फिर चाहें नरक में या स्वर्ग में कहीं भी क्यों न रहा जाय सुख ही सुख है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जरासन्धको मरवाकर तथा उसके पुत्र को राजतिलक देकर भगवान् उन वन्दी राजाओ के समीप गये, जिनको जरासन्धने अपने कारावासमें बंद कर रखा था और जो निरन्तर प्रभुका चिन्तन करते रहते थे। वे सबके सब पहाड़ों से घिरे गिरिव्रज नामक, दुर्ग में बंद थे। सहदेव से भगवान् ने कहा—"दुर्ग का द्वार खोलो।"

भगवान् की आज्ञा पाकर सहदेव ने तुरन्त द्वार खोल दिया। भगवान् ने भीतर जाकर देखा कि सभी राजा मैले कुचैले वस्त्र पहिने हुए हैं। कहाँ तो वे अपने महलों में छप्पन प्रकार के व्यंजन खाते थे, कहाँ यहाँ पर आधे पेट सूखा भात अथवा सत्तू मिलते थे। इस कारण भूख से उनका पेट पीठ में सट गया था। उनका मुख मलिन पड़ गया था कारवास के कठिन क्लेशों के कारण वे कृशित तथा दुर्वल हो रहे थे। सहसा उन्होंने अपने सम्मुख नवजलधर की आभा के सदृश अपने तेज से दसों दिशाओं को प्रकाशित करने वाले श्यामसुन्दर को निहारा। उन्होंने इससे पूर्व इतने सुन्दर पुरुष के कभी भी दर्शन नहीं किये थे।

उन्होंने देखा एक अद्भुत अलौकिक पुरुष मन्द मन्द मुस्कराते हुए कृपा भरी दृष्टि से निहारते हुए उन्हीं की ओर बढ़े चले आ रहे हैं। उनके श्रीअङ्गका वर्णन नूतन जल भरे मेघ के

समान है। सुन्दर चमकीला पीताम्बर पहिने हुए हैं। वक्षःस्थल पर अति मनोहर श्रीवत्सका चिन्ह शोभा दे रहा है। मृणाल के समान सुन्दर चढ़ाव उतार की उनके चार भुजायें हैं। एक में सुंदर शुभ्रशंख धारण किए हुए हैं, दूसरे में गदा लिए हुए उसे आगे पीछे घुमा रहे हैं। तीसरे में सहस्र आराओं वाला अति दुर्धर्ष चक्र लिये हुए हैं। चौथे हाथमें अर्धस्फुटित क्रीड़ा कमल है, जिसे हिलाहिला कर मानों सभी को अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं। उनकी ग्रीवा शंखके समान है। शारदीय पूर्ण चन्द्र के सदृश परम आह्लादकर उनका मधुर मनोहर मुखारविन्द है। कमल-- कोशके सदृश उनके बड़े बड़े विशाल विकसित अरुण युगल नयन हैं। कानों में मनोहर मकराकृत कुंडल हिलहिल कर झिलमिल झिलमिल कर रहे हैं। माथे पर मनोहर किरीट मुकुट दम दम करके दमक रहा है। हृदय पर मुक्ताओं का हार चमचम करके चमक रहा है। कटिमे करधनी अत्यंत सुशोभित हो रही है। करोंमें कमनीय कनक के केयूर अपनी कान्ति छिटका रहे हैं। कंठ में कोस्तुभमणि अपनी अनुपम आभा को बखेर रही है। पंचरंगी वन माला धन में इन्द्रधनुष के समान शोभा पा रही है देखते ही सबके सब समझ गये, कि ये सच्चिदानन्द सर्वेश्वर श्री-- कृष्णचन्द्रजी यही हैं। अब क्या था, उनके हृदय में प्रेम उमड़ने लगा।

सूतजी कह रहे हैं—'मुनियो ! मनमें जिसके प्रति विशुद्ध हार्दिक प्रेम हो, यदि वह सहसा सम्मुख आजाय, उस समय हृदय की कैसी दशा होती है, वह वाणी द्वारा किसी भी उपाय से वर्णन नहीं की जा सकती। चित्त चाहता है, दौड़ कर इन्हें हृदय से सटालें। नेत्र चाहते है इन्हें पी जाँय, जिह्वा चाहती है इन रस के साराति को चाट जायँ। नासिका चाहती है, इन की दिव्य गन्ध को अनवरत सूँघते ही रहें, भुजायें चाहती हैं,

इन्हें निरन्तर बाहु पाशमें कसे ही रहें, कभी छोड़े नहीं। वाणी चाहती है, निरन्तर इनके गुणों का ही गान करती रहूँ। मन चाहता है, इनकी मनमोहिनी मूरतिका ध्यानही करते रहें। यही दशा उन बन्दी राजाओं की हुई। उनका हृदय भर आया। वे भगवद्दर्शनों से आत्मविस्मृत हो गये। इस बातको वे सर्वथा भूल ही गये कि हम बन्दी है,उन्हे इतना अवर्णनीय सुख हुआ,कि उसका अनुमान भगवद् विमुख पुरुष कभी लगाही नही सकते। उन्होंने अनुभव किया, हमारे समस्त क्लेश नष्ट हो गये। वे दौड़कर विह्वलहोकर प्रभुके पाद पद्मों में पड़ गये। कुछ देरमें शरीरकी सुधि होनेपर वे सब उठकर खड़े हुए और गद्‌ गद्‌ वाणीसे प्रभुकी स्तुति करने लगे।

उनमेंसे एक राजा बोला–"प्रभो ? आप शरणागतभय भञ्जन हारी हैं आप अज अविनाशीहैं। हे देव देवेश्वर आपके पाद पद्मोंमें प्रणाम है। हम आपको सिरसे प्रणाम करते हैं।" उन राजा के विनय सुनकर भगवान् आगे बढ़े वहाँ भी राजा खड़े थे। बातकी बातमे यह बातपूरे कारावासमें फैल गयी थी। उन्होंने भी भगवान्‌को देखकर विनय की—"हे देव ! हम अब इस संसारकी अनित्यता समझ कर इससे उदासीन होकर आपकी शरणमें आये हैं। आप शरणागत प्रति पालक हो। सम्पूर्ण संसारके एक रक्षक हो हमारी भी रक्षा कीजिये।"

भगवान् ने कहा—"अरे,भाई ! राजा होकर तुम लोगों को बड़ा कष्ट हुआ,इस जरासन्धने आपको बहुत दुःख दिया।"

इसपर कुछ राजाओंने कहा–"नहीं भगवन् ! हम जरासन्ध को दोषी नहीं ठहराते। आप जिसपर अनुग्रह करते हैं,उनके धन ऐश्वर्य को नष्ट कर देते हैं। धन और ऐश्वर्य के मदमें मनुष्य बड़े बड़े अनर्थ कर डालता है। जिसको किसी भी प्रकार का मद है उसे आप मदन मोहन को प्राप्ती हो ही कैसे सकती है। आपका तो नामही

मद हारी है। आपने जरासन्ध से पराजित कराके हमारा मद हर लिया। इसलिये इस दुःख को तो हम आपकी अनुकम्पा ही मानते हैं। राजाओं के हृदय में दीनता, विनय, नहीं होती। वे तो आपकी माया से मोहित होने के कारण इस अनित्य, क्षणभंगुर चंचल द्रव्य को ही सब कुछ समझते रहते है। उन्हें ऐसा मिथ्याभिनिवेश हो जाता है, कि यह धन नित्य है और सदा मेरे पास इसी प्रकार बना रहेगा। जैसे दूरसे मरुदेश की बालू जलके समान प्रतीत होती है, अज्ञानीपुरुष उस मृगतृष्णा को जल समझकर उसकी ओर दौड़ता है, उसी प्रकार मूढ़जन इस विकार मयी माया को सत्य मानकर उसके चाक चिक्यमें फँस जाते हैं। आपके दर्शनों से हम कृतार्थ हो गये हम आपके पाद पद्मों में प्रणाम करते है।"

भगवान् और आगे बढ़े। हाथ जोड़े हुए मलिन वसन पहिने बहुत से बूढ़े बूढे राजा खड़े थे। भगवान् उनकी दयनीय दशा देखकर दुखी हुए और बोले—"देखो, काल की कैसी कुटिलगति है। ये राजा लोग पहिले लाखों मनुष्योंपर शासन करते थे। आज ये स्वयं भूख से व्याकुल हो रहे है। दूसरे के बन्दी बने दिन काट रहे है।"

इस पर एक बूढ़ा सा राजा बोला—महाराज! मनुष्य जैसा करता है वैसा भरता है। पहिले हम लोग राजलक्ष्मी के मद में ऐसे मदोन्मत्त हो गये थे, कि अपने सम्मुख किसी को कुछ समझते ही नहीं थे। वह राजा हम से बड़ा कैसे हो सकता है। उसका वैभव हमसे अधिक कैसे बढ़ गया, इस प्रकार ईर्ष्या द्वेष के वशीभूत होकर हम परस्पर में एक दूसरे को जीतने की इच्छा से युद्ध किया करते थे। अपने साम्राज्य को बढ़ाने के लोभ से काल स्वरूप आप को भूल ही गये थे। प्राणी जब उत्पन्न होता है उसके साथ ही मृत्यु भी उत्पन्न होती है और

सदा उसके साथ ही साथ रहती है। हमने उसे मृत्यु के भय को भुला दिया था और परस्पर में लड़ लड़कर निर्दयता पूर्वक
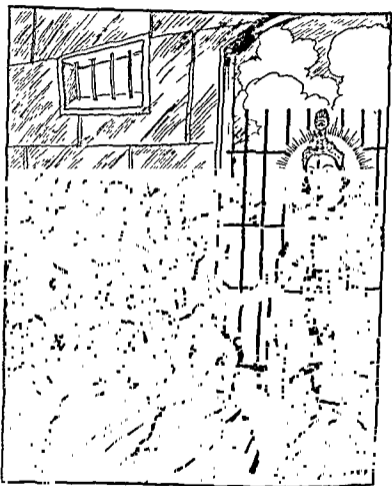
प्रजा के लोगों का संहार करते रहते थे। आपने जरासन्ध से हमें श्री हीन कराके हमारे गर्व का नाश करा दिया। अब हम दीन

होकर आपके ही चरणारविन्दो का निरन्तर चिन्तन करते रहते है। आपने तो विपत्ति देकर हमें सचेत कर दिया। अब हम समझ गये, कि ये राज्य सुख अनित्य हैं, राजकी बात तो पृथक् रही, निरन्तर क्षीण होने वाला अनन्त रोगों का घर, मलमूत्र से पूर्ण आधि-व्याधि की क्रीड़ा भूमि यह शरीर ही नाशवान् है इसका ही पता नही कब समाप्त हो जाय, तो फिर इससे भोगे जाने वाले मिथ्या भोगों के सम्बन्ध में तो कहना ही क्या है। इसी प्रकार मर कर स्वर्ग में अमृत मिलेगा, अप्सराओं के साथ विमानों पर घूमेंगे, नन्दन कानन में विहार करेंगे, ये श्रुत मधुर बाते भी हमे अब अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकती। अब तो हमें एक मात्र आपके चरणों के निरन्तर चिन्तन की अभिलाषा है।"

भगवान् ने कहा—"देखो, अब तुम जाकर प्रजा का धर्म पूर्वक पालन करना। सबके साथ न्याय का बर्ताव करना। कोषाध्यक्ष सेनाध्यक्ष तथा मत्री सचिवों को सन्तुष्ट रखना।"

राजाओं ने कहा—"प्रभो! यह सब तो हम करते ही रहे। अब हमें इस व्यावहारिक नीति की आवश्यकता नहीं। अब तो हमें ऐसा सरल, सुगम साधन बतावें जिस से हम प्रारब्ध कर्मो के वशीभूत होकर शूकर कूकर किसी भी योनि में चले जायँ, स्वर्ग नरक तथा पाताल आदि किसी लोक में जन्म लें आपके चरणारविन्दों की स्मृति निरन्तर बनी रहे।"

यह सुनकर सभी ने एक साथ एक स्वर में मिलकर कहा—"आनन्दकन्द श्री कृष्णचन्द्र के पाद पद्मों में प्रणाम है, भगवान् वासुदेव के लिये नमस्कार है। समस्त पापों के हरण करने वाले भगवान् हरि की हम शरण है। परब्रह्म परमात्म स्वरूप प्रभु को हमारा अभिवादन है। शरणागत प्रतिपालक प्रणतों के क्लेश

नाशक प्रभु के हम प्रपन्न हैं। गोलोक विहारी गोविन्द के लिये वार वार नमस्कार है।"

सूत जी कहते है—"मुनियो ! इस प्रकार जब जरासन्ध के कारावास से मुक्त हुए राजाओं ने अति दीनता पूर्ण वाणी से उनकी विनय की, तब भव भय हारी भगवान् ने उन पर कृपा की। उन्हें बन्धन से मुक्त करते हुए जो उपदेश दिया उसका वर्णन मैं आगे करूँगा आप सब समाहित चित्त से इस प्रसङ्ग को श्रवण करें।"

छप्पय

हरि दरशन तें मोद भयो मन प्रमुदित अतिशय।
करि इस्तुति बहु भाँति करें सब मिलिकें जय जय ॥
शरनागत प्रतिपाल कृपा भूपनि पै कीन्ही।
करि सबको सम्मान सुखद शिक्षा शुभ दीन्ही ॥
जाओ निज निज नगर कूँ, रटन नाम की नित करो।
त्यागि मान, मद, मोह-नित, भजहु मोहि तो भव तरो ॥

वन्दी राजाओं की विदाई तथा धर्मराज का हर्ष

(११४६)

निशम्य धर्मराजस्तत्केशवेनानुकम्पितम् ।
आनन्दाश्रुकलां मुञ्चन्प्रेम्णा नोवाच किञ्चन ॥
(श्रीभा० १० स्क० ७३ अ० ३५ श्लोक)

छप्पय

अब तुम सुख तें सकल जाहु अपने अपने पुर ।
धारो श्रद्धा सहित मूर्ति मेरी अपने उर ॥
धर्मराज मख करहिं आइ तुम सेवा करि कें ।
द्रव्य सफल निज करहु भेंट बहु आगे धरि कें ॥
तब सब कूँ सहदेवने, असन, वसन वाहन दये ।
प्रभु आयसु स्वीकारि करि, सब निज निज नगरनि गये ॥

संसार में दो ही सम्बन्ध हैं, दास और स्वामी या तो कोई किसी का दास है या किसी का स्वामी है। छोटे से छोटा पति अपनी पत्नी का अपने पुत्रों का अपने आश्रितों का स्वामी है। बड़े से बड़ा व्यक्ति अपने राजा के, गुरु के माता पिता के अधीन है। स्वामि सेवक भाव के बिना न संसार का काम चलता है

---

*श्रीशुकदेव जी कहते हैं—"राजन्! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के जरासन्ध वध रूप उस पर परम अनुकम्पायुत कृत्य को सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर के नयनों में नेहका नीर भर आया, वे अश्रु विमोचन करते हुए कण्ठ रुक जाने के कारण कुछ भी न बोल सकें।"

न परमार्थका। कुछ लोग परमार्थ पथमें मूड़ मुड़ाकर वस्त्र रंगकर स्वामी बन जाते हैं कुछ अपने को'दास' कहते हैं। किसी भी प्रकार हो स्वामी या दास बनना ही होगा। अंतर इतना ही है क्षुद्रकी अपेक्षा महान्‌का दास बनना श्रेष्ठ है। जगत्‌की दासता-को छोड़ कर भगवान्‌की दासता करना यही परम पुरुषार्थ है। भगवान्‌की कृपाकी यही सबसे मोटी पहिचान है वे जगत्‌की दासता से मुक्त करके अपनी दासता प्रदान करते हैं। जगत्‌का सम्बन्ध छुडा कर अपनेसे सम्बन्ध जोड़ लेते हैं। यही उनका आसीम अनुग्रह है

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब जरासन्धके बन्दी बने राजाओंने अपनी मुक्तिके अवसर पर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी भाँति भाँतिसे प्रार्थनाकी, तब उनसे मंद मंद मुस्कराते हुए माधव मधुर वाणीसे कहने लगे—"राजाओ! तुम लोगोंने जो मेरी विनती की है वह योग्य है। तुम्हारी मुझ सर्वेश्वरमें निश्चय ही सुदृढ़ भक्ति होगी। अभी तुम लोगोंने जो धनमद और ऐश्वर्यमदसे होने वाली उच्छृंखलताके दोषोंका वर्णन किया है, वह यथार्थ ही है। यह सत्य बात है कि धन और ऐश्वर्यके मदमें मदोन्मत्त बना मनुष्य अपने सामने अन्य किसीको कुछ समझता ही नही। इतने ही दुःख सहकर तुम्हारी बुद्धि सुधर गयी, तुमने मेरा भजन करनेका निश्चय कर लिया यह बड़े सौभाग्यकी बात है। नहीं तो धन ऐश्वर्यका मद मनुष्यको नेत्र रहते हुए भी अंधा बना देता है कितना भी ज्ञानी हो पढ़ा लिखा हो, कुलीन हो, सुन्दर हो जहाँ उसे मदने दबाया कि फिर उसके सब गुण अवगुण हो जाते हैं। देखो, हयवंशी सहस्रार्जुन योगी था, भगवान् दत्तात्रेयकी सेवा करके उसने सभी सिद्धियों को प्राप्त कर लिया था। वह संसारमें सबसे श्रेष्ठ बली था,

दिग्विजयी था। सहस्र उसके हाथ थे। विश्वविजयी रावण को पशु की भाँति उसने बाँध कर अपने अन्तःपुरमें रखा था उसे ही वट बनाकर उसके दसों सिरो पर दीपक जलाता था। इतना ज्ञानी, ध्यानी, योगी, बली, शूरवीर तथा विश्वविजयी राजाको भी जब ऐश्वर्य मद ने अन्धा बना दिया और महर्षि जमदग्नि की कामधेनु को बल पूर्वक हर लाया, तब परशुराम जी ने उसे तथा उसके कुल को नाश कर दिया।

इसी प्रकार राजा नहुष को भी ऐश्वर्य मद हो गया था। देवेन्द्र को ब्रह्म हत्या लगने पर देवता और ऋषियो ने उसे स्वर्गका इन्द्र बना दिया था। इन्द्र बनते ही उसे बड़ा अहंकार हो गया। उसने इन्द्राणी से अनुचित प्रस्ताव किया। ऋषियों से पालकी ढुलवाकर उसके महलोंकी ओर चला और ब्रह्मज्ञानी ऋषियोंका अभिमानमें भर कर अपमान करने लगा। तब ऋषियो ने उसे शाप देकर सर्प बना दिया, स्वर्गसे भ्रष्ट कर दिया, जब इतने प्रतापी राजा जो मर्त्यलोकके हो कर भी इसी शरीरसे स्वर्गके राजा बन गये उनका भी अहंकारके कारण पतन हो गया, तो साधारण लोगोंकी तो बात ही क्या है।

राजा वेन ऐश्वर्य के मद में भर कर अपने सामने किसीको कुछ गिनता ही नही था। उसने यज्ञ, याग, दान व्रत, उपवास तथा अन्यान्य सभी शुभ कर्म बन्द करा दिये थे। उसने सर्वत्र यह आज्ञा प्रसारित करदी थी, कोई दान मत दो यज्ञ मत करो। भगवान् की पूजा न करके एक मात्र मेरी ही पूजा करो। उसने मदमें भर कर महर्षियों का अपमान किया, इसी लिये महर्षियों ने हुंकार करके उसे भस्म कर दिया। अपने अभिमानका फल उसने तुरन्त पा लिया।

इसी प्रकार रावण भी अपनेको विश्वविजयी मानकर ब्रह्मादि देवोंका अपमान करने लगा। उसी ऐश्वर्य के मदमें भर

वह जगज्जननी जानकीजी को हर ले गया। तब मैंने ही श्रीराम रूप से उसका कुल सहित संहार किया।

नरकासुर मेरा ही पुत्र था, वह बड़ा बली था, उसने भी सहस्रों राजकन्याओं को बन्दी बना रखा था। तब मैंने जाकर उसका वध किया, राजकन्याओं को छुड़ाकर उनकी उनकी इच्छानुसार उनके साथ विवाह किया। कहाँ तक गिनाऊँ एक नहीं ऐसे असंख्यों राजा हैं। देवता, दैत्य, असुर, गन्धर्व, गुह्यक, नाग, पन्नग, यक्ष राक्षस जिसने भी ऐश्वर्य के मद में भरकर अनर्थ किया वही अपने स्थान से भ्रष्ट होकर परलोक वासी बना। तुम्हें भी जो कुछ राज ऐश्वर्यका थोड़ा बहुत मद हुआ था, वह बन्दागृह मे रहने से छूट गया। अब तुम अपनी अपनी राजधानियों में रहकर राज्य करो। इस देहको नाशवान् समझो यज्ञ यागादि द्वारा मेरा ही यजन करके अपने मन को मुझ में ही लगा दो। सावधान होकर धर्मानुष्ठान करो और कर्तव्य करो समझ कर न्याय पूर्वक प्रजा का पालन करो। तब तुम्हें कर्म करने का कुछ भी दोष न लगेगा।

राजाओं ने कहा—"महाराज! अब हमें राज्य करने की संसारी सुख भोगने की लालसा नहीं। अब तो हम आपके चरणारविन्दों की भक्ति ही करना चाहते हैं।"

भगवान् ने कहा—"अरे, भाई प्रारब्ध कर्मों का तो बिना भोग किये नाश होने का नहीं। तुम प्रारब्ध के भोग समझ कर सन्तानों की वृद्धि करो। प्रारब्धानुसार जो भी सुख दुख, लाभ हानि, यश अपयश तथा जीवन मरण प्राप्त हो उसका भोग करते रहो। चित्त को निरन्तर मुझ में लगाये रहो। जिसका जिसमें चित्त लगा रहता है, अन्त में वह उसीको प्राप्त होता है। तुम मुझ में चित्त लगाये रहोगे, तो मुझ ब्रह्म को ही प्राप्त होगे।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! भगवान् की ऐसी आज्ञा सुनकर उन सबने उसे सहर्ष शिरोधार्य किया। तब भगवान् ने सहदेव को आज्ञा दी, इनका राजोचित सम्मान करके विदा करो।"

भगवान् की आज्ञा पाते ही सहदेव ने सहस्रों दास दासियों को उनकी सेवा के लिये नियुक्त किया। उन सबने कारावास से छूटे हुए राजाओं को उबटन आदि लगाकर दिव्यौषधि महौषधि के सुन्दर सुगन्धित जलों से स्नान कराया। उनके क्षौरादि सब कर्म कराये सुन्दर सुन्दर बहुमूल्य वस्त्राभूषण पहिनाये तथा स्वादिष्ट भक्ष्य भोज्य आदि षडरस भोजन कराये। चन्दन माला फूल तथा ताम्बूलादि देकर उनका सम्मान किया। जब वे राजसी वस्त्राभूषणों का धारण करके सिंहासनों पर विराजमान हुए तो वे अपने कमनीय कनक कुण्डलोंकी कांति से ऐसे सुशोभित होते थे मानों वर्षा ऋतु के अन्त में शारदीय नभ में उडुगन शोभित होते हों फिर भगवान् की आज्ञा से सब को सुन्दर सुन्दर रथ दिये। वे उन दिव्य घोड़ों वाले रथों में बैठकर अपने अपने नगरों को जाने लगे। सहदेव ने उन्हें सम्मान पूर्वक बडे आदर के साथ बिदा किया। इस प्रकार वे प्रभु कृपा प्राप्त करके अपनी अपनी राजधानियों को चले गये। उन्हें सकुशल लौटा देखकर पुरजन परिजन, तथा समस्त राज्य के लोग प्रसन्न हुए। सभी एक स्वर मे मिलकर आनन्द कन्द श्रीकृष्ण को जय जयकार करने लगे।

अपनी राजधानियों मे पहुँच कर सबने अपने मंत्री, पुरोहित तथा प्रजा के लोगो से भगवान् की अनुग्रह का वर्णन किया। जिस प्रकार भीमसेन से भगवान् ने जरासन्धको मरवाया था वह सभी वृत्तान्त बताया। वे अपने महलों में रहकर निरन्तर भगवान् की भुवन पावनी लीलाओं का चिन्तन किया करते थे, परस्पर मे

उन्हीके गुणोंका गान करते थे और उनके ही नामका ताल स्वर के सहित संकीर्तन करते। भगवान् ने जैसी आज्ञा दी थी वैसा ही वे करते थे। वे सबके सब धर्मराज के राजसूय यज्ञ के लिये विविध भाँति के उपहारों की वस्तुओं को एकत्रित करने लगे।

इधर भगवान्ने जब जरासन्ध को मरवा दिया और सहदेव को मगध देशकी राजगद्दी पर बिठा दिया, तो वे इन्द्रप्रस्थ जाने की तैयारियाँ करने लगे। सहदेव ने अत्यन्त ही श्रद्धा भक्ति के सहित भगवान् वासुदेव की पूजा की, भीम तथा अर्जुन का भी सम्मान किया फिर उन्हें अत्यन्त ही आदरके साथ विदा किया। इस प्रकार सहदेव से भली भाँति सम्मानित होकर भगवान् भीम और अर्जुन के सहित रथ में बैठकर इन्द्रप्रस्थ की ओर चल दिये। उन्होंने अपने एक परम पराक्रमी विश्वविजयी शत्रु पर विजय प्राप्त की थी, इसलिये विजय के उल्लास में वे अति शीघ्र ही देश, नद, नदियो और पर्वतो को लांघते हुए इन्द्रप्रस्थ के समीप जा पहुँचे।

नगर के समीप पहुँचकर तीनों ने अत्यंत उल्लास के साथ आनन्दमें भर कर अपने-अपने शङ्ख बजाये। उन शङ्खोंकी भीषण ध्वनिको सुनकर उनके सुहृद सम्बन्धी तो सुखी हुए, किन्तु द्वेपियों के हृदय में तो वह ध्वनि शूलके समान चुभ गयी। शङ्खों की आह्लाद पूर्ण ध्वनिको सुनकर समस्त नगर निवासियोने समझ लिया, कि 'राजसूयका प्रबल कटक जरासन्ध मारा गया तथा धर्मराज महाराज युधिष्ठिर का दिग्विजय रूप संकल्प पूरा हो गया। अब दिग्विजय में विघ्न डालने वाला कोई भी शत्रु शेप नही रहा।"

धर्मराज भी तीनों शखों की ध्वनि को सुनकर आनन्द में विभोर हो गये। इतने ही में, उन्हें भीम और अर्जुन के सहित

हँसते हुए सामने से आते हुए श्यामसुन्दर दीख ही तो पड़े। तीनों ने आकर धर्मराज की वन्दना की। धर्मराज ने प्रेम भरित हृदय से श्यामसुन्दर को गले लगाया। भीम और अर्जुन का सिर सूँघा। भगवान् ने आते ही कहा–"राजन् ! काम पूरा हो गया।"

अश्रु विमोचन करते हुए धर्मराज ने कहा-प्रभो ! जहाँ आप हों वहाँ कार्य पूरा न हो यह तो असम्भव है। आप तो परिपूर्णतम हैं। आपके तो संकल्प मात्र से ही सब कुछ होता है। आपके लिये जरासंध को जीतना कौन सी कठिन बात है।"

भगवान् ने कहा—"राजन् ! मैंने नही जीता। अपके छोटे भाई भीमसेन ने उसे द्वन्द युद्ध में मार डाला।"

धर्मराज ने कहा—"प्रभो ! कोई खड्ग से किसी का सिर काट देता है, तो लोग यह तो नहीं कहते—"खड्ग ने उसे मार डाला।" सब लोग उसीका नाम लेते हैं। जिसके हाथ में खड्ग थी, जिसने खडग चलाई थी। इसी प्रकार भीम तो आपका यन्त्र था, यन्त्री तो आप ही हैं।"

इस प्रकार दोनों में परस्पर वड़ी मीठी मीठी बातें होती रहीं। धर्मराज युधिष्ठिर जरासन्ध वध के सम्पूर्ण वृत्तान्त को सुनकर आनन्दमें विभोर हो गये। भगवान् का हमारे ऊपर इतना अनुग्रह है भगवान् हमारे लिये सब कुछ करने को उद्यत है, इस बात को स्मरण करके भगवान् की भक्त वत्सलता को याद करके-धर्मराज का हृदय भर आया, उनकी वाणी रुक गयी। वे एक शब्द भी न बोल सके। आनन्द के अश्रुओं की वर्षा करते हुए वे बार बार भगवान् की ओर निहार रहे थे, किन्तु नेत्रों मे जलभर आने के कारण वे एक भी शब्द उच्चारण न कर सके।

सूतजी कहते है—"मुनियो ! अब तो राजसूय यज्ञ में किसी प्रकार का संदेह ही न रहा। भगवान् ने धर्मराजसे कहा–'राजन् !

अब देर करने का समय नहीं यज्ञ की समस्त सामग्रियों को एकत्रित करो। कर्मकाण्ड को जानने वाले बड़े-बड़े वैदिक ब्राह्मणों को बुलाओ। राजसूय यज्ञ बड़ी धूम धाम से कीजिये। मैं तो आपका सेवक समुपस्थित ही हूँ।"

अपनी हार्दिक प्रसन्नता को व्यक्त करते हुए धर्मराज बोले-"क्यों न कहे प्रभो! आपका तो यह बाना ही है। आपतो अपने भक्तों को सदा बड़ाई दिया ही करते है। नही तो हे दीनबन्धो! कहाँ तो आप और कहाँ हम। आप तो तीनों लोको के गुरु है। सम्पूर्ण चराचर लोकोके महान् ईश्वर है। इन पृथिवी के नरपतियों की तो बात ही क्या ब्रह्मादि देव भी आपकी आज्ञा को सिर से पालन करते हैं। कहाँ तो आपका इतना ऐश्वर्य और कहाँ हम दीन हीन मति मलीन इतना सब होने पर भी आप हम अकिञ्चन की आज्ञा का पालन करते हैं, यह आपकी लीला ही है। आपका खेल है, क्रीड़ा है मनोविनोद है। आप तो एकरस है। छोटे काम करने से आप छोटे नही हो जाते, बड़े काम करने से आप बहुत बड़े भी नही हो जाते। आप में छोटापन बड़ापन है ही नही आप तो एकरस हो। जैसे सूर्य चाहे उदय हो जाय या अस्त हो जाय, उनका तेज घटता बढ़ता नही एक सा रहता है इसी प्रकार कर्म करने से अथवा न करने से आपका तेज घटता बढ़ता नहीं। आपके लिये तो न कोई अपना है न पराया। आपकी तो बात पृथक रही आपके भक्तो के भी मनमें मैं मेरा तू तेरा का भाव नही रहता। उनकी विकारयुक्त भेद बुद्धि नष्ट हो जाती है। वे सब रूप में आपको ही देखते हैं।"

भगवान् ने कहा—"ये सब बातें तो होती ही रहेंगी। अब आप यज्ञ की तैयारियाँ कराइये।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! प्रभु की आज्ञा पाकर धर्मराज ने सेवकों को सामग्री एकत्रित करने की तथा वेदज्ञ ब्राह्मणों को बुलाने की आज्ञा दी। अब जिस प्रकार राजसूय यज्ञ होगा उसका वर्णन मैं आगे करूँगा।"

छप्पय

यों रिपु कूँ मरवाइ भूप बन्दी छुड़वाये।
ह्वै सम्मानित श्याम भीम जय सँग पुर आये॥
इन्द्रप्रस्थ ढिग आइ सबनि निज शङ्ख बजाये।
लोग सुनत शुभ शंख विजय समुझी हरषाये॥
धरमराज धुनि सुनि मुदित, भये लखे जय, भीम, हरि।
अरघ अश्रु दै दौरिकें, मिले श्याम तें अंक भरि॥

॥ श्रीहरिः ॥

श्री ब्रह्मचारी जी द्वारा लिखित नई पुस्तकें

१–सार्थ छप्पय गीता

श्रीमद् भगवत् गीता के ७०० श्लोकों की ७०० छप्पय बनायी हैं। श्लोक तो दो पंक्ति का होता है और छप्पय ६ पंक्ति की। इसलिये छप्पय में श्लोक का पूरा भाष्य ही आ गया है। यह इसी क्रम से छापी जा रही है, जैसे यह आलवन्दार स्तोत्र। एक पृष्ठ पर तो मूल श्लोक और नीचे हिन्दी अर्थ, सामने के पृष्ठ पर उसकी छप्पय। इस प्रकार इसमें मूल श्लोक, हिन्दी अर्थ और व्रज भाषा की छप्पय छन्द तीनों बातें रहेंगी। बानगी पिछले पृष्ट पर देखिये। सचित्र सजिल्द पुस्तक का मूल्य लगभग ५)।

छप्पय शत्रक त्रय

श्री राजर्षि भर्तृहरि के नीति शतक, शृङ्गार शतक और वैराग्य शतक तीनो शतकों को छप्पय छन्दों में आवद्ध किया है। भर्तृहरि जी का यह सुप्रसिद्ध ग्रन्थ संस्कृत साहित्य में वेजोड़ है। इन तीनों ही शतकों में सभी शास्त्रों का सार आ गया है। पुस्तक शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली है।